

कुमारषष्ठी-ब्रतकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— भरतसत्तम महाराज युधिष्ठिर! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठी तिथि समस्त पापनाशिनी, धन-धान्य तथा शान्ति-प्रदायिनी एवं अतिकल्पाणकारिणी है। उसी दिन कार्तिकेयने तारकासुरका वध किया था, इसलिये यह षष्ठी तिथि स्वामिकार्तिकेयको बहुत प्रिय है। इस दिन किया हुआ स्नान-दान आदि कर्म अक्षय होता है। दक्षिण देशमें स्थित कार्तिकेयका जो इस तिथिमें दर्शन करता है, वह निःसंदेह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसलिये इस तिथिमें कुमारस्वामीकी सोने, चाँदी अथवा मिट्टीकी मूर्ति बनवाकर पूजा करनी चाहिये। अपराह्नमें स्नान तथा आचमनकर, पद्मासन लगाकर बैठ जाय और स्वामी कुमारका एकाग्रचित्तसे ध्यान करे। इस दिन उपवासपूर्वक निम्नलिखित मन्त्र पढ़ते हुए इनके मस्तकपर कलशसे अभिषेक करे—

**चन्द्रमण्डलभूतानां भवभूतिपवित्रिता ।
गङ्गाकुमार धारेयं पतिता तव मस्तके ॥**

(उत्तरपर्व ४२।७)

इस प्रकार अभिषेक कर भगवान् सूर्यका पूजन करे, तदनन्तर गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंद्वारा कृतिकापुत्र कार्तिकेयकी निम्न मन्त्रसे पूजा करे—

**देव सेनापते स्कन्द कार्तिकेय भवोद्भव ।
कुमार गुह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोऽस्तु ते ॥**

(उत्तरपर्व ४२।९)

दक्षिण-देशोत्पन्न अन्न, फल और मलय चन्दन भी चढ़ाये। इसके बाद स्वामिकार्तिकेयके परमप्रिय छाग, कुकुट, कलापयुक्त मयूर तथा उनकी माता भगवती पार्वती—इनका प्रत्यक्ष पूजन करे अथवा इनकी सुवर्णकी प्रतिमा बनाकर पूजन करे। पूजनके अनन्तर पूर्वोक्त देवसेनापति

तथा स्कन्द आदि नाम-मन्त्रोंसे आज्ययुक्त तिलोंसे हवन करे, अनन्तर फल भक्षण कर भूमिपर कुशाकी शव्यापर शयन करे। क्रमशः बारह महीनोंमें नारियल, मातुलुंग (बिजौरा नींबू), नारंगी, पनस (कटहल), जम्बीर (एक प्रकारका नींबू), दाढ़िम, द्राक्षा, आम्र, बिल्व, आमलक, ककड़ी तथा केला—इन फलोंका भक्षण करे। ये फल उपलब्ध न हों तो उस कालमें उपलब्ध फलोंका सेवन करे। प्रातःकाल सोनेके बने छाग अथवा कुकुटका 'सेनानी प्रीयताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मणको दे। बारह महीनोंमें क्रमसे सेनानी, सम्भूत, क्रौञ्चारि, षण्मुख, गुह, गाङ्गेय, कार्तिकेय, स्वामी, बालग्रहाग्रणी, छागप्रिय, शक्तिधर तथा द्वार—इन नामोंसे कार्तिकेयका पूजन करे और नामोंके अन्तमें 'प्रीयताम्' यह पद योजित करे। यथा—'सेनानी प्रीयताम्' इत्यादि। इसके पश्चात् ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। वर्ष समाप्त होनेपर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी षष्ठीको वस्त्र, आभूषण आदिसे कार्तिकेयका पूजन एवं हवन करे और सब सामग्री ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस ब्रतको करते हैं, वे उत्तम फलोंको प्राप्त कर इन्द्रलोकमें निवास करते हैं, अतः राजन्! शंकरात्मज कार्तिकेयका सदा प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। राजाओंके लिये तो कार्तिकेयकी पूजाका विशेष महत्व है। जो राजा स्वामी कुमारका इस प्रकार पूजनकर युद्धके लिये जाता है, वह अवश्य ही विजय प्राप्त करता है। विधिपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् कार्तिकेय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं। जो षष्ठीको नक्तब्रत करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कार्तिकेयके लोकमें निवास करता है। दक्षिण दिशामें जाकर



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

I creator of
hinduism
server!

जो भक्तिपूर्वक कार्तिकेयका दर्शन और पूजन करता है वह शिवलोकको प्राप्त करता है। जो सदा शरवणोद्धव आदिदेव कार्तिकेयकी आराधना।

करता है, वह बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करता तथा चक्रवर्ती राजाका सेनापति होता है। (अध्याय ४२)

विजयासप्तमी-ब्रत

युधिष्ठिरने पूछा—देव ! विजयासप्तमी-ब्रतमें किसकी पूजा की जाती है, उसका क्या विधान है और क्या फल है ? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको यदि आदित्यवार हो तो उसे विजया सप्तमी कहते हैं। वह सभी पातकोंका विनाश करनेवाली है। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम तथा उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है। जो उस दिन फल, पुष्प आदि लेकर भगवान् सूर्यकी प्रदक्षिणा करता है, वह सर्वगुणसम्पन्न उत्तम पुत्रको प्राप्त करता है। पहली प्रदक्षिणा नारियल-फलोंसे, दूसरी रक्तनागरसे, तीसरी बिजौरा नींबूसे, चौथी कदलीफलसे, पाँचवीं श्रेष्ठ कूष्माण्डसे, छठी पके हुए तेंदूके फलोंसे और सातवीं वृत्ताक-फलोंसे करे अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करे। मोती, पद्मराग, नीलम, पत्ता, गोमेद, हीरा और वैदूर्य आदिसे भी प्रदक्षिणा करे तथा अखरोट, बेर, बिल्व, करौंदा, आम्र, आम्रातक (आमड़ा), जामुन आदि जो भी उस कालमें फल-फूल मिले उससे प्रदक्षिणा करे। प्रदक्षिणा करते समय बीचमें बैठे नहीं, न किसीको स्पर्श करे और न किसीसे बात करे। एकाग्रचित्तसे प्रदक्षिणा करनेसे सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं। गौके घृतसे वसोधारा भी दे। किंकिणीयुक्त ध्वजा तथा श्वेत छत्र चढ़ाये और फिर कुंकुम, गन्ध, पुष्प, धूप तथा नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन कर इस मन्त्रसे भगवान् सूर्यसे क्षमा-प्रार्थना करे—

भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर।

आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ४३। १४)

इस ब्रतमें उपवास, नक्तब्रत अथवा अयाचित-ब्रत करे। इस विजयासप्तमीका नियमपूर्वक ब्रत करनेसे रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है, दरिद्र लक्ष्मी प्राप्त करता है, पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है तथा विद्यार्थी विद्या प्राप्त करता है। शुक्ल पक्षकी आदित्यवारयुक्त सात सप्तमियोंमें नक्तब्रत कर मूँगका भोजन करना चाहिये। भूमिपर पलाशके पत्तोंपर शयन करना चाहिये। इस प्रकार ब्रतकी समाप्तिपर सूर्यभगवान्का पूजनकर षडक्षर-मन्त्र ('खखोल्काय नमः')-से अष्टोत्तरशत हवन करे। सुवर्णपत्रमें सूर्यप्रतिमा स्थापित कर रक्त वस्त्र, गौ और दक्षिणा इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

ॐ भास्कराय सुदेवाय नमस्तुभ्यं यशस्कर ॥

ममाद्य समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः ।

(उत्तरपर्व ४३। २३-२४)

तदनन्तर शश्या-दान, श्राद्ध, पितृतर्पण आदि कर्म करे। इस ब्रतके करनेसे यात्रियोंकी यात्रा प्रशस्त हो जाती है, विजयकी इच्छावाले राजाको युद्धमें विजय अवश्य प्राप्त होती है, इसलिये लोकमें यह विजया सप्तमीके नामसे विश्रुत है। इस ब्रतको करनेवाला पुरुष संसारके समस्त सुखोंको भोगकर सूर्यलोकमें निवास करता है और फिर पृथ्वीपर जन्म ग्रहणकर दानी, भोगी, विद्वान्, दीर्घायु, नीरोग, सुखी और हाथी, घोड़े तथा रत्नोंसे सम्पन्न बड़ा प्रतापी राजा होता है। यदि स्त्री इस ब्रतको करे तो वह पुण्यभागिनी होकर उत्तम फलोंको प्राप्त करती है। राजन् ! इसमें आपको किंचित् भी संदेह नहीं करना चाहिये। (अध्याय ४३)

आदित्य-मण्डलदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं समस्त अशुभोंके निवारण करनेवाले श्रेयस्कर आदित्य-मण्डलके दानका वर्णन करता हूँ। जौ अथवा गोधूमके चूर्णमें गुड़ मिलाकर उसे गौके घृतमें भलीभाँति पकाकर सूर्यमण्डलके समान एक अति सुन्दर अपूप बनाये और फिर सूर्यभगवान्‌का पूजनकर उनके आगे रक्त चन्दनका मण्डप अंकितकर उसके ऊपर वह सूर्यमण्डलात्मक मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक) रखे। ब्राह्मणको सादर आमन्त्रित कर रक्त वस्त्र तथा दक्षिणासहित वह मण्डक इस मन्त्रको पढ़ते हुए ब्राह्मणको प्रदान करे—

आदित्यतेजसोत्पन्नं राजतं विधिनिर्मितम्।

श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतिगृह्णेदमुत्तमम्॥

(उत्तरपर्व ४४।५)

ब्राह्मण भी उसे ग्रहणकर निम्नलिखित मन्त्र बोले—
कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव।
आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डलम्॥

(उत्तरपर्व ४४।६)

इस प्रकार विजयससमीको मण्डकका दान करे और सामर्थ्य होनेपर सूर्यभगवान्‌की प्रीतिके लिये शुद्धभावसे नित्य ही मण्डक प्रदान करे। इस विधिसे जो मण्डकका दान करता है, वह भगवान् सूर्यके अनुग्रहसे राजा होता है और स्वर्गलोकमें भगवान् सूर्यकी तरह सुशोभित होता है। (अध्याय ४४)

वर्ज्यससमी-व्रत

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! धन, सौख्य तथा समस्त मनोवाञ्छित कामनाओंको प्रदान करनेवाली किसी ससमीव्रतका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! उत्तरायणके व्यतीत हो जानेपर शुक्ल पक्षमें पुरुषवाची नक्षत्रमें आदित्यवारको ससमी-तिथि-व्रत ग्रहण करे। धान, तिल, जौ, उड़द, मूँग, गेहूँ, मधु, निन्द्य भोजन, मैथुन, कांस्यपात्रमें भोजन, तैलाभ्यङ्ग, अंजन और शिलापर पीसी हुई वस्तु—इन सबका

षष्ठी तिथिको प्रयोग न करे। इन पदार्थोंका षष्ठीके दिन परित्याग कर केवल चनाका भोग करे और देवता, मुनि तथा पितर—इन सबका तर्पण कर भगवान् सूर्यका पूजन करे। घृतयुक्त तिल और जौका हवन कर भगवान् सूर्यका ध्यान करता हुआ भूमिपर शयन करे। इस विधिसे जो एक वर्षतक व्रत करता है, वह अपने सभी मनोवाञ्छित फलको प्राप्त कर लेता है।

(अध्याय ४५)

कुकुट-मर्कटी-व्रतकथा (मुक्ताभरण ससमीव्रत-कथा)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज युधिष्ठिर! एक बार महर्षि लोमश मथुरा आये और वहाँ मेरे माता-पिता—देवकी-वसुदेवने उनकी बड़ी श्रद्धासे आवभगत की। फिर वे प्रेमसे बैठकर अनेक

प्रकारकी कथाएँ कहने लगे। उन्होंने उसी प्रसंगमें मेरी मातासे कहा—‘देवकी! कंसने तुम्हारे बहुतसे पुत्रोंको मार डाला है, अतः तुम मृतवत्सा एवं दुःखभागिनी बन गयी हो। इसी प्रकारसे प्राचीन

कालमें चन्द्रमुखी नामकी एक सुलक्षणा रानी भी मृतवत्सा एवं दुःखी हो गयी थी। परंतु उसने एक ऐसे व्रतका अनुष्ठान किया, जिसके प्रभावसे वह जीवत्पुत्रा हो गयी। इसलिये देवकी! तुम भी उस व्रतके अनुष्ठानके प्रभावसे वैसी हो जाओगी, इसमें संशय नहीं।'

माता देवकीने उनसे पूछा—महाराज! वह चन्द्रमुखी रानी कौन थी? उसने सौभाग्य और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाला कौन-सा व्रत किया था? जिसके कारण उसकी संतान जीवित हो गयी। आप मुझे भी वह व्रत बतलानेकी कृपा करें।

लोमशमुनि बोले—प्राचीन कालमें अयोध्यामें नहुष नामके एक प्रसिद्ध राजा थे, उन्हींकी महारानीका नाम चन्द्रमुखी था। राजाके पुरोहितकी पत्नी मानमानिकासे रानी चन्द्रमुखीकी बहुत प्रीति थी। एक दिन वे दोनों सखियाँ स्नान करनेके लिये सरयू-तटपर गयीं। उस समय नगरकी और भी बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ स्नान करने आयी हुई थीं। उन सब स्त्रियोंने स्नानकर एक मण्डल बनाया और उसमें शिव-पार्वतीकी प्रतिमा चित्रितकर गन्ध, पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक यथाविधि उनकी पूजा की। अनन्तर उन्हें प्रणामकर जब वे सभी अपने घर जानेको उद्यत हुई, तब महारानी चन्द्रमुखी तथा पुरोहितकी स्त्री मानमानिकाने उनसे पूछा—‘देवियो! तुमलोगोंने यह किसकी और किस उद्देश्यसे पूजा की है?’ इसपर वे कहने लगीं—‘हमलोगोंने भगवान् शिव एवं भगवती पार्वतीकी पूजा की है और उनके प्रति आत्म-समर्पण कर यह सुवर्णसूत्रमय धागा भी हाथमें धारण किया है। हम सब जबतक प्राण रहेंगे, तबतक इसे धारण किये रहेंगी और शिव-पार्वतीका पूजन भी किया करेंगी।’ यह सुनकर उन दोनोंने

भी यह व्रत करनेका निश्चय किया और वे अपने घर आ गयीं तथा नियमसे व्रत करने लगीं। परंतु कुछ समय बाद रानी चन्द्रमुखी प्रमादवश व्रत करना भूल गयीं और सूत्र भी न बाँध सकीं। इस कारण मरनेके अनन्तर वह वानरी हुई, पुरोहितकी स्त्रीका भी व्रत भङ्ग हो गया, इसलिये मरकर वह कुकुटी हुई। उन योनियोंमें भी उनकी मित्रता और पूर्वजन्मकी स्मृतियाँ बनी रहीं।

कुछ कालके अनन्तर दोनोंकी मृत्यु हो गयी। फिर रानी चन्द्रमुखी तो मालव देशके पृथ्वीनाथ नामक राजाकी मुख्य रानी और पुरोहित अग्निमीलकी स्त्री मानमानिका उसी राजाके पुरोहितकी पत्नी हुई। रानीका नाम ईश्वरी और पुरोहितकी स्त्रीका नाम भूषणा था। भूषणाको अपने पूर्वजन्मोंका ज्ञान था। उसके आठ उत्तम पुत्र हुए। परंतु रानी ईश्वरीको बहुत समयके बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह रोगग्रस्त रहता था। इस कारण थोड़े ही समय बाद (नवें वर्ष) उसकी मृत्यु हो गयी। तब दुःखी हो भूषणा अपनी सखी रानी ईश्वरीको आश्वासन देने उनके पास आयी। भूषणाके बहुतसे पुत्रोंको देखकर ईश्वरीके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न हो गयी, फलस्वरूप रानी ईश्वरीने धीरे-धीरे भूषणाके सभी पुत्र मरवा डाले, परंतु भगवान् शंकरके अनुग्रहसे वे मरकर भी पुनः जीवित हो उठे। तब ईश्वरीने भूषणाको अपने यहाँ बुलवाया और उससे पूछा—‘सखि! तुमने ऐसा कौन-सा पुण्यकर्म किया है, जिसके कारण तुम्हारे मरे हुए भी पुत्र जीवित हो जाते हैं और तुम्हारे बहुतसे चिरंजीवी पुत्र उत्पन्न हुए हैं, मुक्ता आदि आभूषणोंसे रहित होनेपर भी कैसे तुम सदा सुशोभित रहती हो?’

भूषणाने कहा—सखि! मुक्ताभरण ससमी-व्रतका विलक्षण माहात्म्य है। भाद्रपद मासके

शुक्ल पक्षकी सप्तमीको किये जानेवाले इस व्रतमें स्नानकर एक मण्डल बनाकर उसमें शिव-पार्वतीका पूजन करे और शिवको आत्म-निवेदित सूत्र (दोरक)- को हाथमें धारण करे अथवा चाँदी, सोनेकी अँगूठी बनाकर अँगुलीमें पहने। उस दिन उपवास करे। बादमें व्रतका उद्यापन करे। उद्यापनके दिन शिव-पार्वतीका मण्डलमें पूजन कर वह अँगूठी ताप्रके पात्रमें रखकर ब्राह्मणको दे दे तथा यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी कराये। इस व्रतके करनेसे सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं।

सखि ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको तुमने और मैंने साथ ही इस व्रतका नियम ग्रहण किया था, परंतु प्रमादवश तुमने इसे छोड़ दिया, इसीसे तुम्हारा पुत्र नष्ट हो गया और राज्य पाकर भी तुम दुःखी ही रहती हो। मैंने व्रतका भक्तिपूर्वक पालन किया, इससे मैं सब प्रकारसे सुखी हूँ, परंतु मेरा व्रत अन्तमें भङ्ग हो गया था, इसलिये एक जन्ममें मुझे कुकुटी बनना पड़ा। सखि ! मैं तुम्हें अपने द्वारा किये गये

व्रतका आधा पुण्यफल देती हूँ, इससे तुम्हारे सभी दुःख दूर हो जायेंगे। इतना कहकर भूषणने अपने व्रतका आधा पुण्यफल ईश्वरीको दे दिया। उसके प्रभावसे ईश्वरीके दीर्घ आयुवाले बहुत पुत्र उत्पन्न हुए और उसे सब प्रकारका सुख प्राप्त हुआ तथा अन्तमें मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

लोमशमुनि बोले—देवकी ! तुम भी इस व्रतको करो, इससे तुम्हारी संतान स्थिर हो जायगी और तुम्हारा पुत्र तीनों लोकोंका स्वामी होगा। यह कहकर लोमशमुनि अपने आश्रमको छले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! (मेरी माताको इसी व्रतके प्रभावसे मेरे-जैसा पुत्र पैदा हुआ और मेरी इतनी आयु बढ़ी तथा कंस आदि दुष्टोंसे बच भी गया।) यह प्रसंगवश मैंने इस व्रतका माहात्म्य बतलाया है, अन्य जो भी कोई स्त्री इस व्रतका आचरण करेगी, उसे कभी संतानका वियोग नहीं होगा और अन्तमें वह शिवलोकको प्राप्त करेगी*।

(अध्याय ४६)

उभय-सप्तमीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं सप्तमी-कल्पका वर्णन करता हूँ। आप इसे प्रीतिपूर्वक सुनें। माघ महीनेकी शुक्ला सप्तमीको संकल्पकर भगवान् सूर्यका वरुणदेव नामसे पूजन करे। अष्टमीके दिन तिल, पिष्ठ, गुड़ और ओदन ब्राह्मणोंको भोजन कराये, ऐसा करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन शुक्ला सप्तमीको भगवान् सूर्यका पूजन करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। चैत्र शुक्ला सप्तमीमें वेदांशु नामसे सूर्य-

पूजन करनेसे उक्थ नामक यज्ञके समान पवित्र फल प्राप्त होता है। वैशाखके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको धाता नामसे पूजा करनेसे पशुबन्ध-यागके पुण्यके समान फल प्राप्त होता है। ज्येष्ठ मासकी सप्तमीको इन्द्र नामसे सूर्यकी पूजा करनेसे वाजपेय-यज्ञका दुर्लभ फल प्राप्त होता है। आषाढ़ मासकी सप्तमीको दिवाकरकी पूजा करनेसे बहुत सुवर्णकी दक्षिणावाले यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रावणकी सप्तमीको मातापि (लोलार्क)-को पूजनेसे सौत्रामणि यागका

* इसी व्रतका ठीक इन्हीं श्लोकोंमें हेमाद्रि, जयसिंह-कल्पद्रुम तथा व्रतराज आदि निवन्ध-ग्रन्थोंमें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे उल्लेख किया गया है और उसके श्लोक भविष्यपुराणके नामसे सूचित किये गये हैं, किंतु आश्वर्य है कि वहाँ इसे कुकुट-मर्कटी-सप्तमी नहीं कहा गया है। सम्भव है कि भविष्यपुराणके अन्य किन्हीं हस्तलिखित प्रतियोंकी पुष्पिकामें इन्हें मुक्ताभरण-सप्तमीके नामसे निर्दिष्ट किया गया हो। मोनियर विलियम नामक संस्कृत अंग्रेजीके विख्यात कोशमें कैटलगस नामसे कुकुट-मर्कट-सप्तमीके नामका ही उल्लेख किया गया है।

फल प्रास होता है। भाद्रपद मासमें शुचि नामसे सूर्यका पूजन करे तो तुलापुरुष-दानका फल प्रास होता है। आश्विन शुक्ला सप्तमीको सविताकी पूजा करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कार्तिक शुक्ला सप्तमीमें सप्तवाहन दिनेशकी पूजा करनेसे पुण्डरीक-यागका फल प्रास होता है। मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीमें भानुकी पूजा करनेसे दस राजसूय-यज्ञोंका फल प्रास होता है। पौष मासमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको भास्करकी पूजा करनेसे अनेक यज्ञोंका फल मिलता है। इसी प्रकार प्रत्येक मासके कृष्ण पक्षकी सप्तमीको भी उन-उन नामोंसे पूजा करनी चाहिये।

महाराज! इस प्रकार एक वर्षतक ब्रत और पूजन कर उद्यापन करे। पवित्र भूमिपर एक हाथ, दो हाथ अथवा चार हाथ रक्त चन्दनका मण्डल बनाकर उसमें सिंदूर और गेरुका सूर्यमण्डल बनाये। कमल आदि रक्तपुष्पों, शल्लकी वृक्षके गोंद आदिसे

निर्मित धूप तथा अनेक प्रकारके नैवेद्योंसे भगवान् सूर्यका पूजन करे। अब तथा स्वर्णसे भरे कलशोंको उनके सामने स्थापित करे। फिर अग्निसंस्कार कर तिल, घृत, गुड़ और आककी समिधाओंसे 'आ कृष्णोन०' (यजु० ३३। ४३) इस मन्त्रसे एक हजार आहुति दे। अनन्तर द्वादश ब्राह्मणोंको रक्त वस्त्र, एक-एक सवत्सा गौ, छतरी, जूता, दक्षिणा और भोजन देकर क्षमा-प्रार्थना करे। बादमें स्वयं भी मौन होकर भोजन करे।

इस विधिसे जो सप्तमीका ब्रत करता है, वह नीरोग, कुशल वक्ता, रूपवान् और दीर्घायु होता है। जो पुरुष सप्तमीके दिन उपवास कर भगवान् सूर्यका दर्शन करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है। यह उभय-सप्तमीब्रत सम्पूर्ण अशुभोंको दूर कर आरोग्य और सूर्यलोक प्राप्त करानेवाला है, ऐसा देवर्षि नारदका कहना है। (अध्याय ४७)

कल्याणसप्तमी-ब्रतकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! यदि इस संसार-सागरसे पार उतारनेवाला तथा स्वर्ग, आरोग्य एवं सुखप्रदायक कोई ब्रत हो तो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस शुक्ला सप्तमीको आदित्यवार हो, उसे विजया-सप्तमी या कल्याण-सप्तमी कहते हैं। यह तिथि महापुण्यमयी है। इस दिन प्रातःकाल गोदुग्धयुक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्र धारण कर अक्षतोंसे अति सुन्दर एक कर्णिकायुक्त अष्टदलकमल बनाये तथा पूर्वादि आठों दलोंमें क्रमशः पूर्व दिशामें 'ॐ तपनाय नमः,' अग्निकोणमें 'ॐ मार्तण्डाय नमः,' दक्षिण

दिशामें 'ॐ दिवाकराय नमः,' नैऋत्यकोणमें 'ॐ विधात्रे नमः,' पश्चिम दिशामें 'ॐ वरुणाय नमः,' वायव्यकोणमें 'ॐ भास्कराय नमः,' उत्तर दिशामें 'ॐ विकर्तनाय नमः' तथा ईशानकोणमें 'ॐ रवये नमः'—इस प्रकारसे नाम-मन्त्रोंद्वारा कर्णिकाओंमें सभी उपचारोंसे पूजन करे। शुक्ल वस्त्र, फल, भक्ष्य पदार्थ, धूप, पुष्पमाला, गुड़ और लवणसे नमस्कारान्त इन नाम-मन्त्रोंसे वेदीके ऊपर पूजा करे। इसके बाद व्याहृति-होमकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराये। गुरुको सुवर्णसहित तिलपात्र-दान करे। दूसरे दिन प्रातः उठकर नित्य-क्रियासे निवृत्त हो ब्राह्मणोंके साथ घृत एवं पायससे

बने पदार्थोंका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् सूर्यका पूजन एवं व्रतकर उद्यापन करे। जल, कलश, घृतपात्र, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। इतनी शक्ति न हो

तो गोदान करे। जो इस कल्याणससमी-व्रतको करता है अथवा माहात्म्यको पढ़ता या सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें निवास करता है^१। (अध्याय ४८)

शर्कराससमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—धर्मराज! अब मैं सभी पापोंको नष्ट करनेवाले तथा आयु, आरोग्य और अनन्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले शर्कराससमी-व्रतका वर्णन करता हूँ। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नानकर शुक्ल वस्त्रोंको धारण करे तथा वेदीके ऊपर कुंकुमसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमलकी रचना करे और ‘सवित्रे नमः’ इन नाम-मन्त्रसे गन्ध-पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे। जलपूर्ण कलशके ऊपर शक्करसे भरा पूर्णपात्र स्थापित करे। उस कलशको रक्त वस्त्र, श्वेत माला आदिसे अलंकृत करे, साथ ही वहाँ एक सुवर्ण-निर्मित अश्व भी स्थापित करे। तदनन्तर भगवान् सूर्यका आवाहनकर इस मन्त्रसे उनका पूजन करे—

विश्वेदेवमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यते॥

त्वमेवामृतसर्वस्वमतः पाहि सनातन।

(उत्तरपर्व ४९। ५-६)

‘हे भगवान् सूर्यदेव! यह सारा विश्व एवं सभी देवता आपके ही स्वरूप हैं, इस कारण आपको ही वेदोंका तत्त्वज्ञ एवं अमृतसर्वस्व कहा गया है। हे सनातनदेव! आप मेरी रक्षा करें।’

तदनन्तर सौरसूक्तका जप करे अथवा

सौरपुराणका श्रवण करे। अष्टमीको प्रातः उठकर स्नान आदि नित्यक्रिया सम्पन्नकर भगवान् सूर्यका पूजन करे। तत्पश्चात् सारी सामग्री वेदवेत्ता ब्राह्मणको देकर शर्करा, घृत और पायससे यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी मौन होकर तेल और लवणरहित भोजन करे। इस विधिसे प्रतिमास व्रत करके वर्ष पूरा होनेपर यथाशक्ति उत्तम शय्या, दूध देनेवाली गाय, शर्करापूर्ण घट, गृहस्थके उपकरणोंसे युक्त मकान तथा अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ या पाँच निष्क सोनेका बना हुआ एक अश्व ब्राह्मणको दान करे। भगवान् सूर्यके मुखसे अमृतपान करते समय जो अमृत-बिन्दु गिरे, उनसे शालि (अग्रहनी धान), मूँग और इक्षु उत्पन्न हुए, शर्करा इक्षुका सार है, इसलिये हव्य-कव्यमें इस शर्कराका उपयोग करना भगवान् सूर्यको अति प्रिय है एवं यह शर्करा अमृतरूप है। यह शर्कराससमी-व्रत अश्वमेध-यज्ञका फल देनेवाला है। इस व्रतके करनेसे संतानकी वृद्धि होती है तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस व्रतका करनेवाला व्यक्ति एक कल्प स्वर्गमें निवासकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है।^४ (अध्याय ४९)

१-मत्स्यपुराण (अध्याय ७४)-में भी इस व्रतका प्रायः इन्हीं श्लोकोंमें उल्लेख प्राप्त होता है।

२-ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५० वाँ सूक्त सूर्यसूक्त या सौरसूक्त कहलाता है।

३-सौरपुराणसे मुख्य तात्पर्य है भविष्यपुराण और साम्बपुराण। आजकल सौरपुराणके नामसे प्रकाशित जो सूर्यपुराण हैं, वास्तवमें वैश्वपुराण हैं सौर नहीं।

४-भविष्यपुराणका यह अध्याय भी मत्स्यपुराणके ५० ७७ में प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होता है।

कमलससमी-व्रत *

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं कमलससमी-व्रतका वर्णन करता हूँ, जिसके नाम लेनेमात्रसे ही भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं। वसन्त-ऋतुमें शुक्ल पक्षकी सप्तमीको प्रातःकाल पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करे। एक पात्रमें तिल रखकर उसमें सुवर्णका कमल बनाकर स्थापित करे और उसमें भगवान् सूर्यकी भावना कर दो वस्त्रोंसे आवृत करे तथा गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजाकर निम्नलिखित श्लोकसे प्रार्थना करे—

नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे ॥
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।

(उत्तरपर्व ५० । ३-४)

तदनन्तर वस्त्र, माला तथा अलंकारोंसे सुसज्जित

उस उदककुम्भको प्रतिमासहित ब्राह्मणकी पूजाकर प्रदान कर दे। दूसरे दिन अष्टमीको यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराये और स्वयं भी तेल आदिसे रहित विशुद्ध भोजन करे। इसी प्रकार वर्षपर्यन्त प्रत्येक मासकी शुक्ल सप्तमीको भक्तिपूर्वक व्रत करे। व्रतकी समाप्तिपर वह भक्तिपूर्वक सुवर्ण-कमल, सुवर्णकी पयस्त्विनी गौ, अनेक पात्र, आसन, दीप तथा अन्य सामग्रियाँ ब्राह्मणको दानमें दे। इस विधिसे जो कमल-सप्तमीका व्रत करता है, वह अनन्त लक्ष्मीको प्राप्त करता है और सूर्यलोकमें प्रसन्न होकर निवास करता है। कल्प-कल्पभर सात लोकोंमें निवास करता हुआ अन्तमें परमगतिको प्राप्त करता है। (अध्याय ५०)

शुभससमी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! अब मैं एक दूसरी सप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, वह शुभससमी कहलाती है। इसमें उपवासकर व्यक्ति रोग, शोक तथा दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। इस पुण्यप्रद व्रतमें आश्विन मासमें (शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको) स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये। तदनन्तर गन्ध, माल्य तथा अनुलेपनादिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौका निम्नलिखित मन्त्रसे पूजन करे—

नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम् ॥
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये ।

(उत्तरपर्व ५१ । ३-४)

‘देवि ! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयदात्री हैं, आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी

प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।’

तत्पश्चात् ताप्रपात्रमें एक सेर तिल रखकर उसपर वृषभकी स्वर्ण-प्रतिमा स्थापित करे और उसकी वस्त्र, माल्य, गुड़ आदिसे पूजा करे। सायंकालमें ‘अर्यमा प्रीयताम्’ यह कहकर सब सामग्री भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको निवेदित करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन करे तथा भूमिपर ही मात्सर्यरहित होकर शयन करे। प्रातः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको पूजा आदिसे संतुष्ट करे। प्रत्येक मासमें दो वस्त्र, स्वर्णमय वृषभ और गौ आदिका पूजनपूर्वक दान करे। संवत्सरके अन्तमें ईख, गुड़, वस्त्र, पात्र, आसन, गदा, तकिया आदिसे समन्वित शय्या, एक सेर तिलसे पूर्ण ताप्रपात्र, सौवर्ण वृषभ ‘विश्वात्मा प्रीयताम्’ कहकर वेदज्ञ ब्राह्मणको दान करे। इस विधिसे शुभससमी-व्रत करनेवाला व्यक्ति जन्म-

* कई व्रत-निबन्धों एवं पुराणोंमें इसे ही कमल-षष्ठी भी कहा गया है।

जन्ममें विमल कीर्ति एवं श्री प्राप्त करता है और देवलोकमें पूजित तथा प्रलयपर्यन्त गणाधिप होता है। एक कल्पके अनन्तर वह पृथ्वीपर जन्म लेकर सातों द्वीपोंका चक्रवर्ती सम्राट् होता है। यह पुण्यदायिनी शुभ-सप्तमी सहस्रों ब्रह्महत्या।

और सैकड़ों भ्रूणहत्या आदि पापोंका नाश करती है। इस शुभ-सप्तमीके माहात्म्यको जो पढ़ता है अथवा क्षणभर भी सुनता है, वह शरीर छूटनेपर विद्याधरोंका अधिपति होता है^१।

(अध्याय ५१)

सप्तमी-स्नपनव्रत और उसकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! मनुष्यको अपने मनमें उद्भूत उद्भेद तथा खेद-खिन्नता और अपनी दरिद्रताकी निवृत्तिके लिये अद्भुत^२-शान्तिके निमित्त कौन-सा धर्म-कृत्य करना चाहिये? मृतवत्सा स्त्रीको (जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं) अपनी संततिकी रक्षा और दुःस्वप्रादिकी शान्तिके लिये क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! पूर्वजन्मके पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं कल्याणकारी सप्तमी-स्नपन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोगोंकी पीड़ाका विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, वृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु होती देखी जाती है, वहाँ उसकी शान्तिके लिये इस 'मृतवत्साभिषेक' को बतला रहा हूँ। यह समस्त अद्भुत उत्पातों, उद्भेदों और चित्त-भ्रमोंका भी विनाशक है।

वराह-कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरमें सत्ययुगमें हैह्यवंशीय क्षत्रियोंके कुलकी शोभा बढ़ानेवाला कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ था। उसने सतहत्तर हजार वर्षतक धर्म और नीतिपूर्वक समस्त प्रजाओंका पालन किया। उसके सौ पुत्र थे, जो च्यवनमुनिके शापसे दग्ध हो गये। फिर राजाने भगवान् सूर्यकी विधिपूर्वक उपासना

प्रारम्भ की। कृतवीर्यके उपवास-व्रत, पूजा और स्तोत्रोंसे संतुष्ट होकर भगवान् सूर्यने उसे अपना दर्शन दिया और कहा—‘कृतवीर्य! तुम्हें (कार्तवीर्य नामक) एक सुन्दर एवं चिरायु पुत्र उत्पन्न होगा, किंतु तुम्हें अपने पूर्वकृत पापोंको विनष्ट करनेके लिये स्नपन-सप्तमी नामक व्रत करना पड़ेगा। तुम्हारी मृतवत्सा पत्नीके जब पुत्र उत्पन्न हो जाय तो सात महीनेपर बालकके जन्म-नक्षत्रकी तिथिको छोड़कर शुभ दिनमें ग्रह एवं ताराबलको देखकर ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराना चाहिये। इसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये किये जानेवाले इस व्रतमें जन्म-नक्षत्रका परित्याग कर देना चाहिये। गोदुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाकर मातृकाओं, भगवान् सूर्य एवं रुद्रकी तुष्टिके लिये अर्पण करना चाहिये और फिर भगवान् सूर्यके नामसे अग्निमें घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। फिर बादमें रुद्रसूक्तसे भी आहुतियाँ देनी चाहिये। इस आहुतिमें आक एवं पलाशकी समिधाएँ प्रयुक्त करनी चाहिये तथा हवन-कार्यमें काले तिल, जौ एवं घीकी एक सौ आठ आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। हवनके बाद शीतल गङ्गाजलसे स्नान करना चाहिये। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश

१-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अध्याय ८०)-में इसी रूपमें प्राप्त होता है।

२-सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्ड्य २६) तथा अर्थर्वपरिशिष्ट (७२)-में अद्भुत-शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वोषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेषित कर दे। फिर हाथीसार, घुड़शाल, बिमौट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वार—इन सात जगहोंसे शुद्ध मृत्तिका लाकर उन सभी कलशोंमें डाल दे।'

तदनन्तर ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात सुलक्षणा स्त्रियोंद्वारा जो पुष्प-माला और वस्त्राभूषणोंद्वारा पूजित हों, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर इनके अतिरिक्त अन्यान्य देव-समूह इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों, वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमा ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके

गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको बालककी रक्षाके लिये इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—‘यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था, उसे वडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों।’ इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके बिदा करे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यानको ‘सूर्यदेवको नमस्कार है’—यह कहकर खा जाय। यह व्रत उद्विग्रहा और दुःस्वप्रादिमें भी प्रशस्त माना गया है।

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये, क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य इस विधानके अनुसार इस व्रतका सदा अनुष्ठान करता है, वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। राजन्! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमी-स्त्रपनव्रतका विधान

१-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवपुत्रा च भाविनो । आदित्यचन्द्रमासाध्यं ग्रहनक्षत्रमण्डलम्॥

शक्रः सलोकपालो वै ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः । एते चान्ये च वै देवाः सदा पान्तु कुमारकम्॥

मा शनिर्मा स हुतभुद्मा च बालग्रहः । क्वचित् । पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातृजनकस्य वै ॥ (उत्तरपर्व ५२। २६-२८)

२-दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वृष्टशतं सुखी । यत्क्षिण्डस्य दुरितं तत्क्षसं वडवामुखे ॥

ब्रह्मा रुद्रो विष्णुः स्कन्दो वायुः शक्रो हुताशनः । रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदा यानु सर्वदा ॥ (उत्तरपर्व ५२। ३२-३३)

बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी)-से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये^१। यह व्रत बड़े-बड़े पापोंका

विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको सुनता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है^२। (अध्याय ५२)

अचलाससमीरे-व्रत-कथा तथा व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने सभी उत्तम फलोंको देनेवाले माघस्नानका^३ विधान बतलाया था, परंतु जो प्रातःकाल स्नान करनेमें समर्थ न हो तो वह क्या करे? स्त्रियाँ अति सुकुमारी होती हैं, वे किस प्रकार माघस्नानका कष्ट सहन कर सकती हैं? इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि थोड़ेसे परिश्रमसे भी नारियोंको रूप, सौभाग्य, संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं अचलाससमीका अत्यन्त गोपनीय विधान आपको बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सब उत्तम फल प्राप्त हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें आप एक कथा सुनें—

मगध देशमें अति रूपवती इन्दुमती नामकी एक वेश्या रहती थी। एक दिन वह वेश्या प्रातःकाल बैठी-बैठी संसारकी अनवस्थिति (नश्वरता)-का इस प्रकार चिन्तन करने लगी—देखो! यह विषयरूपी संसार-सागर कैसा भयंकर है, जिसमें छूबते हुए जीव जन्म-मृत्यु-जरा आदिसे तथा जल-जन्माओंसे पीड़ित होते हुए भी किसी प्रकार पार उतर नहीं पाते। ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित यह प्राणिसमुदाय

अपने किये गये कर्मरूपी ईंधनसे एवं कालरूपी अग्निसे दग्ध कर दिया जाता है। प्राणियोंके जो धर्म, अर्थ, कामसे रहित दिन व्यतीत होते हैं, फिर वे कहाँ वापस आते हैं? जिस दिन स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्म नहीं किया जाता, वह दिन व्यर्थ है। पुत्र, स्त्री, घर, क्षेत्र तथा धन आदिकी चिन्तामें सारी आयु बीत जाती है और मृत्यु आकर धर दबोचती है।

इस प्रकार कुछ निर्विण्ण—उद्विग्न होकर सोचती-विचारती हुई वह इन्दुमती वेश्या महर्षि वसिष्ठके आश्रममें गयी और उन्हें प्रणामकर हाथ जोड़कर कहने लगी—‘महाराज! मैंने न तो कभी कोई दान दिया, न जप, तप, व्रत, उपवास आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया और न शिव, विष्णु आदि किन्हीं देवताओंकी आराधना की, अब मैं इस भयंकर संसारसे भयभीत होकर आपकी शरण आयी हूँ, आप मुझे कोई ऐसा व्रत बतलायें, जिससे मेरा उद्धार हो जाय।’

वसिष्ठजी बोले—‘वरानने! तुम माघ मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमीको स्नान करो, जिससे रूप, सौभाग्य और सद्गति आदि सभी फल प्राप्त होते

१-आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात्। शंकराज्ञानमिच्छेतु गतिमिच्छेजनार्दनात्॥ (उत्तरपर्व ५२। ३९)

२-भविष्यपुराणका यह अध्याय मत्स्यपुराण (अ० ६८)-से प्राप्त: मिलता है।

३-यह सप्तमी पुराणोंमें रथ, सूर्य, भानु, अर्क, महती, पुत्रसप्तमी आदि अनेक नामोंसे विख्यात है और अनेक पुराणोंमें उन-उन नामोंसे अलग-अलग विधियाँ निर्दिष्ट हैं, जिनसे सभी अभिलाषाएँ पूरी होती हैं।

४-पुराणोंका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। माघस्नानकी विस्तृत विधि पद्मपुराणके उत्तरखण्ड एवं वायुपुराणमें प्राप्त होती है। इनमें बड़ी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कथाएँ हैं।

हैं। षष्ठीके दिन एक बार भोजनकर सप्तमीको प्रातःकाल ही ऐसे नदीतट अथवा जलाशयपर जाकर दीपदान और स्नान करो, जिसके जलको किसीने स्नानकर हिलाया न हो, क्योंकि जल मलको प्रक्षालित कर देता है। बादमें यथाशक्ति दान भी करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।' वसिष्ठजीका ऐसा वचन सुनकर इन्दुमती अपने घर वापस लौट आयी और उनके द्वारा बतायी गयी विधिके अनुसार उसने स्नान-ध्यान आदि कर्मोंको सम्पन्न किया। सप्तमीके स्नानके प्रभावसे बहुत दिनोंतक सांसारिक सुखोंका उपभोग करती हुई वह देह-त्यागके पश्चात् देवराज इन्द्रकी सभी अप्सराओंमें प्रधान नायिकाके पदपर अधिष्ठित हुई। यह अचलासप्तमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन करनेवाली तथा सुख-सौभाग्यकी वृद्धि करनेवाली है।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अचलासप्तमीका माहात्म्य तो आपने बतलाया, कृपाकर अब स्नानका विधान भी बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! षष्ठीके दिन एकभुक्त होकर सूर्यनारायणका पूजन करे। यथासम्भव सप्तमीको प्रातःकाल ही उठकर नदी या सरोवरपर जाकर अरुणोदय आदि वेलामें बहुत सबेरे ही स्नान करनेकी चेष्टा करे। सुवर्ण, चाँदी अथवा ताप्रके पात्रमें कुसुम्भकी रँगी हुई बत्ती और तिलका तेल डालकर दीपक प्रज्वलित करे। उस दीपकको सिरपर रखकर हृदयमें भगवान् सूर्यका इस प्रकार ध्यान करे—

नमस्ते रुद्रस्तुपाय रसानाम्पतये नमः।
वरुणाय नमस्तेऽस्तु हरिवास नमोऽस्तु ते॥
यावज्जन्म कृतं पापं मया जन्मसु सप्तमी।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हन्तु सप्तमी॥

जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके।
सर्वव्याधिहरे देवि नमस्ते रविमण्डले॥
(उत्तरपर्व ५३। ३३—३५)

तदनन्तर दीपकको जलके ऊपर तैरा दे, फिर स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण करे और चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल-कमल बनाये। उस कमलके मध्यमें शिव-पार्वतीकी स्थापना कर प्रणव-मन्त्रसे पूजा करे और पूर्वादि आठ दलोंमें क्रमसे भानु, रवि, विवस्वान्, भास्कर, सविता, अर्क, सहस्रकिरण तथा सर्वात्माका पूजन करे। इन नामोंके आदिमें 'ॐ' कार तथा अन्तमें 'नमः' पद लगाये। यथा—'ॐ भानवे नमः', 'ॐ रवये नमः' इत्यादि।

इस प्रकार पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य तथा वस्त्र आदि उपचारोंसे विधिपूर्वक भगवान् सूर्यकी पूजाकर 'स्वस्थानं गम्यताम्' यह कहकर विसर्जित कर दे। बादमें ताप्र अथवा मिट्टीके पात्रमें गुड़ और घृतसहित तिलचूर्ण तथा सुवर्णका ताल-पत्राकार एक कानका आभूषण बनाकर पात्रमें रख दे। अनन्तर रक्त वस्त्रसे उसे ढँककर पुष्प-धूपादिसे पूजन करे और वह पात्र दौर्भाग्य तथा दुःखोंके विनाशकी कामनासे ब्राह्मणको दे दे। अनन्तर 'सपुत्रपशुभृत्याय मेऽकर्णेऽयं प्रीयताम्' पुत्र, पशु, भृत्यसमन्वित मेरे ऊपर भगवान् सूर्य प्रसन्न हो जाय—ऐसी प्रार्थना करे। फिर गुरुको वस्त्र, तिल, गौ और दक्षिणा देकर तथा यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भोजन कराकर व्रत समाप्त करे।

जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमीको स्नान करता है, उसे सम्पूर्ण माघ-स्नानका फल प्राप्त होता है। जो इस माहात्म्यको भक्तिसे कहेगा या सुनेगा तथा लोगोंको इसका उपदेश करेगा, वह उत्तम लोकको अवश्य प्राप्त करेगा। (अध्याय ५३)

बुधाष्टमीव्रत-कथा तथा माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं बुधाष्टमीव्रतका विधान बतलाता हूँ, जिसे करनेवाला कभी नरकका मुख नहीं देखता। इस विषयमें आप एक आख्यान सुनें। सत्ययुगके प्रारम्भमें मनुके पुत्र राजा इल* हुए। वे अनेक मित्रों तथा भूत्योंसे घिरे रहते थे। एक दिन वे मृगयाके प्रसंगसे एक हिरणका पीछा करते हुए हिमालय पर्वतके समीप एक जंगलमें पहुँच गये। उस वनमें प्रवेश करते ही वे सहसा स्त्री-रूपमें परिणत हो गये। वह वन शिवजी और माता पार्वतीजीका विहार-क्षेत्र था। वहाँ शिवजीकी यह आज्ञा थी कि ‘जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करेगा, वह तत्क्षण ही स्त्री हो जायगा।’ इस कारण राजा इल भी स्त्री हो गये। अब वे स्त्री-रूपसे वनमें विचरण करने लगे। वे यह नहीं समझ सके कि मैं कहाँ आ गया हूँ। उसी समय चन्द्रमाके पुत्र कुमार बुधकी दृष्टि उनपर पड़ी। उसके उत्तम रूपपर आकृष्ट हो बुधने उसे अपनी स्त्री बना लिया। इलासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम पुरुरवा था। पुरुरवासे ही चन्द्रवंशका प्रारम्भ हुआ।

जिस दिन बुधने इलासे विवाह किया, उस दिन अष्टमी तिथि थी, इसलिये यह बुधाष्टमी जगत्में पूज्य हुई। यह बुधाष्टमी सम्पूर्ण पापोंका प्रशमन तथा उपद्रवोंका नाश करनेवाली है।

राजन्! अब मैं आपको एक दूसरी कथा सुना रहा हूँ—विदेह राजाओंकी नगरी मिथिलामें निमि नामके एक राजा थे। वे शत्रुओंद्वारा लड़ाईके मैदानमें मार डाले गये। उनकी स्त्रीका नाम था उर्मिला। उर्मिला जब राज्य-च्युत एवं निराश्रित हो इधर-उधर घूमने लगी, तब अपने बालक और

कन्याको लेकर वह अवन्ति देश चली गयी और वहाँ एक ब्राह्मणके घरमें कार्यकर अपना निर्वाह करने लगी। वह विपत्तिसे पीड़ित थी, गेहूँ पीसते समय वह थोड़ेसे गेहूँ चुराकर रख लेती और उसीसे क्षुधासे पीड़ित अपने बच्चोंका पालन करती। कुछ समय बाद उर्मिलाका देहान्त हो गया। उर्मिलाका पुत्र बड़ा हो गया, वह अवन्तिसे मिथिला आया और पिताके राज्यको पुनः प्राप्तकर शासन करने लगा। उसकी बहन श्यामला विवाह-योग्य हो गयी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। अवन्तिदेशके राजा धर्मराजने उसके उत्तम रूपकी चर्चा सुनकर उसे अपनी रानी बना लिया।

एक दिन धर्मराजने अपनी प्रिया श्यामलासे कहा—‘वैदेहिनन्दिनि! तुम और सभी कामोंको तो करना, परंतु ये सात स्थान जिनमें ताले बंद हैं, इनमें तुम कभी मत जाना।’ श्यामलाने ‘बहुत अच्छा’ कहकर पतिकी बात मान ली, परंतु उसके मनमें कुतूहल बना रहा।

एक दिन जब धर्मराज अपने किसी कार्यमें व्यस्त थे, तब श्यामलाने एक मकानका ताला खोलकर वहाँ देखा कि उसकी माता उर्मिलाको अति भयंकर यमदूत बाँधकर तस तेलके कड़ाहमें बार-बार डाल रहे हैं। लज्जित होकर श्यामलाने वह कमरा बंद कर दिया, फिर दूसरा ताला खोला तो देखा कि वहाँ भी उसकी माताको यमदूत शिलाके ऊपर रखकर पीस रहे हैं और माता चिल्ला रही है। इसी प्रकार उसने तीसरे कमरेको खोलकर देखा कि यमदूत उसकी माताके मस्तकमें लोहेकी कील ठोक रहे हैं, इसी तरह चौथेमें अति भयंकर श्वान उसका

* इनका मुख्य नाम सुद्युम्र था, किंतु जन्मके समय पुत्रीरूपमें उत्पन्न होनेके कारण ‘इला’ और बादमें पुरुष-रूपमें परिवर्तित हो जानेपर ‘इल’ नाम हुआ। इनकी कथा प्रायः सभी पुराणों तथा महाभारत आदिमें भी आती है।

भक्षण कर रहे हैं, पाँचवेंमें लोहेके संदंशसे उसे पीड़ित कर रहे हैं। छठेमें कोलहूके बीच ईखके समान पेरी जा रही है और सातवें स्थानपर ताला खोलकर देखा तो वहाँ भी उसकी माताको हजारों कृमि भक्षण कर रहे हैं और वह रुधिर आदिसे लथपथ हो रही है।

यह देखकर श्यामलाने विचार किया कि मेरी माताने ऐसा कौन-सा पाप किया, जिससे वह इस दुर्गतिको प्राप्त हुई। यह सोचकर उसने सारा वृत्तान्त अपने पति धर्मराजको बतलाया।

धर्मराज बोले—‘प्रिये! मैंने इसीलिये कहा था कि ये सात ताले कभी न खोलना, नहीं तो तुम्हें वहाँ पश्चात्ताप होगा। तुम्हारी माताने संतानके स्लेहसे ब्राह्मणके गेहूँ चुराये थे, क्या तुम इस बातको नहीं जानती हो जो तुम मुझसे पूछ रही हो? यह सब उसी कर्मका फल है। ब्राह्मणका धन स्लेहसे भी भक्षण करे तो भी सात कुल अधोगतिको प्राप्त होते हैं और चुराकर खाये तो जबतक चन्द्रमा और तारे हैं, तबतक नरकसे उद्धार नहीं होता। जो गेहूँ इसने चुराये थे, वे ही कृमि बनकर इसका भक्षण कर रहे हैं।’

श्यामलाने कहा—महाराज! मेरी माताने जो कुछ भी पहले किया, वह सब मैं जानती ही हूँ, फिर भी अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे मेरी माताका नरकसे उद्धार हो जाय। इसपर धर्मराजने कुछ समय विचार किया और कहने लगे—‘प्रिये! आजसे सात जन्म पूर्व तुम ब्राह्मणी थी। उस समय तुमने अपनी सखियोंके साथ जो बुधाष्टीका व्रत किया था, यदि उसका फल तुम संकल्पपूर्वक अपनी माताको दे दो तो इस संकटसे उसकी मुक्ति हो जायगी।’ यह सुनते ही श्यामलाने स्नानकर अपने व्रतका पुण्यफल संकल्पपूर्वक माताके लिये दान कर दिया। व्रतके

फलके प्रभावसे उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धारणकर विमानमें बैठकर अपने पतिसहित स्वर्गलोकको चली गयी और बुध ग्रहके समीप स्थित हो गयी।

राजन्! अब इस व्रतके विधानको भी आप सावधान होकर सुनें—जब-जब शुक्ल पक्षकी अष्टमीको बुधवार पड़े तो उस दिन एकभुक्त-व्रत करना चाहिये। पूर्वाह्नमें नदी आदिमें स्नान करे और वहाँसे जलसे भरा नवीन कलश लाकर घरमें स्थापित कर दे, उसमें सोना छोड़ दे और बाँसके पात्रमें पकवान भी रखे। आठ बुधाष्टमियोंका व्रत करे और आठोंमें क्रमसे ये आठ पकवान—मोदक, घीका अपूप, वटक, श्वेत कसारसे बने पदार्थ, सोहालक (खांडयुक्त अशोकवर्तिका) और फल, पुष्प तथा फेनी आदि अनेक पदार्थ बुधको निवेदित कर बादमें स्वयं भी अपने इष्ट-मित्रोंके साथ भोजन करे। साथ ही बुधाष्टमीकी कथा भी सुने। बिना कथा सुने भोजन न करे। बुधकी एक माशे (८ रत्ती=एक माशा) या आधे माशेकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर गथ, पुष्प, नैवेद्य, पीत वस्त्र तथा दक्षिणा आदिसे उसका पूजन करे। पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

‘ॐ बुधाय नमः, ॐ सोमात्मजाय नमः,
ॐ दुर्बुद्धिनाशनाय नमः, ॐ सुबुद्धिप्रदाय नमः,
ॐ ताराजाताय नमः, ॐ सौम्यग्रहाय नमः तथा
ॐ सर्वसौख्यप्रदाय नमः।’

तदनन्तर निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर मूर्तिके साथ-साथ वह भोज्य-सामग्री तथा अन्य पदार्थ ब्राह्मणको दान कर दे—

ॐ बुधोऽयं प्रतिगृह्णातु द्रव्यस्थोऽयं बुधः स्वयम्।
दीयते बुधराजाय तुष्ट्यतां च बुधो मम॥

(उत्तरपर्व ५४।५१)

ब्राह्मण भी मूर्ति आदि ग्रहणकर यह मन्त्र पढ़े—

बुधः सौम्यस्तारकेयो राजपुत्र इलापतिः ।
कुमारो द्विजराजस्य यः पुरुषवसः पिता ॥
दुर्बुद्धिबोधदुरितं नाशयित्वावयोर्बुधः ।
सौख्यं च सौमनस्यं च करोतु शशिनन्दनः ॥
(उत्तरपर्व ५४।५२-५३)

इस विधिसे जो बुधाष्टमीका व्रत करता है, वह सात जन्मतक जातिस्मर होता है। धन, धन्य,

पुत्र, पौत्र, दीर्घ आयुष्य और ऐश्वर्य आदि संसारके सभी पदार्थोंको प्राप्त कर अन्त समयमें नारायणका स्मरण करता हुआ तीर्थ-स्थानमें प्राण त्याग करता है और प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। जो इस विधानको सुनता है, वह भी ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है१ ।

(अध्याय ५४)

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—अच्युत ! आप विस्तारसे (अपने जन्म-दिन) जन्माष्टमीव्रतका विधान बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! जब मथुरामें कंस मारा गया, उस समय माता देवकी मुझे अपनी गोदमें लेकर रोने लगीं। पिता वसुदेवजी भी मुझे तथा बलदेवजीको आलिङ्गित कर गद्दवाणीसे कहने लगे—‘आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं अपने दोनों पुत्रोंको कुशलसे देख रहा हूँ। सौभाग्यसे आज हम सभी एकत्र मिल रहे हैं।’ हमारे माता-पिताको अति हर्षित देखकर बहुतसे लोग वहाँ एकत्र हुए और मुझसे कहने लगे—‘भगवन् ! आपने बहुत बड़ा काम किया, जो इस दुष्ट कंसको मारा। हम सभी इससे बहुत पीड़ित थे। आप कृपाकर यह बतलायें कि आप माता देवकीके गर्भसे कब आविर्भूत हुए थे ? हम सब उस दिन महोत्सव मनाया करेंगे। आपको बार-बार नमस्कार है, हम

सब आपकी शरण हैं। आप हम सभीपर प्रसन्न होइये। उस समय पिता वसुदेवजीने भी मुझसे कहा था कि अपना जन्मदिन इन्हें बता दो।’

तब मैंने मथुरानिवासी जनोंको जन्माष्टमीव्रतका रहस्य बतलाया और कहा—‘पुरवासियो ! आपलोग मेरे जन्मदिनको विश्वमें जन्माष्टमीके नामसे प्रसारित करें। प्रत्येक धार्मिक व्यक्तिको जन्माष्टमीका व्रत अवश्य करना चाहिये। जिस समय सिंह राशिपर सूर्य और वृषराशिपर चन्द्रमा था, उस भाद्रपद मासकी कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथिको अर्धरात्रिमें रोहिणी नक्षत्रमें मेरा जन्म हुआ२ । वसुदेवजीके द्वारा माता देवकीके गर्भसे मैंने जन्म लिया। यह दिन संसारमें जन्माष्टमी नामसे विख्यात होगा। प्रथम यह व्रत मथुरामें प्रसिद्ध हुआ और बादमें सभी लोकोंमें इसकी प्रसिद्धि हो गयी। इस व्रतके करनेसे संसारमें शान्ति होगी, सुख प्राप्त होगा और प्राणिवर्ग रोगरहित होगा।’

१-मत्स्यपुराणमें बुधका स्वरूप इस प्रकार बतलाया गया है—

पीतमाल्याप्यरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥ (९४।४)

बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीरकान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरदमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं।

हेमाद्रि, व्रतराज तथा जयसिंहकल्पद्रुम आदि निबन्धग्रन्थोंमें भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे बुधाष्टमीव्रत दिया गया है, पर पाठ-भेद अधिक हैं। व्रतराजमें बुधके पूजनकी तथा व्रतके उद्यापनकी विधि भी भविष्योत्तरपुराणके नामसे दी गयी हैं। इस कथामें बुद्धि, युक्ति और विमर्श-शक्तिका भी पर्याप्त सम्प्रश्न दीखता है।

२-सिंहराशिगते सूर्ये गगने जलदाकुले । मासि भाद्रपदेष्टम्यां कृष्णपक्षेऽर्धरात्रके ।

बृषराशिस्थिते चन्द्रे नक्षत्रे रोहिणीयुते ॥ (उत्तरपर्व ५५।१४)

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप इस व्रतका विधान बतलायें, जिसके करनेसे आप प्रसन्न होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस एक ही व्रतके कर लेनेसे सात जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं। व्रतके पहले दिन दन्तधावन आदि करके व्रतका नियम ग्रहण करे। व्रतके दिन मध्याह्नमें स्थानकर माता भगवती देवकीका एक सूतिका-गृह बनाये। उसे पद्मरागमणि और वनमाला* आदिसे सुशोभित करे। गोकुलकी भाँति गोप, गोपी, घण्टा, मृदङ्ग, शङ्ख और माझळ्य-कलश आदिसे समन्वित तथा अलंकृत सूतिका-गृहके द्वारपर रक्षाके लिये खड्ग, कृष्ण छाग, मुशल आदि रखे। दीवालोंपर स्वस्तिक आदि माझळिक चिह्न बना दे। षष्ठीदेवीकी भी नैवेद्य आदिके साथ स्थापना करे। इस प्रकार यथाशक्ति उस सूतिका-गृहको विभूषितकर बीचमें पर्यङ्कके ऊपर मुझसहित अर्धसुसावस्थावाली, तपस्विनी माता देवकीकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाएँ आठ प्रकारकी होती हैं—स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, पीतल, मृत्तिका, काष्ठकी, मणिमयी तथा चित्रमयी। इनमेंसे किसी भी वस्तुकी सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। माता देवकीका स्तनपान करती हुई बालस्वरूप मेरी प्रतिमा उनके समीप पलांगके ऊपर स्थापित करे। एक कन्याके साथ माता यशोदाकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित की जाय। सूतिका-मण्डपके ऊपरकी भित्तियोंमें देवता, ग्रह, नाग तथा विद्याधर आदिकी मूर्तियाँ हाथोंसे पुष्ट-वर्षा करते हुए बनाये। वसुदेवजीको भी सूतिका-गृहके बाहर खड्ग और ढाल धारण किये चित्रित करना चाहिये। वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अवतार हैं और देवकी माता अदितिकी। बलदेवजी शेषनागके

अवतार हैं, नन्दबाबा दक्षप्रजापतिके, यशोदा दितिकी और गर्गमुनि ब्रह्माजीके अवतार हैं। कंस कालनेमिका अवतार है। कंसके पहरेदारोंको सूतिका-गृहके आस-पास निद्रावस्थामें चित्रित करना चाहिये। गौ, हाथी आदि तथा नाचती-गाती हुई अप्सराओं और गन्धर्वोंकी प्रतिमा भी बनाये। एक ओर कालिय नागको यमुनाके हृदमें स्थापित करे।

इस प्रकार अत्यन्त रमणीय नवसूतिका-गृहमें देवी देवकीका स्थापनकर भक्तिसे गन्ध, पुष्ट, अक्षत, धूप, नारियल, दाढ़िम, ककड़ी, बीजपूर, सुपारी, नारंगी तथा पनस आदि जो फल उस देशमें उस समय प्राप्त हों, उन सबसे पूजनकर माता देवकीकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

गायद्विः किन्नराद्यैः सततपरिवृता वेणुवीणानिनादै-

र्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रमरकृतकरैः सेव्यमाना मुनीन्द्रैः ।
पर्यङ्के स्वास्त्रते या मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते
सा देवी देवमाता जयति सुवदना देवकी कान्तरूपा ॥

(उत्तरपर्व ५५। ४२)

‘जिनके चारों ओर किंनर आदि अपने हाथोंमें वेणु तथा वीणा-बाद्योंके द्वारा स्तुति-गान कर रहे हैं और जो अभिषेक-पात्र, आदर्श, मङ्गलमय कलश तथा चँवर हाथोंमें लिये श्रेष्ठ मुनिगणोंद्वारा सेवित हैं तथा जो कृष्ण-जननी भलीभाँति बिछे हुए पलांगपर विराजमान हैं, उन कमनीय स्वरूपवाली सुवदना देवमाता अदिति-स्वरूपा देवी देवकीकी जय हो।’

उस समय यह ध्यान करे कि कमलासना लक्ष्मी देवकीके चरण दबा रही हों। उन देवी लक्ष्मीकी—‘नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।’ इस मन्त्रसे पूजा करे। इसके बाद ‘ॐ देवक्यै नमः, ॐ वसुदेवाय नमः, ॐ बलभद्राय नमः,

* आजानुलम्बिनी ऋतु-पुष्योंकी माला और पद्मराग, मुक्ता आदि पञ्चमणियोंकी माला तथा तुलसीपत्रमिश्रित विविध पुष्योंकी मालाको भी वनमाला, जयमाला और वैजयन्ती माला कहा गया है।

ॐ श्रीकृष्णाय नमः, ॐ सुभद्रायै नमः, ॐ नन्दाय नमः तथा ॐ यशोदायै नमः'—इन नाम-मन्त्रोंसे सबका अलग-अलग पूजन करे।

कुछ लोग चन्द्रमाके उदय हो जानेपर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान कर हरिका ध्यान करते हैं, उन्हें निप्रलिखित मन्त्रोंसे हरिका ध्यान करना चाहिये—

अनधं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्।
वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥
वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं ब्राह्मणप्रियम्।
दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम्॥
गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्।
अधोक्षजं जगद्वीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम्॥
अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम्।
नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्।
श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम्॥

(उत्तरपर्व ५५। ४६—५०)

—इन मन्त्रोंसे भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके 'योगेश्वराय योगसम्भवाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः'—इस मन्त्रसे प्रतिमाको स्नान कराना चाहिये। अनन्तर 'यज्ञेश्वराय यज्ञसम्भवाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमो नमः'—इस मन्त्रसे अनुलेपन, अर्घ्य, धूप, दीप आदि अर्पण करे। तदनन्तर 'विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः।' इस मन्त्रसे नैवेद्य निवेदित करे। दीप अर्पण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—'धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः।'

इस प्रकार वेदीके ऊपर रोहिणीसहित चन्द्रमा, वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा और बलदेवजीका पूजन करे, इससे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है। चन्द्रोदयके समय इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केन्दो रोहिण्या सहितो मम ॥
(उत्तरपर्व ५५। ५४)

आधी रातको गुड़ और धीसे वसोर्धाराकी आहुति देकर षष्ठीदेवीकी पूजा करे। उसी क्षण नामकरण आदि संस्कार भी करने चाहिये। नवमीके दिन प्रातःकाल मेरे ही समान भगवतीका भी उत्सव करना चाहिये। इसके अनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर 'कृष्णो मे प्रीयताम्' कहकर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये और यह मन्त्र भी पढ़ना चाहिये—

यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्।
भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

(उत्तरपर्व ५५। ६०)

इसके बाद ब्राह्मणोंको बिदा करे और ब्राह्मण कहे—'शान्तिरस्तु शिवं चास्तु।'

धर्मनन्दन! इस प्रकार जो मेरा भक्त पुरुष अथवा नारी देवी देवकीके इस महोत्सवको प्रतिवर्ष करता है, वह पुत्र, संतान, आरोग्य, धन-धान्य, सदगृह, दीर्घ आयुष्य और राज्य तथा सभी मनोरथोंको प्राप्त करता है। जिस देशमें यह उत्सव किया जाता है, वहाँ जन्म-मरण, आवागमनकी व्याधि, अवृष्टि तथा ईति-भीति आदिका कभी भय नहीं रहता। मेघ समयपर वर्षा करते हैं। पाण्डुपुत्र! जिस घरमें यह देवकी-ब्रत किया जाता है, वहाँ अकालमृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा वैधव्य, दौर्भाग्य एवं कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस ब्रतको करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है। इस ब्रतके करनेवाले संसारके सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें निवास करते हैं।

(अध्याय ५५)

दूर्वाकी उत्पत्ति एवं दूर्वाष्टमीव्रतका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिको अत्यन्त पवित्र दूर्वाष्टमीव्रत होता है। जो पुरुष इस पुण्य दूर्वाष्टमीका श्रद्धापूर्वक व्रत करता है, उसके वंशका क्षय नहीं होता। दूर्वाके अङ्गुरोंकी तरह उसके कुलकी वृद्धि होती रहती है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—लोकनाथ ! यह दूर्वा कहाँसे उत्पन्न हुई ? कैसे चिरायु हुई तथा यह क्यों पवित्र मानी गयी और लोकमें वन्द्य तथा पूज्य कैसे हुई ? इसे भी बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—देवताओंके द्वारा अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरके मध्ये जानेपर भगवान् विष्णुने अपनी जंघापर हाथसे पकड़कर मन्दराचलको धारण किया था। मन्दराचलके वेगसे भ्रमण करनेके कारण रगड़से विष्णुभगवान्के जो रोम उखड़कर समुद्रमें गिरे थे, पुनः समुद्रकी लहरोंद्वारा उछाले गये वे ही रोम हरित वर्णके सुन्दर एवं शुभ दूर्वाके रूपमें उत्पन्न हुए। उसी दूर्वापर देवताओंने मन्थनसे उत्पन्न अमृतका कुम्भ रखा, उससे जो अमृतके बिन्दु गिरे, उनके स्पर्शसे वह दूर्वा अजर-अमर हो गयी। वह देवताओंके लिये पवित्र तथा वन्द्य हुई। देवताओंने भाद्रपदकी शुक्ला अष्टमीको गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य,

खर्जूर, नारिकेल, द्राक्षा, कपित्थ, नारंग, आम्र, बीजपूर, दाढ़िम आदि फलों तथा दही, अक्षत, माला आदिसे निम्न मन्त्रोंद्वारा उसका पूजन किया—

त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दिता च सुरासुरैः ।
सौभाग्यं संततिं कृत्वा सर्वकार्यकरी भव ॥
यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ।
तथा ममापि संतानं देहि त्वमजरामरे ॥

(उत्तरपर्व ५६ । १२-१३)

देवताओंके साथ ही उनकी पत्रियाँ तथा अप्सराओंने भी उसका पूजन किया। मर्त्यलोकमें वेदवती, सीता, दमयन्ती आदि स्त्रियोंके द्वारा भी सौभाग्यदायिनी यह दूर्वा पूजित (वन्दित) हुई और सभीने अपना-अपना अभीष्ट प्राप्त किया। जो भी नारी स्नानकर शुद्ध वस्त्र धारणकर दूर्वाका पूजन कर तिलपिष्ट, गोधूम और सप्तधान्य आदिका दानकर ब्राह्मणको भोजन कराती है और श्रद्धासे इस पुण्य तथा संतानकारक दूर्वाष्टमी-व्रतको करती है वह पुत्र, सौभाग्य—धन आदि सभी पदार्थोंको प्राप्तकर बहुत कालतक संसारमें सुख भोगकर अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गमें जाती है और प्रलयपर्यन्त वहाँ निवास करती है तथा देवताओंके द्वारा आनन्दित होती है।

(अध्याय ५६)

मासिक कृष्णाष्टमी *-व्रतोंकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! अब आप समस्त पापों तथा भयोंके नाशक, धर्मप्रद और भगवान् शंकरके प्रीतिकारक मासिक कृष्णाष्टमी-

व्रतोंके विधानका श्रवण करें। मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमीको उपवासके नियम ग्रहणकर जितेन्द्रिय और क्रोधरहित हो गुरुके आज्ञानुसार उपवास

* यह श्रीकृष्णजन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठान-विधिका वर्णन मत्स्यपुराण, अध्याय ५६, नारदपुराण, सौरपुराण १४। १-३६, व्रत-कल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे हैं। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये। ज्योतिषग्रन्थों और पुराणोंके अनुसार अष्टमी तिथिके स्वामी शिव ही हैं। अतः अष्टमी तथा चतुर्दशीको उनकी उपासना विशेष कल्याणकारिणी होती है।

करे। मध्याह्नके अनन्तर नदी आदिमें स्नानकर गन्ध, उत्तम पुष्प, गुगुल, धूप, दीप, अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि उपचारोंसे शिवलिङ्गका पूजनकर काले तिलोंसे हवन करे। इस मासमें शंकरजीका पूजन करे और गोमूत्र-पानकर रात्रिमें भूमिपर शयन करे, इससे अतिरात्र-यज्ञका फल प्राप्त होता है। पौष मासकी कृष्णाष्टमीको शम्भु नामसे महेश्वरका पूजनकर घृत प्राशन करनेसे वाजपेय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। माघ मासकी कृष्णाष्टमीको महेश्वर नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोदुध-प्राशन करनेसे अनेक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। फाल्गुन मासकी कृष्णाष्टमीमें महादेव नामसे उनका पूजनकर तिल भक्षण करनेसे आठ राजसूय-यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमीमें स्थाणु नामसे शिवका पूजनकर यवका भोजन करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। वैशाख मासकी कृष्णाष्टमीमें शिव नामसे इनका पूजनकर रात्रिमें कुशोदक-पान करनेसे दस पुरुषमेध यज्ञोंका फल मिलता है। ज्येष्ठ मासकी कृष्णाष्टमीमें पशुपति नामसे भगवान् शंकरका पूजनकर गोशृंगजलका पान करनेसे लाख गोदानका फल मिलता है। आषाढ़ मासकी कृष्णाष्टमीमें उग्र नामसे शंकरका पूजनकर गोमय-प्राशन करनेवाला दस लाख वर्षसे भी अधिक समयतक रुद्रलोकमें निवास करता है। श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीमें शर्व नामसे भगवान् शंकरकी पूजाकर रात्रिमें अर्क-प्राशन करनेसे बहुत-सा सुवर्ण-दान किये जानेवाले यज्ञका फल मिलता

है। भाद्रपद मासकी कृष्णाष्टमीमें त्र्यम्बक नामसे इनकी पूजाकर एवं बिल्वपत्रका भक्षण करनेसे अन्न-दानका फल मिलता है। आश्विन मासकी कृष्णाष्टमीमें भव नामसे भगवान् शंकरका यजनकर तण्डुलोदकका पान करनेसे सौ पुण्डरीक यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। इसी प्रकार कार्तिक मासकी कृष्णाष्टमीमें रुद्र नामसे भगवान् शंकरकी भक्तिसे पूजाकर रात्रिमें दहीका प्राशन करनेसे अग्निष्टोम-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

इस प्रकार बारह महीने शिवजीका पूजन कर अन्तमें शिवभक्त ब्राह्मणोंको घृत, शर्करायुक्त पायस भोजन कराये तथा यथाशक्ति सुवर्ण, वस्त्र आदि उनको देकर प्रसन्न करे। काले तिलसे पूर्ण बारह कलश, छाता, जूता तथा वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देकर दूध देनेवाली सवत्सा एक कृष्णवर्णकी गौ भी महादेवजीको निवेदित करे। इस मासिक कृष्णाष्टमी-ब्रतको जो एक वर्षतक निरन्तर करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करता है और सौ वर्षपर्यन्त संसारके आनन्दोंका उपभोग करता है। इसी ब्रतका अनुष्ठान कर इन्द्र, चन्द्र, ब्रह्म तथा विष्णु आदि देवताओंने उत्तम-उत्तम पदोंको प्राप्त किया है। जो स्त्री-पुरुष इस ब्रतको भक्तिपूर्वक करते हैं, वे उत्तम विमानमें बैठकर देवताओंद्वारा स्तुत होते हुए शिवलोकमें जाते हैं और भगवान् शंकरके ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो जाते हैं। वहाँ आठ कल्पपर्यन्त निवास करते हैं और जो इस ब्रतके माहात्म्यको सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। (अध्याय ५७)

अनघाष्टमीव्रतकी कथा एवं विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीके महातेजस्वी अत्रि पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। अत्रिकी भार्याका नाम था अनसूया, वह महान् भाग्यशालिनी एवं पतिव्रता थी। कुछ कालके बाद उनके महातेजस्वी पुत्र दत्त हुए। दत्त महान् योगी थे। ये विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे। इनका दूसरा नाम था अनघ। इनकी भार्याका नाम था नदी। ब्राह्मणोंके सभी गुणोंसे सम्पन्न इनके आठ पुत्र थे। ‘दत्त’ विष्णुरूपमें थे तथा ‘नदी’ लक्ष्मीकी रूप थीं। दत्त अपनी भार्या नदीके साथ योगाभ्यासमें लीन थे, उसी समय जम्भ* नामक दैत्यसे पीड़ित तथा पराजित देवता विन्ध्यगिरिमें स्थित इनके आश्रममें आये और उन्होंने इनकी शरण ग्रहण की। दत्तात्रेयजीने इन्द्रके साथ उन सभी देवताओंको अपने योगबलसे अपने आश्रममें रख लिया और कहा—‘आपलोग निर्भय तथा निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।’ देवगण अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे वहाँ रहने लगे।

दैत्य-समुदाय भी देवताओंको खोजते-खोजते इसी आश्रमपर आ पहुँचा। वे क्रोधपूर्वक ललकारकर कहने लगे—‘इस मुनिकी पत्नीको पकड़ लो और यह सारा आश्रम उजाड़ डालो।’ यह कहते हुए दैत्यगण आश्रममें घुस गये और उनकी पत्नीको उठाकर अपने सिरपर रखकर चल पड़े। लक्ष्मीको सिरपर उठाते ही सभी दैत्य श्रीहीन हो गये और दत्तकी दृष्टि पड़नेसे वे सभी दैत्य भागने और नष्ट होने लगे। देवताओंने भी उन्हें मारना प्रारम्भ कर दिया। निश्चेष्ट होकर दैत्यगण हाहाकार करने लगे। दत्तमुनिके प्रभावसे वहाँ प्रलय मच गया। इन्द्रादि देवताओंने सभी असुरोंको पराजित कर दिया और फिर वे सभी अपने-अपने लोक चले

गये तथा पूर्ववत् आनन्दसे रहने लगे। देवताओंने उन भगवान् दत्तात्रेयकी महिमा और प्रभावको ही इसमें कारण माना।

दत्तात्रेयजी भी संसारके कल्याणके लिये ऊर्ध्वबाहु होकर कठिन तपस्या करने लगे। वे योगमार्गका आश्रय लेकर ध्यान-समाधिमें स्थित हो गये। इसी प्रकार समाधिमें उन्हें तीन हजार वर्ष व्यतीत हो गये। एक दिन माहिष्मतीके राजा हैह्याधिपति कार्तवीर्यार्जुन उनके पास आया और रात-दिन उनकी सेवा करने लगा। दत्त उसकी सेवासे अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसकी याचनापर उसे चार वर प्रदान किये—पहला वर था हजार हाथ हो जायँ, दूसरे वरसे सारी पृथ्वीको अधर्मसे बचाते हुए धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करना। तीसरे वरसे लड़ाईके मैदानमें किसीसे पराजित न होना तथा चौथे वरसे भगवान् विष्णुके हाथों मृत्यु होना।

कौन्तेय ! योगाभ्यासमें लीन उन दत्तमुनिने कार्तवीर्यार्जुनको अष्टसिद्धियोंसे समन्वित चक्रवर्ती-पदवाले राज्यको प्रदान किया। कार्तवीर्यार्जुनने भी सप्तद्वीपा वसुमतीको धर्मपूर्वक अपने अधीन कर लिया। यह सब उसके हजार बाहुओंका प्रभाव था। वह अपनी मायाद्वारा यज्ञोंके माध्यमसे ध्वजावाला रथ उत्पन्न कर लेता था। उसके प्रभावसे सभी द्वीपोंमें दस हजार यज्ञ निरन्तर होते रहते थे। उन यज्ञोंकी वेदियाँ, यूप तथा मण्डप आदि सभी सोनेके रहते थे। उनमें प्रचुर दक्षिणाँ दी जाती थीं। विमानमें बैठकर सभी देवता, गन्धर्व तथा अप्सराएँ पृथ्वीपर आकर यज्ञकी शोभा बढ़ाते रहते थे। नारद नामका गन्धर्व उसके यज्ञकी गाथा इस प्रकार गाया करता था—‘कार्तवीर्यके पराक्रमकी बात सुननेसे यह पता चलता है कि संसारका कोई भी राजा उसके समान

* यह अनेक राक्षसोंका नाम है। इसका वर्णन श्रीमद्भागवत ६। १८। १२, ब्रह्माण्ड ३। ६। १०, वायु० १७। १०३, मत्स्य० ४७। ७२ और विष्णु० ४। ६। १४ आदि पुराणोंमें आया है। इसे इन्द्रने मारा था, अतः इन्द्रका एक नाम जम्भभेदी भी है।

यज्ञ, दान तथा तप नहीं कर सकता। सातों द्वीपोंमें केवल वही ढाल, तलवार तथा धनुष-बाणवाला है। जैसे बाज पक्षीको अन्य पक्षी डरसे अपने समीप ही समझते हैं, वैसे ही अन्य राजा लोग दूरसे ही इससे भय खाते हैं। इसकी सम्पत्ति कभी नष्ट नहीं होती, इसके राज्यमें न कहीं शोक दिखायी पड़ता है न कोई क्लान्त ही। यह अपने प्रभावसे पृथ्वीपर धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता है।'

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—नराधिप! कार्तवीर्य इस पृथ्वीपर पचासी हजार वर्षतक अखण्ड शासन करता रहा। वह अपने योगबलसे पशुओंका पालक तथा खेतोंका रक्षक भी था। समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। धनुषकी प्रत्यञ्चाके आधातसे कठोर त्वचायुक्त अपनी सहस्रों भुजाओंद्वारा वह सूर्यके समान उद्घासित होता था। उसने अपनी हजार भुजाओंके बलसे समुद्रको मथ डाला और नागलोकमें कर्कोटक आदि नागोंको जीतकर वहाँ भी अपनी नगरी बसा ली। उसकी भुजाओंद्वारा समुद्रके उद्घेलित होनेसे पातालवासी महान् असुर भी निश्चेष्ट हो जाते थे। बड़े-बड़े नाग उसके पराक्रमको देखकर सिर नीचा कर लेते थे। सभी धनुर्धरोंको उसने जीत लिया। अपने पराक्रमसे रावणको भी उसने अपनी माहिष्मती नगरीमें लाकर बंदी बना रखा था, जिसे पुलस्त्य ऋषिने छुड़वाया। एक बार भूखे-प्यासे चित्रभानु (अग्निदेव)-को राजा कार्तवीर्यार्जुनने समस्त सप्तद्वीपा वसुन्धराको दानमें दे दिया। इस प्रकार वह कार्तवीर्यार्जुन बड़ा पराक्रमी एवं गुणवान् राजा हुआ था।

योगाचार्य भगवान् अनघ (दत्तात्रेय)-से वर प्राप्तकर कार्तवीर्यार्जुनने पृथ्वीलोकमें इस अनघाष्टमी-ब्रतको प्रवर्तित किया। अघको पाप कहा जाता है यह तीन प्रकारका होता है—कायिक, वाचिक और मानसिक। यह अनघाष्टमी त्रिविध पापोंको नष्ट करनेवाली है, इसलिये इसे अनघा कहते हैं। इस ब्रतके प्रभावसे अष्टविध ऐश्वर्य (अणिमा, महिमा, प्रासि, प्राकाम्य, लघिमा, ईशित्व, वशित्व तथा सर्वकामावसायिता) प्राप्त कर लेना मानो विनोद ही है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—पुण्डरीकाक्ष! राजा कार्तवीर्यार्जुनके द्वारा प्रवर्तित यह अनघाष्टमी-ब्रत किन मन्त्रोंके द्वारा, कब और कैसे किया जाता है? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! इस ब्रतकी विधि इस प्रकार है—मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी अष्टमीको कुशोंसे स्त्री-पुरुषकी प्रतिमा बनाकर भूमिपर स्थापित करनी चाहिये। उनमें एकमें सौम्य एवं शान्तिस्वरूपयुक्त अनघ (दत्तात्रेय)-की तथा दूसरेमें अनघा (लक्ष्मी)-की भावना करनी चाहिये और ऋग्वेदके विष्णुसूक्तसे* पूजा करनी चाहिये। पूजामें फल, कन्द, शृंगारकी सामग्री, बेर, विविध धान्य, विविध पुष्पका उपयोग करना चाहिये। दीपक जलाना चाहिये तथा ब्राह्मणों एवं बन्धु-बान्धवोंको भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार पूजा करनेवाला सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है, लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा भगवान् विष्णु उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। (अध्याय ५८)

* अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे । पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूहलमस्य पांसुरे ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाय्यः । अतो धर्माणि धारयन् ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो ब्रतानि पश्यते । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥

तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत् परमं पदम् ॥ (ऋग्वेद १।२२।१६—२१)

सोमाष्टमी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं एक दूसरा व्रत बतला रहा हूँ, जो सर्वसम्मत, कल्याणप्रद एवं शिवलोक-प्रापक है। शुक्ल पक्षकी अष्टमीके दिन यदि सोमवार हो तो उस दिन उमासहित भगवान् चन्द्रचूड़का पूजन करे। इसके लिये एक ऐसी प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये, जिसका दक्षिण भाग शिवस्वरूप और वाम भाग उमास्वरूप हो। अनन्तर विधिपूर्वक उसे पञ्चामृतसे स्नान कराकर उसके दक्षिणभागमें कर्पूरयुक्त चन्दनका उपलेपन करे। श्वेत तथा रक्त पुष्प चढ़ाये और घृतमें पकाये गये नैवेद्यका भोग लगाये। पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे उमासहित भगवान् चन्द्रचूड़की आरती करे। उस दिन निराहार रहकर दूसरे दिन प्रातः इसी प्रकार पूजन सम्पन्न कर तिल तथा धीसे हवन कर ब्राह्मणोंको भोजन कराये। यथाशक्ति सप्तीक ब्राह्मणकी पूजा करे और पितरोंका भी अर्चन करे। एक वर्षतक इस प्रकार व्रत करके एक त्रिकोण तथा दूसरा चतुष्कोण (चौकोर) मण्डल बनाये। त्रिकोणमें भगवती पार्वती तथा चौकोर मण्डलमें भगवान् शंकरको स्थापित करे। तदनन्तर पूर्वोक्त विधिके अनुसार पार्वती एवं शंकरकी पूजा करके श्वेत एवं पीत वस्त्रके दो वितान, पताका, घण्टा, धूपदानी, दीपमाला आदि पूजनके उपकरण ब्राह्मणको समर्पित करे और यथाशक्ति ब्राह्मण-

भोजन भी कराये। ब्राह्मण-दम्पतिका वस्त्र, आभूषण, भोजन आदिसे पूजनकर पचीस प्रज्वलित दीपकोंसे धीरे-धीरे नीराजन करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक पाँच वर्षोंतक या एक वर्ष ही व्रत करनेसे व्रती उमासहित शिवलोकमें निवास कर अनामय पद प्राप्त करता है। जो पुरुष आजीवन इस व्रतको करता है, वह तो साक्षात् विष्णुरूप ही हो जाता है। उसके समीप आपत्ति, शोक, ज्वर आदि कभी नहीं आते। इतना विधान कहकर भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज इसी प्रकार रविवारयुक्त अष्टमीका भी व्रत होता है। उस दिन एक प्रतिमाके दक्षिण भागमें शिव और वाम भागमें पार्वतीजीकी पूजा करे। दिव्य पद्मारागसे भगवान् शंकरको और सुवर्णसे पार्वतीको अलंकृत करे। यदि रत्नोंकी सुविधा न हो सके तो सुवर्ण ही चढ़ाये। चन्दनसे भगवान् शिवको और कुंकुमसे देवी पार्वतीको अनुलिप्त करे। भगवती पार्वतीको लाल वस्त्र और लाल माला तथा भगवान् शंकरको रुद्राक्ष निवेदित कर नैवेद्यमें घृतपक्व पदार्थ निवेदित करे। शेष सारा विधान पूर्ववत् कर पारण गव्य-पदार्थोंसे करे। उद्यापन पूर्वरीत्या करना चाहिये। इस व्रतको एक वर्ष अथवा लगातार पाँच वर्ष करनेवाला सूर्य आदि लोकोंमें उत्तम भोगको प्राप्तकर अन्तमें परमपदको प्राप्त करता है। (अध्याय ५९)

श्रीवृक्षनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! देवता और दैत्योंने जब समुद्र-मन्थन किया था, तब उस समय समुद्रसे निकली हुई लक्ष्मीको देखकर सभीकी यह इच्छा हुई कि मैं ही लक्ष्मीको प्राप्त कर लूँ। लक्ष्मीकी प्राप्तिको लेकर देवता और

दैत्योंमें परस्पर युद्ध होने लगा। उस समय लक्ष्मीने कुछ देरके लिय बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण कर लिया। भगवान् विष्णुने सभीको जीतकर लक्ष्मीका वरण किया। लक्ष्मीने बिल्ववृक्षका आश्रय ग्रहण किया था, इसलिये उसे श्रीवृक्ष भी कहते हैं।

अतः भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको श्रीवृक्ष-नवमी-व्रत करना चाहिये। सूर्योदयके समय भक्तिपूर्वक अनेक पुष्टों, गन्ध, वस्त्र, फल, तिलपिण्डि, अन्न, गोधूम, धूप तथा माला आदिसे निम्नलिखित मन्त्रसे बिल्ववृक्षकी पूजा करे—

श्रीनिवास नमस्तेऽस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ।
ममाभिलिषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव॥

इस विधिसे पूजा कर श्रीवृक्षकी सात प्रदक्षिणा

कर उसे प्रणाम करे। अनन्तर ब्राह्मणभोजन कराकर ‘श्रीदेवी प्रीयताम्’ ऐसा कहकर प्रार्थना करे। तदनन्तर स्वयं भी तेल और नमकसे रहित बिना अग्निके संयोगसे तैयार किया गया भोजन, दही, पुष्प, फल आदिको मिट्टीके पात्रमें रखकर मौन हो ग्रहण करे। इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो पुरुष या स्त्री श्रीवृक्षका पूजन करते हैं, वे अवश्य ही सभी सम्पत्तियोंको प्राप्त करते हैं। (अध्याय ६०)

ध्वजनवमी-व्रत-कथा

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भगवती दुर्गाद्वारा महिषासुरके वध किये जानेपर दैत्योंने पूर्व-वैरका स्मरण कर देवताओंके साथ अनेक संग्राम किये। भगवतीने भी धर्मकी रक्षाके लिये अनेक रूप धारण कर दैत्योंका संहार किया। महिषासुरके पुत्र रक्तासुरने बहुत लम्बे समयतक घोर तपस्या कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उसे तीनों लोकोंका राज्य दे दिया। उसने वर प्राप्तकर दैत्योंको एकत्रित किया तथा इन्द्रके साथ युद्ध करनेके लिये अमरावतीपर आक्रमण कर दिया। देवताओंने देखा कि दैत्य-सेना युद्धके लिये आ रही है, तब वे भी एकत्रित होकर देवराज इन्द्रकी अध्यक्षतामें युद्धके लिये आ डटे। घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। दानवोंने इतना भयंकर युद्ध किया कि देवगण रण छोड़कर भाग गये। दैत्य रक्तासुर अमरावतीको अपने अधीन कर राज्य करने लगा। देवगण वहाँसे भागकर करछत्रापुरीमें गये, जहाँ भववल्लभा दुर्गा निवास करती हैं। चामुण्डा भी नवदुर्गाके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। वहाँ देवताओंने महालक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी, शिवदूती, महारुण्डा, भ्रामरी, चन्द्रमङ्गला, रेवती और हरसिद्धि—इन नौ दुर्गाओंकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए कहा—‘भगवति! इस

घोर संकटसे आप हमारी रक्षा करें, हमारे लिये अब दूसरा कोई भी अवलम्ब नहीं है।’

देवताओंकी यह आर्त वाणी सुनकर बीस भुजाओंमें विभिन्न आयुध धारण किये सिंहारूढ़ा नवदुर्गाके साथ कुमारीस्वरूपा भगवती प्रकट हो गयी। तदनन्तर परम पराक्रमी और ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानी अधम अब्रह्मण्य प्रचण्ड दैत्यगण भी वहाँ आये, जिनमें इन्द्रमारी, गुरुकेशी, प्रलम्ब, नरक, कुष्ठ, पुलोमा, शरभ, शम्बर, दुन्दुभि, इल्लल, नमुचि, भौम, वातापि, धेनुक, कलि, मायावृत, बलबन्धु, कैटभ, कालजित्, राहु, पौण्ड्र आदि दैत्य मुख्य थे। ये प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी, विविध वाहनोंपर आरूढ़ अनेक प्रकारके शस्त्र, अस्त्र और ध्वजाओंको धारण किये हुए थे। उनके आगे पणव, भेरी, गोमुख, शङ्ख, डमरू, डिण्डम आदि बाजे बज रहे थे। दैत्योंने युद्ध आरम्भ कर दिया और भगवतीपर शर, शूल, परिघ, पट्टिश, शक्ति, तोमर, कुन्त, शतघ्नी, गदा, मुद्रर आदि अनेक आयुधोंकी वृष्टि करने लगे। भगवती भी क्रोधसे प्रज्वलित हो दैत्योंका संहार करने लगीं। उनके ध्वज आदि चिह्नोंको बलपूर्वक छीनकर देवगणोंको सौंप दिया। क्षणभरमें ही उन्होंने अनन्त दैत्योंका नाश कर दिया। रक्तासुरके कण्ठको पकड़कर पृथ्वीपर पटककर

त्रिशूलसे उसका हृदय विदीर्ण कर दिया। बचे हुए दैत्यगण वहाँसे जान बचाकर भाग निकले। इस प्रकार देवीकी कृपासे देवताओंने विजय प्राप्तकर करछत्रापुरीमें आकर भगवतीका विशेष उत्सव मनाया। नगर तोरणों और ध्वजाओंसे अलंकृत किया गया। राजन्! जो नवमी तिथिको उपवासकर भगवतीका उत्सव करता है तथा उन्हें ध्वज अर्पण करता है, वह अवश्य ही विजयी होता है।

महाराज! अब इस व्रतकी विधि सुनिये। पौष मासके शुक्ल पक्षकी नवमी तिथिको स्नानकर पूजाके लिये पुष्ट अपने हाथसे चुने और उनसे सिंहवाहिनी कुमारी भगवतीका पूजन करे। साथ ही विविध ध्वजाओंको भगवतीके सम्मुख स्थापित करे और मालती-पुष्ट, धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, चन्दन, विविध फल, माला, वस्त्र, दधि एवं

बिना अग्निसे सिद्ध विविध भक्ष्य भगवतीको निवेदित करे एवं इस मन्त्रको पढ़े—

रुद्रां भगवतीं कृष्णां ग्रहं नक्षत्रमालिनीम्।

प्रपञ्चोऽहं शिवां रात्रिं सर्वशत्रुक्षयंकरीम्॥

—फिर कुमारियों और देवीभक्त ब्राह्मणोंको भोजन कराये, क्षमा-प्रार्थना करे, उपवास करे या भक्तिपूर्वक एकभुक्त रहे। इस प्रकारसे जो पुरुष नवमीको उपवास करता है और ध्वजाओंसे भगवतीको अलंकृत कर उनकी पूजा करता है, उसे चोर, अग्नि, जल, राजा, शत्रु आदिका भय नहीं रहता। इस नवमी तिथिको भगवतीने विजय प्राप्त की थी, अतः यह नवमी इन्हें बहुत प्रिय है। जो नवमीको भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा कर इन्हें ध्वजारोपण करता है, वह सभी प्रकारके सुखोंको भोगकर अन्तमें वीरलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ६१)

उल्का-नवमी-व्रतका विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब आप उल्का-नवमी-व्रतके विषयमें सुनें। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदीमें स्नानकर पितृदेवीकी विधिपूर्वक अर्चना करे। अनन्तर गन्ध, पुष्ट, धूप, नैवेद्य आदिसे भैरव-प्रिया चामुण्डादेवीकी पूजा करे, तदनन्तर इस मन्त्रसे हाथ जोड़कर सुति करे—

महिषधि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि।

द्रव्यमारोग्यविजयौ देहि देवि नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ६२।५)

इसके बाद यथाशक्ति सात, पाँच या एक कुमारीको भोजन कराकर उन्हें नीला कञ्जक, आभूषण, वस्त्र एवं दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करे। श्रद्धासे भगवती प्रसन्न होती हैं। अनन्तर भूमिका अभ्युक्षण करे। तदनन्तर गोबरका चौका लगाकर आसनपर बैठ जाय। सामने पात्र रखकर, जो भी भोजन बना हो सारा परोस ले, फिर एक

मुट्ठी तृण और सूखे पत्तोंको अग्निसे प्रज्वलित कर जितने समयतक प्रकाश रहे उतने समयमें ही भोजन सम्पन्न कर ले। अग्निके शान्त होते ही भोजन करना बंद कर आचमन करे। चामुण्डाका हृदयमें ध्यानकर प्रसन्नतापूर्वक घरका कार्य करे। इस प्रकार प्रतिमास व्रतकर वर्षके समाप्त होनेपर कुमारी-पूजा करे तथा उन्हें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर उनसे क्षमा-याचना करे। ब्राह्मणको सुवर्ण एवं गौका दान करे। हे पार्थ! इस प्रकार जो पुरुष उल्का-नवमीका व्रत करता है, उसे शत्रु, अग्नि, राजा, चोर, भूत, प्रेत, पिशाच आदिका भय नहीं होता एवं युद्ध आदिमें उसपर शस्त्रोंका प्रहार नहीं लगता, देवि चामुण्डा उसकी सर्वत्र रक्षा करती हैं। इस उल्का-नवमी-व्रतको करनेवाले पुरुष और स्त्री उल्काकी तरह तेजस्वी हो जाते हैं। (अध्याय ६२)

दशावतार-व्रत-कथा, विधान और फल

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! सत्ययुक्ते प्रारम्भमें भृगु नामक एक ऋषि हुए थे। उनकी भार्या दिव्या^१ अत्यन्त पतिव्रता थीं। वे आश्रमकी शोभा थीं और निरन्तर गृहकार्यमें संलग्न रहती थीं। वे महर्षि भृगुकी आज्ञाका पालन करती थीं। भृगुजी भी उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

किसी समय देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णुके द्वारा असुरोंको महान् भय उपस्थित हुआ। तब वे सभी असुर महर्षि भृगुकी शरणमें आये। महर्षि भृगु अपना अग्निहोत्र आदि कार्य अपनी भार्याको सौंपकर स्वयं संजीवनी-विद्याको प्राप्त करनेके लिये हिमालयके उत्तर भागमें जाकर तपस्या करने लगे। वे भगवान् शंकरकी आराधना कर संजीवनी-विद्याको प्राप्त कर दैत्यराज बलिको सदा विजयी करना चाहते थे। इसी समय गरुड़पर चढ़कर भगवान् विष्णु वहाँ आये और दैत्योंका वध करने लगे। क्षणभरमें ही उन्होंने दैत्योंका संहार कर दिया। भृगुकी पत्नी दिव्या भगवान्‌को शाप देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उनके मुखसे शाप निकलना ही चाहता था कि भगवान् विष्णुने चक्रसे उनका सिर काट दिया। इतनेमें भृगुमुनि भी संजीवनी-विद्याको प्राप्तकर वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि सभी दैत्य मारे गये हैं और ब्राह्मणी भी मार दी गयी है। क्रोधान्ध हो भृगुने भगवान् विष्णुको शाप दे दिया कि ‘तुम दस बार मनुष्यलोकमें जन्म लोगे।’

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! भृगुके शापसे जगत्‌की रक्षाके लिये मैं बार-बार अवतार ग्रहण करता हूँ। जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी अर्चना करते हैं, वे अवश्य स्वर्गगामी होते हैं।

१-भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें भृगु-पत्नीका नाम ‘ख्याति’ आया है।

२-दशावतारोंमें दो पक्ष प्राप्त होते हैं, एकमें भगवान् कृष्णको पूर्णतम भगवान् मानकर केन्द्रमें रखा गया है और अन्यत्र उन्हें दस अवतारोंके भीतर ही रख लिया है। दोनों मत मान्य हैं, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप अपने दशावतार-व्रतका विधान कहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको संयतेन्द्रिय हो नदी आदिमें स्नान कर तर्पण सम्पन्न करे तथा घर आकर तीन अङ्गलि धान्यका चूर्ण लेकर घृतमें पकाये। इस प्रकार दस वर्षोंतक प्रतिवर्ष करे। प्रतिवर्ष क्रमशः पूरी, घेवर, कसार, मोदक, सोहालक, खण्डवेष्टक, कोकरस, अपूप, कर्णवेष्ट तथा खण्डक—ये पक्वान्न उस चूर्णसे बनाये और उसे भगवान्‌को नैवेद्यके रूपमें समर्पित करे। प्रत्येक दशहराको दस गौएँ दस ब्राह्मणोंको दे। नैवेद्यका आधा भाग भगवान्‌के सामने रख दे, चौथाई ब्राह्मणको दे और चौथाई भाग पवित्र जलाशयपर जाकर बादमें स्वयं भी ग्रहण करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे मन्त्रपूर्वक दशावतारोंका पूजन करे। भगवान्‌के दस अवतारोंके नाम इस प्रकार हैं^२—(१) मत्स्य, (२) कूर्म, (३) वराह, (४) नृसिंह, (५) त्रिविक्रम (वामन), (६) परशुराम, (७) श्रीराम, (८) श्रीकृष्ण, (९) बुद्ध तथा (१०) कल्कि।

अनन्तर प्रार्थना करे—

गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणं प्रभुम्।
प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु॥
छिन्तु वैष्णवां मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः।
श्वेतद्वीपं नयत्वस्मान्मयात्मा विनिवेदितः॥

(उत्तरपर्व ६३। २४-२५)

‘दस अवतारोंको धारण करनेवाले सर्वव्यापी, सम्पूर्ण संसारके स्वामी है नारायण हरि! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे देव! आप मुझपर प्रसन्न हों।

जनार्दन ! आप भक्तिद्वारा प्रसन्न होते हैं। आप अपनी वैष्णवी मायाको निवारित करें, मुझे आप अपने धाममें ले चलें। मैंने अपनेको आपके लिये सौंप दिया है।'

इस प्रकार जो इस व्रतको करता है, वह भगवान्‌के अनुग्रहसे जन्म-मरणसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और सदा विष्णुलोकमें निवास करता है। (अध्याय ६३)

आशादशमी-व्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ ! अब मैं आपसे आशादशमी-व्रत-कथा एवं उसके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें निष्ठ देशमें नल नामक एक राजा थे। उनके भाई पुष्करने द्यूतमें जब उन्हें पराजित कर दिया, तब नल अपनी भार्या दमयन्तीके साथ राज्यसे बाहर चले गये। वे प्रतिदिन एक वनसे दूसरे वनमें भ्रमण करते रहते थे, केवल जलमात्रसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे और जनशून्य भयंकर वनोंमें घूमते रहते थे। एक बार राजाने वनमें स्वर्ण-सी कान्तिवाले कुछ पक्षियोंको देखा। उन्हें पकड़नेकी इच्छासे राजाने उनके ऊपर वस्त्र फैलाया, परंतु वे सभी उस वस्त्रको लेकर आकाशमें उड़ गये। इससे राजा बड़े दुःखी हो गये। वे दमयन्तीको गाढ़ निद्रामें देखकर उसे उसी स्थितिमें छोड़कर चले गये।

दमयन्तीने निद्रासे उठकर देखा तो नलको न पाकर वह उस घोर वनमें हाहाकार करते हुए रोने लगी। महान् दुःख और शोकसे संतस होकर वह नलके दर्शनोंकी इच्छासे इधर-उधर भटकने लगी। इसी प्रकार कई दिन बीत गये और भटकते हुए वह चेदिदेशमें पहुँची। वहाँ वह उन्मत्त-सी रहने लगी। छोटे-छोटे शिशु उसे कौतुकवश घेरे रहते थे। किसी दिन मनुष्योंसे घिरी हुई उसे चेदिदेशके राजाकी माताने देखा। उस समय दमयन्ती चन्द्रमाकी रेखाके समान भूमिपर पड़ी हुई थी। उसका मुखमण्डल प्रकाशित था। राजमाताने उसे अपने भवनमें बुलाकर

पूछा—‘वरानने ! तुम कौन हो ?’ इसपर दमयन्तीने लजित होते हुए कहा—‘मैं सैरन्धी हूँ। मैं न किसीके चरण धोती हूँ और न किसीका उच्छिष्ट भक्षण करती हूँ। यहाँ रहते हुए कोई मुझे प्राप्त करेगा तो वह आपके द्वारा दण्डनीय होगा। देवि ! इस प्रतिज्ञाके साथ मैं यहाँ रह सकती हूँ।’ राजमाताने कहा—‘ठीक है ऐसा ही होगा।’ तब दमयन्तीने वहाँ रहना स्वीकार किया और इसी प्रकार कुछ समय व्यतीत हुआ और फिर एक ब्राह्मण दमयन्तीको उसके माता-पिताके घर ले आया। पर माता-पिता तथा भाइयोंका स्वेह पानेपर भी पतिके बिना वह अत्यन्त दुःखी रहती थी।

एक बार दमयन्तीने एक श्रेष्ठ ब्राह्मणको बुलाकर उससे पूछा—‘हे ब्राह्मणदेवता ! आप कोई ऐसा दान एवं व्रत बतलायें, जिससे मेरे पति मुझे प्राप्त हो जायँ।’ इसपर उस बुद्धिमान् ब्राह्मणने कहा—‘भद्रे ! तुम मनोवाञ्छित सिद्धि प्रदान करनेवाले आशादशमी-व्रतको करो।’ तब दमयन्तीने पुराणवेत्ता उस दमन नामक पुरोहित ब्राह्मणके द्वारा ऐसा कहे जानेपर आशादशमी-व्रतका अनुष्ठान किया। उस व्रतके प्रभावसे दमयन्तीने अपने पतिको पुनः प्राप्त किया।

युधिष्ठिरने पूछा—हे गोविन्द ! यह आशादशमी-व्रत किस प्रकार और कैसे किया जाता है, आप सर्वज्ञ हैं, आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे राजन् ! इस व्रतके

प्रभावसे राजपुत्र अपना राज्य, कृषक खेती, वणिक व्यापारमें लाभ, पुत्रार्थी पुत्र तथा मानव धर्म, अर्थ एवं कामकी सिद्धि प्राप्त करते हैं। कन्या श्रेष्ठ वर प्राप्त करती है, ब्राह्मण निर्विघ्न यज्ञ सम्पन्न कर लेता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और पतिके चिर-प्रवास हो जानेपर स्त्री उसे शीघ्र ही प्राप्त कर लेती है। शिशुके दन्तजनित पीड़ामें भी इस व्रतसे पीड़ा दूर हो जाती है और कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार अन्य कार्योंकी सिद्धिके लिये इस आशादशमी-व्रतको करना चाहिये। जब भी जिस किसीको कोई कष्ट पड़े, उसकी निवृत्तिके लिये इस व्रतको करना चाहिये।

यह आशादशमी-व्रत किसी भी मासके शुक्ल पक्षकी दशमीको किया जाता है। इस दिन प्रातःकाल स्नान करके देवताओंकी पूजा कर रात्रिमें पुष्प, अलक्ष तथा चन्दन आदिसे दस आशादेवियोंकी पूजा करनी चाहिये। घरके आँगनमें जौसे अथवा पिष्टातकसे पूर्वादि दसों दिशाओंके अधिपतियोंकी प्रतिमाओंको उनके वाहन तथा अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित कर उन्हें ही ऐन्द्री आदि दिशा-देवियोंके रूपमें मानकर पूजन करना चाहिये। सबको घृतपूर्ण नैवेद्य, पृथक्-पृथक् दीपक तथा ऋतुफल आदि समर्पित करना चाहिये। इसके अनन्तर अपने कार्यकी सिद्धिके लिये इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

आशाश्वाशः सदा सन्तु सिद्ध्यन्तां मे मनोरथाः ।
भवतीनां प्रसादेन सदा कल्याणमस्त्वति ॥

(उत्तरपर्व ६४। २५)

‘हे आशादेवियो ! मेरी आशाएँ सदा सफल हों, मेरे मनोरथ पूर्ण हों, आपलोगोंके अनुग्रहसे मेरा सदा कल्याण हो ।’

इस प्रकार विधिवत् पूजा कर ब्राह्मणको दक्षिणा प्रदानकर प्रसाद ग्रहण करना चाहिये। इसी क्रमसे प्रत्येक मासमें इस व्रतको करना चाहिये। जबतक अपना मनोरथ पूर्ण न हो जाय, तबतक इस व्रतको करना चाहिये। अनन्तर उद्यापन करना चाहिये। उद्यापनमें आशादेवियोंकी सोने, चाँदी अथवा पिष्टातकसे प्रतिमा बनाकर घरके आँगनमें उनकी पूजा करके ऐन्द्री, आग्रेयी, याम्या, नैऋति, वारुणि, वायव्या, सौम्या, ऐशानी, अधः तथा ब्राह्मी—इन दस आशादेवियों (दिशा-देवियों)—से अभीष्ट कामनाओंकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये, साथ ही नक्षत्रों, ग्रहों, ताराग्रहों, नक्षत्र-मातृकाओं, भूत-प्रेत-विनायकोंसे भी अभीष्ट-सिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। पुष्प, फल, धूप, गन्ध, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करनी चाहिये। सुहागिनी स्त्रियोंको नृत्य-गीत आदिके द्वारा रात्रि-जागरण करना चाहिये। प्रातःकाल विद्वान् ब्राह्मणको सब कुछ पूजित पदार्थ निवेदित कर देना चाहिये और उन्हें प्रणाम कर क्षमा-याचना करनी चाहिये। अनन्तर बन्धु-बान्धवों एवं मित्रोंके साथ प्रसन्न-मनसे भोजन करना चाहिये। हे पार्थ ! जो इस आशादशमी-व्रतको श्रद्धापूर्वक करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। यह व्रत स्त्रियोंके लिये विशेष श्रेयस्कर है।

(अध्याय ६४)

तारकद्वादशीके प्रसंगमें राजा कुशध्वजकी कथा तथा व्रत-विधान

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मैं बहुत बड़ा पातकी हूँ। भीष्म, द्रोण आदि महात्माओंका मैंने वध किया। आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मैं इस वधरूपी पापसमूहसे छुटकारा पा सकूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें एक बड़ा प्रतापी कुशध्वज नामका राजा रहता था। किसी दिन वह मृगयाके लिये बनमें गया। वहाँ उसने मृगके धोखेमें एक तपस्वी ब्राह्मणको बाणसे मार दिया। मरनेके बाद उस पापसे उसे भयंकर रौरव नरककी प्राप्ति हुई। फिर वह बहुत दिनोंतक नरककी यातनाको भोगकर भयंकर सर्प-योनिमें गया। सर्प-योनिमें भी उसने पाप किया। इस कारण उसे सिंह-योनि प्राप्ति हुई। इस प्रकार उसने कई निन्द्य योनियोंमें जन्म लिया और उस-उस योनिमें पाप-कर्म करता रहा। इस कर्मविपाकसे उसे कष्ट भोगना पड़ता था। चूँकि उसने पूर्वजन्ममें तारकद्वादशीका व्रत किया था, अतः उस व्रतके प्रभावसे इन पाप-योनियोंसे वह जल्दी-जल्दी मुक्त होता गया। अन्तमें पुनः वह विदर्भ देशका धर्मात्मा राजा हुआ। वह भक्तिपूर्वक तारकद्वादशीका व्रत किया करता था। उसके प्रभावसे बहुत समयतक निष्कण्टक राज्यकर, मरनेपर उसने विष्णुलोकको प्राप्ति किया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! इस व्रतको किस प्रकार करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको तारकद्वादशी-व्रत

करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर तर्पण, पूजन आदि सम्पन्न कर सूर्यास्ततक हवन करता रहे। सूर्यास्त होनेपर पवित्र भूमिके ऊपर गोमयसे ताराओंसहित एक सूर्य-मण्डलका निर्माण करे। उस आकाशमें चन्दनसे ध्रुवको भी अङ्कित करे। अनन्तर ताम्रके अर्ध्यपात्रमें पुष्प, फल, अक्षत, गन्ध, सुवर्ण तथा जल रखकर मस्तकतक उस अर्ध्यपात्रको उठाकर दोनों जानुओंको भूमिपर टेककर पूर्वाभिमुख होकर 'सहस्रशीर्षा०' इस मन्त्रसे उस मण्डलको अर्घ्य प्रदान करे। अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः खण्ड-खाद्य, सोहालक, तिल-तण्डुल, गुड़के अपूप, मोदक, खण्डवेष्टक, सत्तू, गुड़युक्त पूरी, मधुशीर्ष, पायस, घृतपर्ण (करंज) और कसारका भोजन ब्राह्मणको कराये। तदनन्तर क्षमा-प्रार्थना कर मौन धारणपूर्वक स्वयं भी भोजन करे। उद्यापनमें चाँदीका तारकमण्डल बनाकर उसकी पूजा करे। मोदकके साथ बारह घड़े तथा दक्षिणाके साथ वह मण्डल ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस विधिसे जो पुरुष और स्त्री इस तारकद्वादशी-व्रतको करते हैं, वे सूर्यके समान देदीप्यमान विमानोंमें बैठकर नक्षत्र-लोकको जाते हैं। वहाँ अयुत वर्षोंतक निवास कर विष्णुलोकको प्राप्ति करते हैं। इस व्रतको सती, पार्वती, सीता, राज्ञी, दमयन्ती, रुक्मिणी, सत्यभामा आदि श्रेष्ठ नारियोंने किया था। इस व्रतको करनेसे अनेक जन्मोंमें किये गये पातक नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय ६५)

अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान और फल

महाराज युधिष्ठिरने कहा—श्रीकृष्णचन्द्र! आप अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—कौन्तेय! प्राचीन कालमें जिस व्रतको रामचन्द्रजीकी आज्ञासे वनमें सीताजीने किया था और अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य आदिसे मुनिपत्रियोंको संतुष्ट किया था, उस अरण्यद्वादशी-व्रतका विधान मैं बतलाता हूँ, आप प्रीतिपूर्वक सुनें। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासकी शुक्ला एकादशीको प्रातः स्नानकर भगवान् जनार्दनकी भक्तिपूर्वक गन्ध, पुष्पादि उपचारोंसे पूजा करनी चाहिये और उपवास रखना चाहिये। रात्रिमें जागरण करना चाहिये। दूसरे दिन स्नान आदि करके वेदज्ञ ब्राह्मणोंको उपवनमें ले जाकर प्रायः फल आदि भोजन कराना चाहिये। अनन्तर पञ्चगव्यका प्राशन कर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस विधिसे एक वर्षतक व्रत करे। श्रावण, कर्तिक, माघ तथा चैत्र मासमें वृक्षादिसे सुशोभित किसी सुन्दर वनमें अरण्यवासियों, मुनियों तथा ब्राह्मणोंको पूर्व या उत्तरमुख आसनपर बैठाकर मण्डक, घृतपूर, खण्डवेष्टक, शाक, व्यज्ञन, अपूप,

मोदक तथा सोहालक आदि अनेक प्रकारके पकवान, फल तथा विभिन्न भोज्य पदार्थोंसे संतुष्ट करे और दक्षिणा प्रदान करे। कर्पूर, इलायची, कस्तूरी आदिसे सुगन्धित पानक पिलाना चाहिये। वनमें रहनेवाले मुनिगण एवं उनकी पत्रियों, एक दण्डी अथवा त्रिदण्डी और गृहस्थ आदि अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष तथा वराह—इन बारह नामोंसे नमस्कारपूर्वक एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराकर वस्त्र और दक्षिणा देकर ‘विष्णुर्मे प्रीयताम्’ यह वाक्य कहकर अपने मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकारसे जो अरण्यद्वादशी-व्रत करता है, वह अपने परिवारके साथ दिव्य विमानमें बैठकर भगवान्‌के धाम श्वेतद्वीपमें निवास करता है। वह वहाँ प्रलयपर्यन्त निवासकर मुक्ति प्राप्त करता है। यदि कोई स्त्री भी इस व्रतका आचरण करती है तो वह भी संसारके सभी सुखोंका उपभोग कर भगवान्‌की कृपासे पतिलोकको प्राप्त करती है। (अध्याय ६६)

रोहिणीचन्द्र-व्रत तथा अवियोग-व्रतका विधान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वर्षाकालमें आकाश नीले मेघसे आच्छादित हो जाता है। मेरे चारों ओर मीठी-मीठी बोली बोलने लगते हैं। मेढ़कोंकी ध्वनि भी बड़ी सुहावनी लगती है, इस समय कुलीन स्त्रियाँ किसको अर्ध्य दें तथा कौन-सा सत्कर्म करें और वे किस तिथिमें कौन-सा व्रत करें? आप इसका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! श्रेष्ठ स्त्रियोंको इस समय रोहिणीचन्द्र-व्रतका पालन

करना चाहिये। श्रावण मासके कृष्ण पक्षकी एकादशीको पवित्र होकर सर्वोषधिमिश्रित जलसे स्नान करे, अनन्तर उड़दके आटेकी एक सौ इन्दुरिका और पाँच घृत-मोदक बनाये। सभी सामग्रियोंको लेकर उत्तम जलाशयपर जाय और उसके तटपर गोबरसे मण्डलकी रचना करे, उसमें रोहिणीके साथ चन्द्रमाको अङ्कित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य आदिसे उनकी अर्चना करे और इस प्रकार उनकी प्रार्थना करे—

सोमराज नमस्तुभ्यं रोहिण्यै ते नमो नमः ।
महासति महादेवि सम्पादय ममेप्सितम् ॥

(उत्तरपर्व ६७-८)

अनन्तर 'सोमो मे प्रीयताम्' तथा 'देवी रोहिणी मे प्रीयताम्' ऐसा कहते हुए पूजन-द्रव्य ब्राह्मणके लिये निवेदित कर दे । अनन्तर कमरतक जलमें उतरकर मनमें रोहिणीसहित चन्द्रमाका ध्यान करते हुए उन इन्दुरिकाओंका भक्षण कर ले । अनन्तर जलसे बाहर आकर ब्राह्मणोंको भोजन कराकर यथाशक्ति दक्षिणा दे । प्रतिवर्ष इस विधिसे जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तिपूर्वक व्रत करता है, वह धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिसे परिपूर्ण होकर बहुत दिनोंतक सुख भोगकर तीर्थ-स्थानमें मृत्युको प्राप्त करता है और ब्रह्मलोकको जाता है, अनन्तर विष्णुलोक, तदनन्तर शिवलोकमें जाता है ।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप यह बतायें कि अवियोगव्रत किस विधिसे किया जाता है?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अवियोगव्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ है, मैं उसका विधान बतलाता

हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनें ।

भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको प्रातः उठकर जलाशयपर जाकर स्नान करे, शुद्ध शुक्ल वस्त्र धारणकर सुन्दर लिपे-पुते स्थानपर गोबरसे एक मण्डलका निर्माण कर, उसमें लक्ष्मीसहित विष्णु, गौरीसहित शिव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, राज्ञी सहित सूर्यनारायणकी प्रतिमा स्थापितकर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे इन चारों देवदम्पतियोंके पृथक्-पृथक् नाम-मन्त्रोंसे आदिमें 'ॐ' कार तथा अन्तमें 'नमः' पदकी योजनाकर पूजा एवं प्रार्थना करे । अनन्तर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये । फिर विविध दान देकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये । इस अवियोगव्रतको जो करता है, उसका कभी भी इष्टजनों (मित्र, पुत्र, पत्नी आदि)-से वियोग नहीं होता और बहुत समयतक वह सांसारिक सुखोंका भोगकर क्रमशः विष्णु, शिव, ब्रह्मा और सूर्यलोकमें निवास कर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है । जो स्त्री इस व्रतको करती है, वह भी अपने सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त कर विष्णुलोकको प्राप्त करती है । (अध्याय ६७-६८)

गोवत्सद्वादशीका विधान, गौओंका माहात्म्य, मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मेरे राज्यकी प्राप्तिके लिये अद्वारह अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हुई हैं, इस पापसे मेरे चित्तमें बहुत घृणा उत्पन्न हो गयी है । उसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि सभी मारे गये हैं । भीष्म, द्रोण, कलिंगराज, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदिके मरनेसे मेरे हृदयमें महान् क्लेश है । हे जगत्पते! इन पापोंसे छुटकारा पानेके लिये किसी धर्मका आप वर्णन करें ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ! गोवत्सद्वादशी नामका व्रत अतीव पुण्य प्रदान करनेवाला है ।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यह गोवत्सद्वादशी

कौन-सा व्रत है? इसके करनेका क्या विधान है? इसकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई है? मैं नरकार्णवमें डूब रहा हूँ, प्रभो! आप मेरी रक्षा कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—पार्थ! सत्ययुगमें पुण्यशाली जम्बूमार्ग (भड़ैच) -में नामव्रतधरा नामक पर्वतके टंटावि नामक रमणीय शिखरपर भगवान् शंकरके दर्शन करनेकी इच्छासे करोड़ों मुनिगण तपस्या कर रहे थे । वह तपोवन अतुलनीय दिव्य काननोंसे मणिडत था । वह महर्षि भृगुका आश्रममण्डल था । विविध मृगगण और बंदरोंसे समन्वित था । सिंह आदि सभी जंगली पशु

आनन्दपूर्वक निर्भय होकर वहाँ साथ-साथ ही निवास करते थे। उन तपस्यारत मुनियोंको दर्शन देनेके व्याजसे भगवान् शंकरने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेश बना लिया। जर्जर-देहवाले वे वृद्ध ब्राह्मण हाथमें डंडा लिये काँपते हुए उस स्थानपर आये। जगन्माता पार्वती भी सुन्दर सवत्सा गौका रूप धारणकर वहाँ उपस्थित हुई।

पार्थ! गौका जो स्वरूप है, उसे आप सुनें— प्राचीन कालमें क्षीरसागरके मन्थनके समय अमृतके साथ पाँच गौएँ उत्पन्न हुईं—नन्दा, सुभद्रा, सुरभि, सुशीला तथा बहुला। इन्हें लोकमाता कहा गया है। इनका आविर्भाव लोकोपकार तथा देवताओंकी तृसिके लिये हुआ है। देवताओंने अभीष्ट कामनाओंकी पूर्ति करनेवाली इन पाँच गौओंको महर्षि जमदग्नि, भरद्वाज, वसिष्ठ, असित तथा गौतममुनिको प्रदान किया और इन महाभागोंने इन्हें ग्रहण किया। गौओंके छः अङ्ग—गोमय, रोचना, मूत्र, दुग्ध, दधि और घृत—ये अत्यन्त पवित्र और संशुद्धिके साधन भी हैं। गोमयसे शिवप्रिय श्रीमान् बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ, उसमें पद्महस्ता श्रीलक्ष्मी विद्यमान हैं, इसीलिये इसे श्रीवृक्ष कहा जाता है। गोमयसे ही कमलके बीज उत्पन्न हुए हैं। गोरोचन अतिशय मङ्गलमय है, यह पवित्र और सर्वार्थसाधक है। गोमूत्रसे गुगुलकी उत्पत्ति हुई है, जो देखनेमें

प्रिय और सुगन्धियुक्त है। यह गुगुल सभी देवोंका आहार है। विशेषरूपसे शिवका आहार है। संसारमें जो कुछ भी मूलभूत बीज हैं, वे सभी गोदुग्धसे उत्पन्न हैं। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये सभी माङ्गलिक पदार्थ दधिसे उत्पन्न हैं। घृतसे अमृत उत्पन्न होता है, जो देवोंकी तृसिका साधन है। ब्राह्मण और गौ एक ही कुलके दो भाग हैं। ब्राह्मणोंके हृदयमें तो वेदमन्त्र निवास करते हैं और गौओंके हृदयमें हवि रहती है। गायसे ही यज्ञ प्रवृत्त होता है और गौमें ही सभी देवगण प्रतिष्ठित हैं। गायमें ही छः अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद समाहित हैं*।

गौओंके सांगकी जड़में सदा ब्रह्मा और विष्णु प्रतिष्ठित हैं। शृङ्गके अग्रभागमें सभी चराचर एवं समस्त तीर्थ प्रतिष्ठित हैं। सभी कारणोंके कारणस्वरूप महादेव शिव मध्यमें प्रतिष्ठित हैं। गौके ललाटमें गौरी, नासिकामें कार्तिकेय और नासिकाके दोनों पुटोंमें कम्बल तथा अश्वतर ये दो नाग प्रतिष्ठित हैं। दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्र और सूर्य, दाँतोंमें आठों वसुगण, जिह्वामें वरुण, कुहरमें सरस्वती, गण्डस्थलोंमें यम और यक्ष, ओष्ठोंमें दोनों संध्याएँ, ग्रीवामें इन्द्र, ककुद् (मौर)-में राक्षस, पार्ष्णि-भागमें द्यौ और जंघाओंमें चारों चरणोंसे धर्म सदा विराजमान रहता है। खुरोंके मध्यमें गन्धर्व, अग्रभागमें सर्प एवं पश्चिमभागमें

* क्षीरोदतोयसम्भूता याः पुरामृतमन्थने । पञ्च गावः शुभाः पार्थ पञ्चलोकस्य मातरः ॥

नन्दा सुभद्रा सुरभिः सुशीला बहुला इति । एता लोकोपकाराय देवानां तर्पणाय च ॥

जमदग्निभरद्वाजवसिष्ठासितगौतमाः । जगृहुः कामदाः पञ्च गावो दत्ताः सुरैस्ततः ॥

गोमयं रोचनां मूत्रं क्षीरं दधि घृतं गवाम् । पद्मङ्गानि पवित्राणि संशुद्धिकरणानि च ॥

गोमयादुत्थितः श्रीमान् बिल्ववृक्षः शिवप्रियः । तत्रास्ते पद्महस्ता श्रीः श्रीवृक्षस्तेन स स्मृतः ।

बीजान्तुपलपद्मानां पुनर्जातिनि गोमयात् ॥

गोरोचना च माङ्गल्या पवित्रा सर्वसाधिका ।

गोमूत्राद् गुगुलुर्जातिः सुगन्धिः प्रियदर्शनः । आहारः सर्वदेवानां शिवस्य च विशेषतः ॥

यद्वीजं जगतः किंचित् तज्ज्ञेयं क्षीरसम्भवम् ।

दधिजातानि सर्वाणि मङ्गलान्वर्थसिद्धये । घृतादमृतमुत्पन्नं देवानां तृसिकारणम् ॥

ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमें द्विधा कृतम् । एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति ॥

गोषु यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोपु देवाः प्रतिष्ठिताः । गोपु वेदाः समुत्कीर्णाः सपदङ्गपदक्रमाः ॥ (उत्तरपर्व ६९। १६—२४)

राक्षसगण प्रतिष्ठित हैं। गौके पृष्ठदेशमें एकादश रुद्र, सभी संधियोंमें वरुण, श्रोणितट (कमर)-में पितर, कपोलोंमें मानव तथा अपानमें स्वाहारूप अलंकारको आश्रित कर श्री अवस्थित हैं। आदित्यरशिमयाँ केशसमूहोंमें पिण्डीभूत हो अवस्थित हैं। गोमूत्रमें साक्षात् गङ्गा और गोमयमें यमुना स्थित हैं। रोमसमूहमें तैतीस करोड़ देवगण प्रतिष्ठित हैं। उदरमें पर्वत और जंगलोंके साथ पृथ्वी अवस्थित है। चारों पयोधरोंमें चारों महासमुद्र स्थित हैं। क्षीरधाराओंमें मेघ, वृष्टि एवं जलविन्दु हैं, जठरमें गार्हपत्याग्नि, हृदयमें दक्षिणाग्नि, कण्ठमें आहवनीयाग्नि और तालुमें सभ्याग्नि स्थित है। गौओंकी अस्थियोंमें पर्वत और मज्जाओंमें यज्ञ स्थित हैं। सभी वेद भी गौओंमें प्रतिष्ठित हैं*।

हे युधिष्ठिर! भगवती उमाने उन सुरभियोंके रूपका स्मरणकर अपना भी रूप वैसा ही बना लिया। छः स्थानोंसे उन्नत, पाँच स्थानोंसे निम्न, मण्डूकनेत्रा, सुन्दर पूँछवाली, ताम्रके समान रक्त स्तनवाली, चाँदीके समान उज्ज्वल कटिभागवाली, सुन्दर खुर एवं सुन्दर मुखवाली, श्वेतवर्णा, सुशीला, पुत्रस्तेवती, मधुर दूधवाली, शोभन पयोधरवाली—इस प्रकार सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सवत्सा गोरूपधारिणी उस उमाको वृद्ध विप्ररूपधारी भगवान्।

शंकर प्रसन्नचित्त होकर चरा रहे थे। हे पार्थ! धीरे-धीरे वे उस आश्रममें गये और कुलपति भृगुके पास जाकर उन्होंने उस गायको न्यासरूपमें दो दिनतक उसकी सुरक्षा करनेके लिये उन्हें दे दिया और कहा—‘मुने! मैं यहाँ स्नानकर जम्बूक्षेत्रमें जाऊँगा और दो दिन बाद लौटूँगा, तबतक आप इस गायकी रक्षा करें।’ मुनियोंने भी उस गौकी सभी प्रकारसे रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा की। भगवान् शिव वर्ही अन्तर्हित हो गये और फिर थोड़ी देर बाद वे एक व्याघ्र-रूपमें प्रकट हो गये तथा बछड़ेसहित गौको डराने लगे। ऋषिगण भी व्याघ्रके भयसे आक्रान्त हो आर्तनाद करने लगे और यथासम्भव व्याघ्रको हटानेके उपाय करने लगे। व्याघ्रके भयसे सवत्सा वह गौ भी कूद-कूदकर रँभाने लगी। युधिष्ठिर! व्याघ्रके भयसे डरी हुई गौके भागनेपर चारों खुरोंका चिह्न शिला-मध्यमें पड़ गया। आकाशमें देवताओं एवं किन्त्रोंने व्याघ्र (भगवान् शंकर) और सवत्सा गौ (माता पार्वती)-की वन्दना की। शिलाका वह चिह्न आज भी सुस्पष्ट दीखता है। वह नर्मदाजीका उत्तम तीर्थ है। यहाँ शम्भुतीर्थके शिवलिङ्गका जो स्पर्श करता है, वह गोहत्यासे मुक्त हो जाता है। राजन्! जम्बूमार्गमें स्थित उस महातीर्थमें स्नान कर ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्ति मिल जाती है।

* शृङ्गमूले गवां नित्यं ब्रह्मा विष्णुश्च संस्थितौ । शृङ्गाग्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च ॥
शिवो मध्ये महादेवः सर्वकारणकारणम् । ललाटे संस्थिता गौरी नासावंशे च पण्मुखः ॥
कम्बलाश्वतरो नागौ नासापुटसमाश्रितौ । कर्णयोरश्विनौ देवौ चक्षुभ्यां शशिभास्करौ ॥
दन्तेषु वसवः सर्वे जिह्वायां वरुणः स्थितः । सरस्वती च कुहरे यमयक्षौ च गण्डयोः ॥
संध्याद्वयं तथोष्टाभ्यां ग्रीवायां च पुरन्दरः । रक्षांसि ककुदे द्यौश्च पार्णिकाये व्यवस्थिता ॥
चतुष्पात्सकलो धर्मो नित्यं जङ्घासु तिष्ठति । खुरमध्येषु गन्धर्वाः खुराग्रेषु च पत्राणाः ॥
खुराणां पश्यमे भागे राक्षसाः सम्प्रतिष्ठिताः । रुद्रा एकादश पृष्ठे वरुणः सर्वसन्ध्यु ॥
श्रोणीतटस्थाः पितरः कपोलेषु च मानवाः । श्रीरपाने गवां नित्यं स्वाहालंकारमाश्रिताः ॥
आदित्या रश्मयो बालाः पिण्डीभूता व्यवस्थिताः । साक्षादगङ्गा च गोमूत्रे गोमये यमुना स्थिता ॥
ऋग्यस्त्रिशद् देवकोट्यो रोमकूपे व्यवस्थिताः । उदरे पृथिवी सर्वा सशैलवनकानना ॥
चत्वारः सागराः प्रोक्ता गवां ये तु पयोधराः । पर्जन्यः क्षीरधारासु मेघा विन्दुव्यवस्थिताः ॥
जठरे गार्हपत्योऽग्निर्दक्षिणाग्निर्हृदि स्थितः । कण्ठे आहवनीयोऽग्निः सभ्योऽग्निस्तालुनि स्थितः ॥
अस्थिव्यवस्थिताः शैला मज्जासु ऋतवः स्थिताः । ऋषवेदोऽथर्ववेदश सामवेदो यजुस्तथा ॥ (उत्तरपर्व ६९। २५—३७)

जब व्याघ्रसे सवत्सा गौ भयभीत हो रही थी, तब मुनियोंने कुद्ध होकर ब्रह्मासे प्राप्त भयंकर शब्द करनेवाले घंटेको बजाना प्रारम्भ किया। उस शब्दसे व्याघ्र भी सवत्सा गौको छोड़कर चला गया। ब्राह्मणोंने उसका नाम रखा दुष्टागिरि। हे पार्थ! जो मानव उसका दर्शन करते हैं, वे रुद्रस्वरूप ही हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। कुछ ही क्षणोंमें भगवान् शंकर व्याघ्ररूपको छोड़कर वहाँ साक्षात् प्रकट हो गये। वे वृषभपर आरूढ़ थे, भगवती उमा उनके वाम भागमें विराजमान थीं तथा विनायक, कार्तिकेयके साथ नन्दी, महाकाल, शृङ्गी, वीरभद्रा, चामुण्डा, घण्टाकर्णा आदिसे परिवृत और मातृका, भूतसमूह, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, देव, दानव, गन्धर्व, मुनि, विद्याधर एवं नाग तथा उनकी पत्नियोंसे वे पूजित थे। सनकादि भी उनकी पूजा कर रहे थे।

राजन्! कार्तिक मासके शुक्ल पक्ष (मतान्तरसे कृष्ण पक्ष)-की द्वादशी तिथिमें ब्रह्मवादी ऋषियोंने सवत्सा गोरूपधारिणी उमादेवीकी नन्दिनी नामसे भक्तिपूर्वक पूजा की थी। इसीलिये इस दिन गोवत्सद्वादशी-ब्रत किया जाता है। तभीसे उस ब्रतका पृथ्वीतलपर प्रचार हुआ। राजा उत्तानपादने जिस प्रकार इस ब्रतको पृथ्वीपर प्रचारित किया उसे आप सुनें—

उत्तानपाद नामक एक क्षत्रिय राजा थे। जिनकी सुरुचि और शुद्धी (सुनीति) नामकी दो रानियाँ थीं। सुनीतिसे ध्रुव नामका पुत्र हुआ। सुनीतिने अपने उस पुत्रको सुरुचिको सौंप दिया और कहा—‘हे सखि! तुम इसकी रक्षा करो। मैं सदा स्वयं सेवामें तत्पर रहूँगी।’ सुरुचि सदा गृहकार्य सँभालती और पतिव्रता सुनीति सदा पतिकी सेवा करती थी। सपली-द्वेषके कारण किसी समय क्रोध और मात्सर्यसे सुरुचिने सुनीतिके शिशुको

मार डाला, किंतु वह तत्क्षण ही जीवित होकर हँसता हुआ माँकी गोदमें स्थित हो गया। इसी प्रकार सुरुचिने कई बार यह कुकृत्य किया, किंतु वह बालक बार-बार जीवित हो उठता। उसको जीवित देखकर आश्र्वर्यचकित हो सुरुचिने सुनीतिसे पूछा—‘देवि! यह कैसी विचित्र घटना है और यह किस ब्रतका फल है, तुमने किस हवन या ब्रतका अनुष्ठान किया है? जिससे तुम्हारा पुत्र बार-बार जीवित हो जाता है। क्या तुम्हें मृतसंजीवनी विद्या सिद्ध है? रत्न, महारत्न या कौन-सी विशिष्ट विद्या तुम्हारे पास है—यह सत्य-सत्य बताओ।’

सुनीतिने कहा—बहन! मैंने कार्तिक मासकी द्वादशीके दिन गोवत्सब्रत किया है, उसीके प्रभावसे मेरा पुत्र पुनः-पुनः जीवित हो जाता है। जब-जब मैं उसका स्मरण करती हूँ, वह मेरे पास ही आ जाता है। प्रवासमें रहनेपर भी इस ब्रतके प्रभावसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस गोवत्सद्वादशी-ब्रतके करनेसे है सुरुचि! तुम्हें भी सब कुछ प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा कल्याण होगा। सुनीतिके कहनेपर सुरुचिने भी इस ब्रतका पालन किया, जिससे उसे पुत्र, धन तथा सुख प्राप्त हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माने सुरुचिको उसके पति उत्तानपादके साथ प्रतिष्ठित कर दिया और आज भी वह आनन्दित हो रही है। दस नक्षत्रोंसे युक्त ध्रुव आज भी आकाशमें दिखायी देते हैं। ध्रुव नक्षत्रको देखनेसे सभी पापोंसे विमुक्ति हो जाती है।

युधिष्ठिरने कहा—हे भगवन्! इस ब्रतकी विधि भी बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! कार्तिक मासमें शुक्ल पक्षकी द्वादशीको संकल्पपूर्वक श्रेष्ठ जलाशयमें स्नान कर पुरुष या स्त्री एक समय ही भोजन करे। अनन्तर मध्याह्नके समय वत्ससमन्वित गौकी गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुंकुम, अलक्कक,

दीप, उड़दके बड़े, पुष्पों तथा पुष्पमालाओंद्वारा
इस मन्त्रसे पूजा करे—

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां
स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्र नु वोचं
चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ठ
नमो नमः स्वाहा॥ (ऋ० ८। १०१। १५)

इस प्रकार पूजाकर गौको ग्रास प्रदान करे
और निम्नलिखित मन्त्रसे गौका स्पर्श करते हुए
प्रार्थना एवं क्षमा-याचना करे—

ॐ सर्वदेवमये देवि लोकानां शुभनन्दिनि।

मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि॥

(उत्तरपर्व ६९। ८५)

इस प्रकार गौकी पूजाकर जलसे उसका पर्युक्षण
करके भक्तिपूर्वक गौको प्रणाम करे। उस दिन
तवापर पकाया हुआ भोजन न करे और ब्रह्मचर्यपूर्वक
पृथ्वीपर शयन करे। इस व्रतके प्रभावसे व्रती
सभी सुखोंको भोगते हुए अन्तमें गौके जितने रोयें
हैं, उतने वर्षोंतक गोलोकमें वास करता है, इसमें
संदेह नहीं है।

(अध्याय ६९)

देवशयनी एवं देवोत्थानी द्वादशीव्रतोंका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अब मैं
गोविन्द-शयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ
और कटिदान, समुत्थान एवं चातुर्मास्यव्रतका भी
वर्णन करता हूँ, उसे आप सुनें।

युधिष्ठिरने पूछा—महाराज! यह देव-शयन
क्या है? जब देवता भी सो जाते हैं, तब संसार
कैसे चलता है? देव क्यों सोते हैं? और इस
व्रतका क्या विधान है—इसे कहें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवान् सूर्यके
मिथुन राशिमें आनेपर भगवान् मधुसूदनकी मूर्तिको
शयन करा दे और तुलाराशिमें सूर्यके जानेपर
पुनः भगवान् जनार्दनको शयनसे उठाये। अधिमास
आनेपर भी यही विधि है। अन्य प्रकारसे न तो
हरिको शयन कराये और न उन्हें निद्रासे उठाये।
आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षकी देवशयनी एकादशीको
उपवास करे। भक्तिमान् पुरुष शुक्ल वस्त्रसे आच्छादित
तकियेसे युक्त उत्तम शश्यापर पीताम्बरधारी, सौम्य,
शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णुको शयन
कराये। इतिहास और पुराणवेत्ता विष्णुभक्त पुरुष
दही, दूध, शहद, घी और जलसे भगवान्की
प्रतिमाको स्नान कराकर गन्ध, धूप, कुंकुम तथा

वस्त्रोंसे अलंकृत कर निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना
करे—

सुसे त्वयि जगन्नाथ जगत् सुसं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्॥

(उत्तरपर्व ७०। १०)

‘हे जगन्नाथ! आपके सो जानेपर यह सारा
जगत् सुस हो जाता है और आपके जग जानेपर
सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रबुद्ध हो जाता है।’

महाराज! इस प्रकार भगवान् विष्णुकी प्रतिमाको
शश्यापर स्थापित कर उसीके सम्मुख वाणीपर
नियन्त्रण रखनेका और अन्य नियमोंका व्रत ग्रहण
करे। वर्षके चार मासतक देवाधिदेवके शयन
और उसके बाद उत्थापनकी विधि कही गयी है।

राजन्! इस व्रतके त्यागने एवं ग्रहण करने
योग्य पदार्थोंके अलग-अलग नियमोंको आप सुनें।
गुड़का परित्याग करनेसे व्रती अगले जन्ममें मधुर
वाणीवाला राजा होता है। इसी प्रकार चार मासतक
तेलका परित्याग करनेवाला सुन्दर शरीरवाला
होता है। कटु तेलका त्याग करनेसे उसके शत्रुओंका
नाश होता है। महुएके तेलका त्याग करनेसे अतुल
सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। पुष्प आदिके भोगका

परित्याग करनेसे स्वर्गमें विद्याधर होता है। इन चार मासोंमें जो योगका अभ्यास करता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। कड़ुवा, खट्टा, तीता, मधुर, क्षार, कषाय आदि रसोंका जो त्याग करता है, वह वैरूप्य और दुर्गतिको कभी भी प्राप्त नहीं होता। ताम्बूलके त्यागसे श्रेष्ठ भोगोंको प्राप्त करता है और मधुर कण्ठवाला होता है। घृतके त्यागसे रमणीय लावण्य और सभी प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है। फलका त्याग करनेसे बुद्धिमान् होता है और अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। पत्तोंका साग खानेसे रोगी, अपवृत्त अन्न खानेसे निर्मल शरीरसे युक्त होता है। तैल-मर्दनके परित्यागसे व्रती दीसिमान्, दीसकरण, राजाधिराज धनाध्यक्ष कुबेरके सायुज्यको प्राप्त करता है। दही, दूध, तक्र (मट्टा)-के त्यागका नियम* लेनेसे मनुष्य गोलोकको प्राप्त करता है। स्थालीपाकका परित्याग करनेपर इन्द्रका अतिथि होता है। तापपवृत्त वस्तुके भक्षणका नियम लेनेपर दीर्घायु संतानकी प्राप्ति होती है। पृथ्वीपर शयनका नियम लेनेसे विष्णुका भक्त होता है।

हे धर्मनन्दन! इन वस्तुओंके परित्यागसे धर्म होता है। नख और केशोंके धारण करनेपर, प्रतिदिन गङ्गा-स्नान करनेपर एवं मौनव्रती रहनेपर उसकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। जो सदा पृथ्वीपर भोजन करता है, वह पृथ्वीपति होता है। 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका निराहार रहकर जप करने एवं भगवान् विष्णुके चरणोंकी वन्दना करनेसे गोदानजन्य फल प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके चरणोदकके संस्पर्शसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। चातुर्मास्यमें भगवान् विष्णुके मन्दिरमें उपलेपन और अर्चना करनेसे मनुष्य कल्पपर्यन्त स्थायी राजा होता है, इसमें

संशय नहीं है। स्तुतिपाठ करता हुआ जो सौ बार भगवान् विष्णुकी प्रदक्षिणा करता है एवं पुष्प, माला आदिसे पूजा करता है, वह हंसयुक्त विमानके द्वारा विष्णुलोकको जाता है। विष्णु-सम्बन्धी गान और वाद्य करनेवाला गन्धर्वलोकको प्राप्त होता है। प्रतिदिन शास्त्र-चर्चासे जो लोगोंको ज्ञान प्रदान करता है, वह व्यासरूपी भगवान्के रूपमें मान्य होता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। नित्य स्नान करनेवाला मनुष्य कभी नरकोंमें नहीं जाता। भोजनका संयम करनेवाला मनुष्य पुष्करक्षेत्रमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। भगवत्सम्बन्धी लीला-नाटक आदिका आयोजन करनेवाला अप्सराओंका राज्य प्राप्त करता है। अयाचित भोजन करनेवाला श्रेष्ठ बावली और कुँआ बनानेका फल प्राप्त करता है। दिनके छठे (अन्तिम) भागमें अन्नके भक्षण करनेसे मनुष्य स्थायीरूपसे स्वर्ग प्राप्त करता है। पत्तलमें भोजन करनेवाला मनुष्य कुरुक्षेत्रमें वास करनेका फल प्राप्त करता है। शिलापर नित्य भोजन करनेसे प्रयागमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। दो प्रहरतक जलका त्याग करनेसे कभी रोगी नहीं होता।

हे पार्थ! चातुर्मास्यमें इस प्रकारके व्रत एवं नियमोंके पालनसे साधक पूर्ण संतोषको प्राप्त करता है अर्थात् सभी प्रकार सुखी एवं संतुष्ट हो जाता है। गरुडध्वज जगन्नाथके शयन करनेपर चारों वर्णोंकी विवाह, यज्ञ आदि सभी क्रियाएँ सम्पादित नहीं होतीं। विवाह, यज्ञोपवीतादि संस्कार, दीक्षा-ग्रहण, यज्ञ, गृहप्रवेशादि, गोदान, प्रतिष्ठा एवं जितने भी शुभ कर्म हैं, वे सभी चातुर्मास्यमें त्यज्य हैं। संक्रान्तिरहित मासमें अर्थात् मलमासमें देवता एवं पितरोंसे सम्बन्धित कोई भी क्रिया सम्पादित नहीं की जानी चाहिये। भाद्रपद मासके

* यात्रवें मट्टा, भाद्रपदमें दही और आश्विनमें दूधका परित्याग करना चाहिये।

शुक्ल पक्षकी एकादशीको भगवान् विष्णुका कटिदान होता है अर्थात् करवट बदलनेकी क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। इस दिन महापूजा करनी चाहिये।

राजन्! अब इस विष्णु-शयनका कारण सुनिये। किसी समय तपस्याके प्रभावसे हरिको संतुष्टकर योगनिद्राने प्रार्थना की कि भगवन्! आप मुझे भी अपने अङ्गोंमें स्थान दीजिये। तब मैंने देखा कि मेरा सम्पूर्ण शरीर तो लक्ष्मी आदिके द्वारा अधिष्ठित है। लक्ष्मीके द्वारा उरःस्थल, शङ्ख, चक्र, शार्ङ्गधनुष तथा असिके द्वारा बाहु, वैनतेयके द्वारा नाभिके नीचेके अङ्ग, मुकुटसे सिर, कुण्डलोंसे कान अवरुद्ध हैं। इसलिये मैंने संतुष्ट होकर नेत्रोंमें आदरसे योगनिद्राको स्थान दिया और कहा कि तुम वर्षमें चार मास मेरे आश्रित रहोगी। यह सुनकर प्रसन्न होकर योगनिद्राने मेरे नेत्रोंमें वास किया। मैं उस मनस्विनीको आदर देता हूँ। योगनिद्रामें जब मैं क्षीरसागरमें इस महानिद्रारूपी शेषशश्यापर शयन करता हूँ, उस समय ब्रह्माके सांनिध्यमें भगवती लक्ष्मी अपने करकमलोंसे मेरे दोनों चरणोंका मर्दन करती हैं और क्षीरसागरकी लहरें मेरे चरणोंको धोती हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ! जो मनुष्य इस चातुर्मास्यके समय अनेक व्रत-नियमपूर्वक रहता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास करता है। इसमें संशय नहीं। शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान् विष्णु कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीमें जागते हैं, उसकी व्रत-विधि आप सुनिये। भगवान् को इस मन्त्रसे जगाना चाहिये—‘इदं विष्णुर्विं चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूढमस्य पाँ सुरे स्वाहा॥’ (यजु० ५। १५) अपने आसनपर विष्णुके जागनेपर संसारकी सभी धार्मिक क्रियाएँ प्रवृत्त हो जाती हैं। शङ्ख, मृदंग आदि वाद्योंकी ध्वनि एवं जयघोषके

साथ भगवान् को रात्रिमें रथपर बैठाकर घुमाना चाहिये। देवदेवेशके उठनेपर नगरको दीपादिसे देदीप्यमान कर नृत्य-गीत-वाद्य आदिसे मङ्गलोत्सव करना चाहिये। धरणीधर दामोदर भगवान् विष्णु उठकर जिस-जिसको देखते हैं, उस समय उन्हें प्रदत्त सभी वस्तुएँ मानवको स्वर्गमें प्राप्त होती हैं। एकादशीके दिन रात्रिमें मन्दिरमें जागरण करे। द्वादशीमें प्रातःकाल स्वच्छ जलसे स्नानकर विष्णुकी पूजा करे। अग्रिमें धृत आदि हव्य द्रव्योंसे हवन करे, अनन्तर स्नानकर ब्राह्मणको विशिष्ट अन्नोंका भोजन कराये। धी, दही, मधु, गुड आदिके द्वारा निर्मित मोदकको भोजनके लिये समर्पित करे। यजमान भी प्रसन्नतापूर्वक संयमित होकर ग्यारह, दस, आठ, पाँच या दो विप्रोंकी पुष्प, गन्ध आदिसे विधिवत् पूजा करे। श्रेष्ठ संन्यासियोंको भी भोजन कराये और संकल्पमें त्यक्त पदार्थ तथा अभीष्ट पत्र-पुष्प आदि दक्षिणाके साथ देकर उन्हें बिदा करे। अनन्तर स्वयं भोजन करना चाहिये। जिस वस्तुको चार मासतक छोड़ा है, उसे भी खाना चाहिये। ऐसा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है। अन्तमें व्रती विष्णुपुरी (वैकुण्ठ)-को प्राप्त करता है। जिस व्यक्तिका चातुर्मास्यव्रत निर्विघ्न सम्पन्न होता है, वह कृतकृत्य हो जाता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। हे पार्थ! जो देवशयन-व्रतको विधिपूर्वक सम्पन्न करता हुआ अन्तमें भगवान् विष्णुको जगाता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। इस माहात्म्यको जो मनुष्य ध्यानसे सुनता है, स्तुति करता एवं कहता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है। क्षीरसागरमें भगवान् अनन्त जिस दिन सोते हैं और जागते हैं, उस दिन अनन्यचित्तसे उपवास करनेवाला पुरुष सद्गतिको प्राप्त करता है।’ (अध्याय ७०)

नीराजनद्वादशीव्रत-कथा एवं व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! प्राचीन कालमें अजपाल नामके एक राजर्षि थे। एक बार प्रजाने अपने दुःखोंको दूर करनेकी उनसे प्रार्थना की, तब उन्होंने इसपर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और फिर नीराजन-शान्तिका अनुष्ठान किया। राजन्! आपको उस व्रतकी विधि बतलाता हूँ। हे पाण्डवश्रेष्ठ! राजाको पुरोहितके द्वारा इसे सविधि सम्पन्न कराना चाहिये।

जब अजपाल राजा था, उस समय राक्षसोंका स्वामी रावण लङ्घाका राजा था। देवताओंको उसने अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया था। रावणने चन्द्रमाको छत्र, इन्द्रको सेनापति, वायुको धूल साफ करनेवाला, वरुणको जलसेवक, कुबेरको धनरक्षक, यमको शत्रुको संयत करनेवाला तथा राजेन्द्र मनुको मन्त्रणाके लिये नियुक्त किया। मेघ उसके इच्छानुसार शीतल मन्द वृष्टि करते थे। ब्रह्माके साथ सतर्षिगण नित्य उसकी शान्तिकी कामना करते रहते थे। रावणने गन्धर्वोंको गानके लिये, अप्सराओंको नृत्य-गीतके लिये, विद्याधरोंको वाद्य-कार्यके लिये, गङ्गादि नदियोंको जलपान करानेके लिये, अग्निको गार्हपत्य-कार्यके लिये, विश्वकर्माको अन्न-संस्कारके लिये तथा यमको शिल्प आदि कार्योंके लिये नियुक्त किया और दूसरे राजागण नगरकी सेवाके विधानमें तत्पर रहते थे। रावणने ऐसा अपना प्रभाव देखकर अपने प्रसस्ति नामक प्रतिहारसे कहा—‘यहाँ मेरी सेवाके लिये कौन आया है?’ प्रणाम कर निशाचरने कहा—‘प्रभो! ककुत्स्थ, माथाता, धुन्धुमार, नल, अर्जुन, ययाति, नहुष, भीम, राघव, विदूरथ—ये सभी तथा अन्य बहुत-से राजा आपकी सेवाके लिये यहाँ आये हैं, किंतु राजा अजपाल आपकी सेवामें नहीं आया है।’ रावणने कुद्ध होकर शीघ्र

ही धूम्राक्ष नामक राक्षससे कहा—‘धूम्राक्ष! जाओ और अजपालको मेरी आज्ञाके अनुसार यह सूचना दो कि तुम आकर मेरी सेवा करो, अन्यथा तलवारसे तुमको मैं मार डालूँगा।’ रावणके द्वारा ऐसा कहनेपर धूम्राक्ष गरुड़के समान तेज गतिसे उसकी रमणीय नगरीमें गया और राजकुलमें पहुँचा। धूम्राक्षने रावणके द्वारा कही गयी बातें उसे सुनायीं, किंतु अजपालने धूम्राक्षके आक्षेपपूर्वक अन्य कारणोंको कहते हुए लौटा दिया। तदनन्तर ज्वरको बुलाकर राजाने कहा—‘तुम लङ्घेश्वर रावणके पास जाओ और वहाँ यथोचित कार्य सम्पन्न करो।’ अजपालके द्वारा नियुक्त मूर्तिमान् ज्वर वहाँ गया और उसने सभी गणोंके साथ बैठे हुए राक्षसपतिको प्रकम्पित कर दिया। रावणने उस परम भयंकर ज्वरको आया जानकर कहा कि अजपाल राजा वहीं रहे, मुझे उसकी जरूरत नहीं है। उसी बुद्धिमान् राजर्षि अजपालके द्वारा यह शान्ति प्रवर्तित हुई है, यह शान्ति सभी उपद्रवोंको दूर करनेवाली है। सभी रोगोंको नष्ट करनेवाली है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिमें सायंकाल भगवान् विष्णुके जग जानेके बाद ब्राह्मणोंके द्वारा विष्णुका हवन करे। वर्धमान (एरण्ड) वृक्षोंसे प्राप्त तेलयुक्त दीपिकाओंसे भगवान् विष्णुका धीरे-धीरे नीराजन करे। पुष्प, चन्दन, अलंकार, वस्त्र एवं रल आदिसे उनकी पूजा करे। साथ ही लक्ष्मी, चण्डिका, ब्रह्मा, आदित्य, शंकर, गौरी, यक्ष, गणपति, ग्रह, माता-पिता तथा नाग सभीका नीराजन (आरती) करे। गौ, महिष आदिका भी नीराजन करे। घंटा आदि वाद्योंको बजाये। गौओंका सिन्दूर आदिसे तथा चित्र-विचित्र वस्त्रोंसे शृङ्खला करे और बछड़ोंके साथ उनको ले चले एवं उनके पीछे

गोपाल भी ध्वनि करते चलें। मङ्गलध्वनिसे युक्त गौओंके नीराजन-उत्सवमें घोड़ों आदिको भी ले चले। अपने घरके आँगनको राजचिह्नोंसे सुशोभित कर पुरोहितोंके साथ मन्त्री, नौकर आदिको लेकर राजा शङ्ख, तुरही आदिके द्वारा एवं गन्ध, पुष्य, वस्त्र, दीप आदिसे पूजा करे। पुरोहित 'शान्तिरस्तु', 'समृद्धिरस्तु' ऐसा कहते रहें। यह महाशान्ति नामसे प्रसिद्ध नीराजन जिस राष्ट्र, नगर और गाँवमें सम्पन्न होता है, वहाँके सभी

रोग एवं दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा सुभिक्ष हो जाता है। राजा अजपालने इसी नीराजन-शान्तिसे अपने राष्ट्रकी वृद्धि की थी और सम्पूर्ण प्राणियोंको रोगसे मुक्त बना दिया था। इसलिये रोगादिकी निवृत्ति और अपना हित चाहनेवाले व्यक्तिको नीराजन-ब्रतका अनुष्ठान प्रतिवर्ष करना चाहिये। भगवान् विष्णुका जो नीराजन करता है, वह गौ, ब्राह्मण, रथ, घोड़े आदिसे युक्त एवं नीरोग हो सुखसे जीवन-यापन करता है। (अध्याय ७१)

भीष्मपञ्चक-ब्रतकी विधि एवं महिमा

युधिष्ठिरने कहा—हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण! कार्तिक मासमें भीष्मपञ्चक नामका जो श्रेष्ठ ब्रत होता है, अब कृपया उसका विधान बताइये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैं आपसे ब्रतोंमें सर्वोत्तम भीष्मपञ्चक-ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ। मैंने पहले इस ब्रतका उपदेश भृगुजीको किया था, फिर भृगुने शुक्राचार्यको और शुक्राचार्यने प्रह्लाद आदि दैत्यों एवं अपने शिष्य ब्राह्मणोंको बताया। जैसे तेजस्वियोंमें अग्नि, शीघ्रगामियोंमें पवन, पूजनीयोंमें ब्राह्मण एवं दानोंमें सुवर्ण-दान श्रेष्ठ है, वैसे ही ब्रतोंमें भीष्मपञ्चक-ब्रत श्रेष्ठ है। लोकोंमें भूर्लोक, तीर्थोंमें गङ्गा, यज्ञोंमें अश्वमेध, शास्त्रोंमें वेद तथा देवताओंमें अच्युतका जैसा स्थान है, ठीक उसी प्रकारसे ब्रतोंमें भीष्मपञ्चक सर्वोत्तम है। जो इस दुष्कर भीष्मपञ्चक-ब्रतका अनुष्ठान कर लेता है, उसके द्वारा सभी धर्म सम्पादित हो जाते हैं। पहले सत्ययुगमें वसिष्ठ, भृगु, गर्ग आदि मुनियोंने, फिर त्रेतामें नाभाग, अम्बरीष आदि राजाओंने और द्वापरमें सीरभद्र आदि वैश्योंने तथा कलियुगमें उत्तम आचरणवाले शूद्रोंने भी इस ब्रतका अनुष्ठान किया। ब्राह्मणोंने ब्रह्मचर्य-पालन, जप तथा हवन-कर्मके द्वारा और

क्षत्रियों एवं वैश्योंने सत्य-शौच आदिके पालनपूर्वक इस ब्रतका अनुष्ठान किया है। सत्यहीन मूढ मनुष्योंके लिये इस ब्रतका अनुष्ठान असम्भव है। यह भीष्मपञ्चक-ब्रत पाँच दिनतक होता है। इस भीष्मपञ्चक-ब्रतमें असत्यभाषण, शिकार खेलने आदि अनुचित कर्मोंका त्याग करना चाहिये। पाँच दिन विष्णुभगवान्का पूजन करते हुए शाकमात्रका ही आहार करना चाहिये। पतिकी आज्ञासे स्त्री भी सुख-प्राप्तिहेतु इस ब्रतका आचरण कर सकती है। विधवा नारी भी पुत्र-पौत्रोंकी समृद्धि अथवा मोक्षार्थ इस ब्रतको कर सकती है। इसमें कार्तिक मासपर्यन्त नित्य प्रातः-स्नान, दान, मध्याह्न-स्नान और भगवान् विष्णुके पूजनका विधान है। नदी, झरना, देवखात या किसी पवित्र जलाशयमें शरीरमें गोमय लगाकर स्नान कर जौ, चावल तथा तिलोंसे देवता, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। भगवान् विष्णुको भी मधु, दुग्ध, धी तथा चन्दनमिश्रित जलसे भक्तिपूर्वक स्नान कराना चाहिये। कर्पूर, पञ्चगव्य, कुंकुम (केसर), चन्दन तथा सुगन्धित पदार्थोंके द्वारा भगवान् गरुडध्वज विष्णुका उपलेपन करना चाहिये। उनके सामने एक दीपक पाँच दिनोंतक अनवरत दिन-रात प्रज्वलित रखना चाहिये।

भगवान्‌को नैवेद्य निवेदित कर 'उँ॑ नमो वासुदेवाय'-का अष्टोत्तरशत-जप, तदनन्तर षडक्षर-मन्त्रसे हवन करना चाहिये तथा विधिपूर्वक सायंकालीन संध्या करनी चाहिये। जमीनपर सोना चाहिये। ये सभी कार्य पाँच दिनोंतक किये जाने चाहिये। इस व्रतमें पहले दिन भगवान् विष्णुके चरणोंकी कमल-पुष्पोंके द्वारा पूजा करनी चाहिये। दूसरे दिन बिल्वपत्रके द्वारा उनके घुटनोंकी, तीसरे दिन नाभि-स्थलपर केवड़ेके पुष्पद्वारा पूजा करनी चाहिये। चौथे दिन बिल्व एवं जपा-पुष्पोंसे भगवान्‌के स्कन्ध-प्रदेशकी पूजा करनी चाहिये और पाँचवें दिन मालती-पुष्पोंसे भगवान्‌के शिरोभागकी पूजा करनी चाहिये।

इस प्रकार हृषीकेशका पूजन करते हुए ब्रतीको एकादशीके दिन ब्रत कर अभिमन्त्रित गोमय तथा द्वादशीको गोमूत्रका प्राशन करना चाहिये। त्रयोदशीको दूध तथा चतुर्दशीको दधिका प्राशन करना चाहिये। कायशुद्धिके लिये चारों दिन इनका प्राशन करना चाहिये। पाँचवें दिन स्नानकर केशवकी विधिवत्

पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसी प्रकार पुराण-वाचकोंको भी वस्त्राभूषण प्रदान करना चाहिये। रात्रिमें पहले पञ्चगव्य-पान करके पीछे अन्न भोजन करे। इस प्रकारसे भीष्मपञ्चक-ब्रतका समापन करना चाहिये। यह भीष्मपञ्चक-ब्रत परम पवित्र और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। राजन्! इसी भीष्मपञ्चक-ब्रतका वर्णन शरशय्यापर पढ़े हुए महात्मा भीष्मने स्वयं किया था। इसे मैंने आपको बता दिया। जो मानव भक्तिपूर्वक इस ब्रतका पालन करता है, उसे भगवान् अच्युत मुक्ति प्रदान करते हैं। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा संन्यासी जो कोई भी इस ब्रतको करते हैं, उन्हें वैष्णवस्थान प्राप्त होता है। कार्तिक शुक्ल एकादशीसे ब्रत प्रारम्भ करके पौर्णमासीको ब्रत पूर्ण करना चाहिये। जो इस ब्रतको सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि बड़े-बड़े पापोंसे भी मुक्त हो जाता है और शुद्ध सद्गतिको प्राप्त होता है। ऐसा भीष्मका वचन है। (अध्याय ७२)

मल्लद्वादशी एवं भीमद्वादशी-ब्रतका विधान

युधिष्ठिरके द्वारा मल्लद्वादशीके विषयमें पूछे जानेपर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा—महाराज! जब मेरी अवस्था आठ वर्षकी थी, उस समय यमुना-तटपर भाण्डीर-वनमें वट-वृक्षके नीचे एक सिंहासनपर मुझे बैठाकर सुरभद्र, मण्डलीक, योगवर्धन तथा यक्षेन्द्रभद्र आदि बड़े-बड़े मल्लों और गोपाली, धन्या, विशाखा, ध्याननिष्ठिका, अनुगन्धा, सुभगा आदि गोपियोंने दही, दूध और फल-फूल आदिसे मेरा पूजन किया। तत्पश्चात् तीन सौ साठ मल्लोंने भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करते हुए मल्लयुद्धको सम्पन्न किया तथा हमारी प्रसन्नताके लिये बड़ा भारी उत्सव मनाया। उस

महोत्सवमें भाँति-भाँतिके भक्ष्य-भोज्य, गोदान, गोष्ठी तथा पूजन आदि कार्य सम्पन्न किये गये थे। श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन भी हुआ था। उसी दिनसे वह मल्लद्वादशी प्रचलित हुई। इस ब्रतको मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे आरम्भ कर कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीतक करना चाहिये और प्रतिमास क्रमसे केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ तथा दामोदर—इन नामोंसे गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, गीत-वाद्य, नृत्यसहित पूजन करे और 'कृष्णो मे प्रीयताम्' इस प्रकार उच्चारण करे। यह द्वादशीब्रत मुझे

बहुत प्रिय है। चूँकि मल्लोंने इस बातको प्रारम्भ किया था, अतः इसका नाम मल्लद्वादशी है। जिन गोपोंके द्वारा इस व्रतको सम्पन्न किया गया, उन्हें गाय, महिषी, कृषि आदि प्रचुर मात्रामें प्राप्त हुआ। जो कोई पुरुष इस व्रतको सम्पन्न करेगा, मेरे अनुग्रहसे वह आरोग्य, बल, ऐश्वर्य और शाश्वत विष्णुलोकको प्राप्त करेगा।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज ! प्राचीन कालमें विदर्भ देशमें भीम नामक एक प्रतापी राजा थे। वे दमयन्तीके पिता एवं राजा नलके ससुर थे। राजा भीम बड़े पराक्रमी, सत्यवक्ता और प्रजापालक थे। वे शास्त्रोक्त-विधिसे राज्य-कार्य करते थे। एक दिन तीर्थयात्रा करते हुए ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि उनके यहाँ पधारे। राजाने अर्घ्य-पाद्यादिद्वारा उनका बड़ा आदर-सत्कार किया, पुलस्त्यमुनिने प्रसन्न होकर राजासे कुशल-क्षेम पूछा, तब राजाने अत्यन्त विनयपूर्वक कहा—‘महाराज ! जहाँ आप-जैसे महानुभावका आगमन हो, वहाँ सब कुशल ही होता है। आपके यहाँ पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।’ इस तरहसे अनेक प्रकारकी स्नेहकी बातें राजा तथा पुलस्त्यमुनिके बीच होती रहीं। कुछ समयके पश्चात् विदर्भाधिपति भीमने पुलस्त्यमुनिसे पूछा—प्रभो ! संसारके जीव अनेक प्रकारके दुखोंसे सदा पीड़ित रहते हैं और उसमें गर्भवास सबसे बड़ा दुःख है, प्राणी अनेक प्रकारके रोगसे ग्रस्त हैं। जीवोंकी ऐसी दशाको देखकर मुझे अत्यन्त कष्ट होता है। अतः ऐसा कौन-सा उपाय है, जिसके द्वारा थोड़ा परिश्रम करके ही जीव संसारके दुःखोंसे छुटकारा पानेमें समर्थ हो जाय। यदि कोई व्रत-दानादि हो तो आप मुझे बतलायें।

पुलस्त्यमुनिने कहा—राजन् ! यदि मानव माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास करे तो

उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता। यह तिथि परम पवित्र करनेवाली है। यह व्रत अति गुप्त है, किंतु आपके स्नेहने मुझे कहनेके लिये विवश कर दिया है। अदीक्षितसे इस व्रतको कभी नहीं कहना चाहिये, जितेन्द्रिय, धर्मनिष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष ही इस व्रतके अधिकारी हैं। ब्रह्मधाती, गुरुघाती, स्त्रीघाती, कृतघ्न, मित्रदोही आदि बड़े-बड़े पातकी भी इस व्रतके करनेसे पापमुक्त हो जाते हैं। इसके लिये शुद्ध तिथिमें और अच्छे मुहूर्तमें दस हाथ लम्बा-चौड़ा मण्डप तैयार करना चाहिये तथा उसके मध्यमें पाँच हाथकी एक वेदी बनानी चाहिये। वेदीके ऊपर एक मण्डल बनाये, जो पाँच रंगोंसे युक्त हो। मण्डपमें आठ अथवा चार कुण्ड बनाये। कुण्डोंमें ब्राह्मणोंको उपस्थापित करे। मण्डलके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर पश्चिमाभिमुख चतुर्भुज भगवान् जनार्दनकी प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, आदि भाँति-भाँतिके उपचारों तथा नैवेद्योंसे शास्त्रोक्त-विधिसे ब्राह्मणोंद्वारा उनकी पूजा करानी चाहिये। नारायणके सम्मुख दो स्तम्भ गाढ़कर उनके ऊपर एक आड़ा काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छींका बाँधना चाहिये। उसपर सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मृत्तिकाका सहस्र, शत या एक छिद्रसमन्वित उत्तम कलश जल, दूध अथवा धीसे पूर्ण कर रखना चाहिये। पलाशकी समिधा, तिल, घृत, खीर और शमी-पत्रोंसे ग्रहोंके लिये आहुति देनी चाहिये। ईशान-कोणमें ग्रहोंका पीठ-स्थापन कर ग्रह-यज्ञविधानसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। पूर्व आदि दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और कुबेरका पूजन कर शुक्ल वस्त्र तथा चन्दनसे भूषित, हाथमें कुश लेकर यजमानको एक पीढ़ेके ऊपर भगवान्के सामने बैठना चाहिये। यजमानको एकाग्रचित्त हो कलशसे गिरती जलधारा (वसोर्धारा)–

को निम्रमन्त्रका पाठ करते हुए भगवान्‌को प्रणामपूर्वक अपने सिरपर धारण करना चाहिये—

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते भुवनेश्वर।

ब्रतेनानेन मां पाहि परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व ७४।४२)

उस समय ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंके कुण्डोंमें हवन करना चाहिये। साथ ही शान्तिकाध्याय और विष्णुसूक्तका पाठ किया जाना चाहिये। शङ्ख-ध्वनि करनी चाहिये। भाँति-भाँतिके वायोंको बजाना चाहिये। पुण्य-जयघोष करना चाहिये। माङ्गलिक स्तुति-पाठ करना चाहिये। इस तरहके माङ्गलिक कार्य करते हुए यजमानको हरिवंश, सौपर्णिक (सुपर्णसूक्त) आख्यान और महाभारत आदिका श्रवण करते हुए जागरणपूर्वक रात्रि व्यतीत करनी चाहिये। भगवान्‌के ऊपर गिरती हुई वसोर्धारा समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली है। दूसरे दिन प्रातः यजमान ब्राह्मणोंके साथ किसी पुण्य जलाशय अथवा नदी आदिमें स्नानकर शुक्ल वस्त्र पहनकर प्रसन्नचित्तसे भगवान् भास्करको अर्घ्य दे। पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे भगवान् पुरुषोत्तमकी पूजा करे। हवन करके भक्तिपूर्वक पूर्णाहुति दे। यज्ञमें उपस्थित सभी ब्राह्मणोंका शश्या, भोजन, गोदान, वस्त्र, आभूषण आदिद्वारा पूजन करे और आचार्यकी विशेषरूपसे पूजा करे।

जैसे ब्राह्मण एवं आचार्य संतुष्ट हों वैसा यत्न करे, क्योंकि आचार्य साक्षात् देवतुल्य गुरु है। दीनों, अनाथों तथा अध्यागतोंको भी संतुष्ट करे। अनन्तर स्वयं भी हविष्यका भोजन करे।

राजन्! इस प्रकार मैंने इस भीमद्वादशी-ब्रतका विधान बतलाया, इससे पापिष्ठ व्यक्ति भी पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। यह विष्णुयाग सैकड़ों वाजपेय एवं अतिरात्र यागोंसे विशेष फलदायी है। इस भीमद्वादशीका ब्रत करनेवाले स्त्री-पुरुष सात जन्मोंतक अखण्ड सौभाग्य, आयु, आरोग्य तथा सभी सम्पदाओंको प्राप्त करते हैं। अनन्तर मृत्युके बाद क्रमशः विष्णुपुर, रुद्रलोक तथा ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। इस पृथ्वीलोकमें आकर पुनः वह सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिपति एवं चक्रवर्ती धार्मिक राजा होता है।

इस ब्रतको प्राचीन कालमें महात्मा सगर, अज, धुंधुमार, दिलीप, ययाति तथा अन्य महान् श्रेष्ठ राजाओंने किया था और स्त्री, वैश्य एवं शूद्रोंने भी धर्मकी कामनासे इस ब्रतको किया था। भृगु आदि मुनियों और सभी वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा भी इसका अनुष्ठान हुआ था। हे राजन्! आपके पूछनेपर मैंने इसे बतलाया है, अतः आजसे यह द्वादशी आपके (भीमद्वादशी) नामसे पृथ्वीपर ख्याति प्राप्त करेगी। (अध्याय ७३-७४)

श्रवणद्वादशी-ब्रतके प्रसंगमें एक वणिकृकी कथा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जो व्यक्ति दीर्घ उपवास करनेमें असमर्थ हो उसके लिये कौन-सा ब्रत है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो इसमें ब्रत करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह परम पवित्र एवं

महान् फल देनेवाली द्वादशी है। इस ब्रतमें प्रातःकाल नदी-संगममें जाकर स्नान करके द्वादशीमें उपवास करना चाहिये। एकमात्र इस श्रवणद्वादशीके ब्रत कर लेनेसे द्वादश द्वादशी-ब्रतोंका फल प्राप्त हो जाता है। यदि इस तिथिमें बुधवारका भी योग हो जाय तो इसमें किये गये समस्त कर्म अक्षय हो जाते हैं। इस ब्रतसे गङ्गास्नानका लाभ होता

है। इस व्रतमें एक सुन्दर कलशकी विधिवत् स्थापना कर उसमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमा यथाविधि स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर भगवान्‌की अङ्गपूजा करनी चाहिये। रात्रिमें जागरण करे। प्रभातकालमें स्नानकर गरुडध्वजकी पूजा करे और पुष्पाञ्जलि देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक।
अद्यौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव॥

(उत्तरपर्व ७५। १५)

अनन्तर वेदज्ञ एवं पुराणज्ञ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और प्रतिमा आदि सब पदार्थ 'प्रीयतां मे जनार्दनः' कहकर ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! इस व्रतके प्रसंगमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप सुनें—दशार्ण देशके पश्चिम भागमें सम्पूर्ण प्राणियोंको भय देनेवाला एक मरुदेश है। वहाँके भूमिकी बालू निरन्तर तपती रहती है, यत्र-तत्र भयंकर साँप घूमते रहते हैं। वहाँ छाया बहुत कम है। वृक्षोंमें पत्ते कम रहते हैं। प्राणी प्रायः मरे-जैसे ही रहते हैं। शमी, खैर, पलाश, करील, पीलु आदि कँटीले वृक्ष वहाँ हैं। वहाँ अन्न और जल बहुत कम मिलता है। वृक्षोंके कोटरोंमें छोटे-छोटे पक्षी प्यासे ही मर जाते हैं। वहाँके प्यासे हरिण मरुभूमिमें जलकी इच्छासे दौड़ लगाते रहते हैं और जल न मिलनेसे मर जाते हैं।

उस मरुस्थलमें दैववश एक वणिक् पहुँच गया। वह अपने साथियोंसे बिछुड़ गया था। उसने इधर-उधर घूमते हुए भयंकर पिशाचोंको वहाँ देखा। वह वणिक् भूख-प्याससे व्याकुल होकर इधर-उधर घूमने लगा। कहने लगा—क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, कहाँसे मुझे अन्न-जल प्राप्त हो। तदनन्तर उसने एक प्रेतके स्कन्धप्रदेशपर बैठे एक प्रेतको देखा। जिसे चारों ओरसे अन्य प्रेत धेरे हुए थे।

कन्थेपर चढ़ा हुआ वह प्रेत वणिक्को देखकर उसके पास आया और कहने लगा—'तुम इस निर्जल प्रदेशमें कैसे आ गये?' उसने बताया—'मेरे साथी छूट गये हैं, मैं अपने किसी पूर्व-कुकृत्यके फलसे या संयोगसे यहाँ पहुँच गया हूँ। भूख और प्याससे मेरे प्राण निकल रहे हैं। मैं अपने जीनेका कोई उपाय नहीं देख रहा हूँ।' इसपर वह प्रेत बोला—'तुम इस पुत्राग-वृक्षके पास क्षणमात्र प्रतीक्षा करो। यहाँ तुम्हें अभीष्ट लाभ होगा, इसके बाद तुम यथेच्छ चले जाना।' वणिक् वहाँ ठहर गया। दोपहरके समय कोई व्यक्ति पुत्राग-वृक्षसे एक कसोरेमें जल तथा दूसरे कसोरेमें दही और भात लेकर प्रकट हुआ और उसने वह वणिक्को प्रदान किया। वणिक् उसे ग्रहणकर संतुष्ट हुआ। उसी व्यक्तिने प्रेत-समुदायको भी जल और दही-भात दिया, इससे वे सभी संतृप्त हो गये। शेष भागको उस व्यक्तिने स्वयं भी ग्रहण किया। इसपर आश्चर्यचकित होकर वणिक् ने उस प्रेताधिपसे पूछा—'ऐसे दुर्गम स्थानमें अन्न-जलकी प्राप्ति आपको कहाँसे होती है? थोड़ेसे ही अन्न-जलसे बहुतसे लोग कैसे तृप्त हो जाते हैं। मुझे सहारा देनेवाले इस स्थानमें आप कैसे मिल गये? हे शुभव्रत! आप यह बतलायें कि ग्रासमात्रसे ही आपको संतुष्टि कैसे हो गयी? इस घोर अटवीमें आपने अपना स्थान कहाँ बनाया है? मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है, मेरा संशय आप दूर करें।'

प्रेताधिपने कहा—हे भद्र! मैंने पहले बहुत दुष्कृत किया था। दुष्ट बुद्धिवाला मैं पहले रमणीय शाकल नगरमें रहता था। व्यापारमें ही मैंने अपना अधिकांश जीवन बिता दिया। प्रमादवश मैंने धनके लोभसे कभी भी भूखेको न अन्न दिया और न प्यासेकी प्यास ही बुझायी। मेरे ही घरके पास एक गुणवान् ब्राह्मण रहता था। वह

भाद्रपद मासकी श्रवण नक्षत्रसे युक्त द्वादशीके योगमें कभी मेरे साथ तोषा नामकी नदीमें गया। तोषा नदीका संगम चन्द्रभागासे हुआ है। चन्द्रभाग चन्द्रमाकी तथा तोषा सूर्यकी कन्या हैं। उन दोनोंका शीतोष्ण जल बड़ा मनोहर है। उस तीर्थमें जाकर हमलोगोंने स्नान किया और उपवास किया। हमने वहाँ दध्योदन, छत्र, वस्त्र आदि उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमाकी पूजा की। इसके अनन्तर हमलोग घर आ गये। मरनेके अनन्तर नास्तिक होनेसे मैं प्रेतत्वको प्राप्त हुआ। इस घोर अटवीमें जो हो रहा है, वह तो आप देख ही रहे हैं। ये जो अन्य प्रेतगण आप देख रहे हैं, इनमें कुछ ब्राह्मणोंके धनका अपहरण करनेवाले, कोई परदारारत हैं, कोई अपने स्वामीसे द्रोह करनेवाले तथा कोई मित्रद्रोही हैं। मेरा अन्न-पान करनेसे ये सब मेरे सेवक बन गये हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अक्षय, सनातन परमात्मा हैं। उनके उद्देश्यसे जो कुछ भी दान किया जाता है वह अक्षय होता है। हे महाभाग! आप हिमालयमें

जाकर धन प्राप्त करेंगे, अनन्तर मुझपर कृपाकर आप इन प्रेतोंकी मुक्तिके लिये गयामें जाकर श्राद्ध करें। इतना कहकर वह प्रेताधिप मुक्त होकर विमानमें बैठकर स्वर्गलोक चला गया।

प्रेताधिपके चले जानेपर वह वणिक् हिमालयमें गया और वहाँ धन प्राप्त कर अपने घर आ गया और उस धनसे उसने गया तीर्थमें अक्षयवटके समीप उन प्रेतोंके उद्देश्यसे श्राद्ध किया। वह वणिक् जिस-जिस प्रेतकी मुक्तिके निमित्त श्राद्ध करता था, वह प्रेत वणिक् को स्वप्नमें दर्शन देकर कहता था कि ‘हे महाभाग! आपकी कृपासे मैं प्रेतत्वसे मुक्त हो गया और मुझे परमगति प्राप्त हुई।’ इस प्रकार वे सभी प्रेत मुक्त हो गये। राजन् वह वणिक् पुनः घर लौट आया और उसने भाद्रपद मासके श्रवण द्वादशीके योगमें भगवान् जनार्दनकी पूजा की, ब्राह्मणोंको गो-दान किया। जितेन्द्रिय होकर प्रतिवर्ष नदीके संगमोंपर यह सब कार्य किया और अन्तमें उसने मानवोंके लिये दुर्लभ स्थानको प्राप्त किया। (अध्याय ७५)

विजय-श्रवण-द्वादशीव्रतमें वामनावतारकी कथा तथा व्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! भाद्रपद मासकी एकादशी तिथि यदि श्रवण नक्षत्रसे युक्त हो तो उसे विजया तिथि कहते हैं, वह भक्तोंको विजय प्रदान करनेवाली है। एक बार दैत्यराज बलिसे पराजित होकर सभी देवता भगवान् विष्णुकी शरणमें पहुँचे और कहने लगे—‘प्रभो! सभी देवताओंके एकमात्र आश्रय आप ही हैं। आप महान् कष्टसे हमारा उद्धार कीजिये। इस दैत्य बलिका आप विनाश कीजिये।’ इसपर भगवान् ने कहा—‘देवगणो! मैं यह जानता हूँ कि विरोचन-पुत्र बलि तीनों लोकोंका कण्टक बना हुआ है, पर उसने तपस्याद्वारा अपनी आत्माकी अपनेमें

भावना कर ली है, वह शान्त है, जितेन्द्रिय है और मेरा भक्त है, उसके प्राण मुझमें ही लगे हैं। वह सत्यप्रतिज्ञ है। बहुत दिनोंके बाद उसकी तपस्याका अन्त होगा। जब मैं इसे अविनयसम्पन्न समझूँगा, तब उसका अभीष्ट हरण कर लूँगा और आपको दे दूँगा। पुत्रकी इच्छासे देवमाता अदिति भी मेरे पास आयी थीं। देवताओ! मैं उनका भी कल्याण करूँगा, अवतार लेकर देवताओंका संरक्षण और असुरोंका विनाश करूँगा। इसलिये आपलोग निश्चिन्त होकर जायें और समयकी प्रतीक्षा करें। देवगण भगवान् विष्णुको स्मरण करते हुए वापस आ गये। इधर अदिति भी भगवान् विष्णुका

ध्यान करती थीं। कुछ कालमें उन्होंने गर्भमें भगवान्‌को धारण किया। नवें मासमें वामनभगवान् अदितिके गर्भसे प्रादुर्भूत हुए। उनके पैर छोटे, शरीर छोटा, सिर बड़ा और छोटे बच्चेके समान हाथ-पैर, उदर आदि थे। वामनरूपमें जब अदितिने पुत्रको देखा और जब वह कुछ कहनेको उद्यत हुई तो देवमायासे उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी।

हे नरोत्तम! भाद्रपद मासके श्रवण नक्षत्रसे युक्त एकादशी तिथिमें जब त्रिविक्रम वामन-भगवान्‌का पृथ्वीपर अवतार हुआ तब पृथ्वी डगमगाने लगी। दैत्योंमें भय छा गया और देवगण प्रसन्न हो गये। महामुनि कश्यपने शिशुके जातकर्मादि संस्कार स्वयं ही किये। वामनभगवान् दण्ड, मेखला, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा छत्र धारणकर राजा बलिके यज्ञस्थलमें गये। उन्होंने बलिसे कहा—‘यज्ञपते! मुझे तीन पग भूमि प्रदान करो।’ बलिने कहा—‘मैंने दे दिया।’ उसी समय भगवान् वामनने अपना शरीर बढ़ाना प्रारम्भ किया। भगवान्‌ने अपना शरीर इतना विशाल बना लिया कि एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वीलोकको नाप लिया तथा द्वितीय पगसे ब्रह्मलोक नाप लिया। तीसरा पग रखनेके लिये जब कोई स्थान न मिला तो देवगण, सिद्ध, ऋषि-मुनि इस कृत्यको देखकर साधु-साधु कहने लगे और भगवान्‌की स्तुति करने लगे। तदनन्तर सभी दैत्यगणोंको जीतकर उन्होंने दैत्यराज बलिसे कहा—‘तुम अपने परिजनोंके साथ सुतललोकमें चले जाओ। मेरे द्वारा सुरक्षित रहकर तुम वहाँ अभीप्सित भोगोंका उपभोग करोगे। वर्तमानमें जो इन्द्र हैं, उनके बाद तुम इन्द्रत्वको प्राप्त करोगे।’ बलि भगवान्‌को प्रणामकर प्रसन्न हो

सुतललोकको चला गया। भगवान्‌ने देवताओंसे कहा—‘आपलोग अपने-अपने स्थानपर निश्चिन्त होकर रहें।’ भगवान् भी संसारका कल्याण करके वहीं अन्तर्धान हो गये।

राजन्! ये सभी कर्म एकादशी तिथिको हुए थे। अतः यह तिथि देवताओंकी विजयतिथि मानी गयी है। यही एकादशी तिथि फाल्गुन मासमें पुष्य नक्षत्रसे युक्त होनेपर विजया तिथि कही गयी है। एकादशीके दिन उपवासकर रात्रिमें भगवान् वामनकी प्रतिमा बनाकर पूजा करनी चाहिये। प्रतिमाके समीप ही कुण्डिका, छत्र, चरणपादुका, यष्टि, यज्ञोपवीत, कमण्डलु तथा मृगचर्म आदि स्थापित करना चाहिये। अनन्तर विधिवत् उनकी पूजा करनी चाहिये। निम्न मन्त्रोंसे उन्हें नमस्कार करे और प्रार्थना करे—

अनेककर्मनिर्बन्धवंसिनं जलशायिनम् ।
नतोऽस्मि मधुरावासं माधवं मधुसूदनम् ॥
नमो वामनरूपाय नमस्तेऽस्तु त्रिविक्रम ।
नमस्ते मणिबन्धाय वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥
नमो नमस्ते गोविन्द वामनेश त्रिविक्रम ॥
अघोघसंक्षयं कृत्वा सर्वकामप्रदो भव ॥

(उत्तरपर्व ७६। ४८—५१)

इसके अनन्तर भगवान्‌को शयन कराये। गीत-वाद्य, स्तुति आदिके द्वारा जागरण करे। प्रातःकाल उस प्रतिमाकी पूजाकर मन्त्रपूर्वक उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इस व्रतके करनेसे व्रतीका एक मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोकमें वास होता है, तदनन्तर वह इस लोकमें आकर चक्रवर्ती दानी राजा होता है। वह नीरोग, दीर्घायु एवं पुत्रवान् होता है। (अध्याय ७६)

सम्प्रासि-द्वादशी एवं गोविन्द-द्वादशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— पौष मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीसे ज्येष्ठ मासकी द्वादशीतक प्रत्येक मासकी कृष्ण द्वादशीको षाण्मासिक सम्प्रासि-द्वादशीव्रत किया जाता है। प्रत्येक मासमें क्रमशः पुण्डरीकाक्ष, माधव, विश्वरूप, पुरुषोत्तम, अच्युत तथा जय—इन नामोंसे उपवासपूर्वक भगवान्‌की पूजा करनी चाहिये। पुनः आषाढ़ कृष्ण द्वादशीसे व्रत ग्रहणकर मार्गशीर्षतक व्रतका नियम लेना चाहिये। पूर्वविधानसे उपवासपूर्वक उन्हीं नामोंसे क्रमशः भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। प्रतिमास ब्राह्मणको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। तेल एवं क्षार पदार्थ नहीं ग्रहण करने चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतके करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और अन्तमें वह भगवान्‌के अनुग्रहसे उनके लोकको प्राप्त कर लेता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा— महाराज ! इसी प्रकार गोविन्द-द्वादशी नामका एक अन्य व्रत है, जिसके करनेसे सभी अभीष्ट सिद्ध हो जाते हैं। पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर पुष्ट, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे कमलनयन भगवान्

गोविन्दका पूजनकर अन्तर्मनमें भी इसी नामका उच्चारण करते रहना चाहिये। इस दिन पाखण्डियोंसे बात नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। व्रतीको गोमूत्र, गोमय, दधि अथवा गोदुरधका प्राशन करना चाहिये। दूसरे दिन स्नानकर उसी विधिसे गोविन्दका पूजन कर ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करना चाहिये। इसके साथ ही इस दिन गौको तृष्णिपूर्वक भोजन कराना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करते हुए वर्ष समाप्त होनेपर भगवती लक्ष्मीके साथ सुवर्णकी भगवान् गोविन्दकी प्रतिमा बनवाकर पुष्ट, धूप, दीप, माला, नैवेद्य आदिसे उसका पूजनकर सबत्सा गौसहित ब्राह्मणोंको देना चाहिये। प्रतिमास गौओंकी पूजा तथा उन्हें ग्रासादिसे तृप्त करना चाहिये। पारणाके दिन विशेषरूपसे उनकी सेवा-भक्ति करनी चाहिये। इस व्रतको करनेसे वही फल प्राप्त होता है जो सुवर्णशृङ्गी सौ गौओंके साथ एक उत्तम वृषका दान देनेसे होता है। इस व्रतको सम्यक्-रूपसे करनेवाला सब सुख भोगकर अन्तमें गोलोकको प्राप्त होता है। (अध्याय ७७-७८)

अखण्ड-द्वादशी, मनोरथ-द्वादशी एवं तिल-द्वादशी-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा— श्रीकृष्ण ! व्रतोपवास, दान, धर्म आदिमें जो कुछ वैकल्य अर्थात् किसी बातकी न्यूनता रह जाय तो क्या फल होता है ? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! राज्य पाकर भी जो निर्धन, उत्तम रूप पाकर भी काने, अंधे, लँगड़े हो जाते हैं, वे सब धर्म-वैकल्यके प्रभावसे ही होते हैं। धर्म-वैकल्यसे ही स्त्री-पुरुषोंमें वियोग एवं दुर्भगत्व होता है, उत्तम कुलमें जन्म पाकर भी लोग दुःशील हो जाते हैं, धनाढ़य होकर भी

धनका भोग तथा दान नहीं कर सकते तथा वस्त्र-आभूषणोंसे हीन रहते हैं। वे सुख प्राप्त नहीं कर पाते। अतः यज्ञमें, व्रतमें और भी अन्य धर्म-कृत्योंमें कभी कोई त्रुटि नहीं होने देनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः कहा— भगवन् ! यदि कदाचित् उपवास आदिमें कोई त्रुटि हो ही जाय तो उसके निवारणार्थ क्या करना चाहिये ?

श्रीकृष्ण बोले— महाराज ! अखण्ड-द्वादशी-व्रत करनेसे सभी प्रकारकी धार्मिक त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। अब आप उसका भी विधान सुनें। मार्गशीर्ष

मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको स्नानकर जनार्दन भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन कर उपवास रखना चाहिये और नारायणका सतत स्मरण करते रहना चाहिये। जितेन्द्रिय पुरुष पञ्चगव्यमिश्रित जलसे स्नान करके जौ और ब्रीहि (धान)-से भरा पात्र ब्राह्मणको दान करे और फिर भगवान्‌से यह प्रार्थना करे—

सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डव्रतं कृतम् ।

भगवन् त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥

यथाखण्डं जगत् सर्वं त्वयैव पुरुषोत्तम् ।

तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै ॥

(उत्तरपर्व ७९। १४-१५)

‘भगवन्! मुझसे सात जन्मोंमें जो भी व्रत करनेमें न्यूनता हुई हो, वह सब आपके अनुग्रहसे परिपूर्ण हो जाय। पुरुषोत्तम! जिस प्रकार आपसे यह सारा जगत् परिपूर्ण है, उसी प्रकार मेरे खण्डत सभी व्रत पूर्ण हो जायँ।’

इस व्रतमें चार महीनेमें व्रतकी पारणा करनी चाहिये। चैत्रादि चार मासके अनन्तर दूसरी पारणा कर सन्तु-पात्र ब्राह्मणको देनेका विधान है। श्रावणादि चार मासके अनन्तर तीसरा पारण कर नारायणका पूजन करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण, चाँदी, मृत्तिका अथवा पलाश-पत्रके पात्रमें घृत-दान करना चाहिये। संवत्सर पूर्ण होनेपर जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर वस्त्राभूषण देकर त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगनी चाहिये। इसमें आचार्यका विधिपूर्वक पूजन करनेका भी विधान है। इस तरहसे जो अखण्ड-द्वादशीका व्रत करता है, उसके सात जन्मतक किये हुए व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं। अतः स्त्री-पुरुषोंको व्रतोंका वैकल्य दूर करनेके लिये अवश्य ही इस व्रतको सम्पादित करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! स्त्री अथवा पुरुष दोनोंको फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर जगत्पति भगवान्‌का पूजन-

भजन और उठते-बैठते नित्य हरिका स्मरण करते रहना चाहिये। द्वादशीके दिन प्रभातमें ही स्नान-पूजन तथा घृतसे हवनके बाद ब्राह्मणको दक्षिणा देनेका विधान है। तदनन्तर भगवान्‌से अपने अभीष्ट मनोरथोंकी संसिद्धिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तत्पश्चात् हविष्य-भोजन ग्रहण करना चाहिये। इस व्रतमें फाल्गुनसे ज्येष्ठतक प्रथम चार महीनोंमें रक्त पुष्प, गुग्गुल-धूप और हविष्यान्न-नैवेद्यसे भगवान्‌की पूजा-अर्चनाके बाद गोशृङ्खलित जल तथा हविष्यान्न ग्रहण करनेका विधान है। फिर आषाढ़से आश्विनतक चार महीनोंमें चमेलीके पुष्प, धूप और शाल्यन्न (साठी धान) आदिके नैवेद्योंद्वारा भगवान्‌की पूजा-स्तुति करनेके बाद कुशोदकका प्राशन तथा निवेदित नैवेद्य भक्षण करना चाहिये। कर्तिकसे माघ मासतक तीसरी पारणामें जपापुष्प (अड़हुल), उत्तम धूप और कसारके नैवेद्यसे नारायणके पूजनोपरान्त गोमूत्र-प्राशन तथा कसार-भक्षण करनेका विधान है। प्रतिमास ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनी चाहिये। वर्षके अन्तमें एक कर्ष (माशा) सुवर्णकी भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन कर, दो वस्त्र और दक्षिणासहित ब्राह्मणको निवेदित करना चाहिये। इसीके साथ बारह ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर प्रत्येकको अन्न, जलका घट, छतरी, जूता, वस्त्र और दक्षिणा देनी चाहिये। इस द्वादशी-व्रतके करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। इसीसे इसका नाम मनोरथ-द्वादशी है। इन्द्रको त्रैलोक्यका राज्य भी इसी व्रतके परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ है। शुक्राचार्यने धन तथा महर्षि धौम्यने निर्विघ्न विद्या प्राप्त की है। अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंने तथा स्त्रियोंने भी इस व्रतके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त किया है। जो कोई भी जिस-किसी अभिलाषासे इस व्रतको करता है, वह अवश्य पूर्ण होती है। जो पुरुष भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन नहीं करते, गौ, ब्राह्मण आदिकी सेवा नहीं करते और मनोरथ-द्वादशीका

ब्रत नहीं रखते, वे किसी भी प्रकारसे अपना अभीष्ट-फल प्राप्त नहीं कर सकते।

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! थोड़े-से परिश्रमसे अथवा स्वल्पदानसे सभी पाप कट जायें ऐसा कोई उपाय आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! तिल-द्वादशी नामक एक ब्रत है, जो परम पवित्र है और सभी पापोंका नाश करनेवाला है। माघ मासके कृष्ण पक्षकी द्वादशीको जब मूल अथवा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र प्राप्त हो, तब उसके एक दिन पूर्व अर्थात् एकादशीको उपवास रखकर ब्रत ग्रहण करना चाहिये। द्वादशीको भगवान् श्रीकृष्णका पूजन कर ब्राह्मणको कृष्ण तिलोंका दान करना चाहिये। ब्रतीको भी

स्नानकर काले तिलका ही भोजन करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक कृष्ण द्वादशीमें ब्रतकर अन्तमें तिलोंसे पूर्ण कृष्णवर्णके कुम्भ, पकवान, छत्र, जूता, वस्त्र और दक्षिणा बारह ब्राह्मणोंको देना चाहिये। उन तिलोंके बोनेसे जितने तिल उत्पन्न होते हैं, उतने वर्षपर्यन्त इस ब्रतको करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है और किसी जन्ममें अंध, बधिर, कुष्ठि आदि नहीं होता, सदा नीरोग रहता है। इस तिल-दानसे बड़े-बड़े पाप कट जाते हैं। इस ब्रतमें न बहुत परिश्रम है और न ही बहुत अधिक व्यय। इसमें तिलोंसे ही स्नान, तिल-दान और तिल ही भोजन करनेपर अवश्य सद्गति मिलती है*। (अध्याय ७९—८१)

सुकृत-द्वादशीके प्रसंगमें सीरभद्र वैश्यकी कथा

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! ऐसा कौन-सा कर्म है, जिसके करनेसे सभी कष्ट दूर हो जायें तथा कोई संताप भी न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जो पूछा है, उस विषयमें एक आख्यानका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें विदिशा (भेलसा) नगरीमें सीरभद्र नामक एक वैश्य रहता था। वह पुत्र-पौत्र, कन्या, स्त्री आदिके भरण-पोषणमें ही लगा रहता था, फलस्वरूप स्वप्नमें भी उसे परलोककी चिन्ता नहीं होती थी। वह न्याय-अन्याय हर तरहसे धनका ही उपार्जन करता, कभी दान, हवन, देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता था। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका लोप उसने स्वयं कर लिया था। कुछ कालके अनन्तर वह वैश्य मृत्युको प्राप्त हुआ और विन्ध्यारण्यमें यातना-देहमें प्रेतरूपसे रहने लगा। एक दिन ग्रीष्म-ऋतुमें विपीत नामके वेदवेत्ता ब्राह्मणने उस प्रेतको देखा कि वह सूर्य-किरणोंसे संतप्त नदीके

बालूमें लोट रहा है, उसके सब अङ्गोंमें छाले पड़ गये हैं। प्याससे कण्ठ सूख रहा है और जिह्वा लटक गयी है। वह लम्बी-लम्बी साँस ले रहा है। उसकी यह दशा देखकर ब्राह्मणको बड़ी दया आयी और उसने उसका वृत्तान्त पूछा।

प्रेत कहने लगा—ब्रह्मन्! मैं पूर्व-जन्ममें परलोकके लिये किसी प्रकारके कर्म न करनेके कारण ही दग्ध हो रहा हूँ। मैं निरन्तर धन, घर, खेत, पुत्र, स्त्री आदिकी चिन्तामें ही आसक्त रहता था और मैंने अपने वास्तविक हितका चिन्तन कभी नहीं किया। इसीसे यह कष्ट भोग रहा हूँ। ‘यह काम कर लिया और यह काम करना है’—इसी उधेड़बुनमें सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करनेका ही यह फल है। लोभवश मैं शीत-उष्ण सभी प्रकारके कष्टोंको झेल रहा हूँ। मैंने धर्मके लिये किंचित् भी कष्ट नहीं झेला, उससे अब पछताता हूँ। देवता, पितर, अतिथि आदिका मैंने कभी पूजन नहीं किया और यही

* यह कथा ब्रह्मपुराणमें भी आयी है।

कारण है कि अब मुझे अन्न-जलतक नहीं मिल रहा है। अन्यायके द्वारा एकत्र किये गये धनका उपभोग दूसरे लोग कर रहे होंगे, यह सोच-सोचकर मुझे चैन नहीं मिलता। मैंने कभी ब्राह्मणोंका पूजन नहीं किया और न ही कभी देवार्चन ही किया। फलस्वरूप मेरी ऐसी दशा हुई है। चूँकि मैंने पापोंका ही संचय किया, अतः मैं उसके फलको अकेले ही भोग रहा हूँ। मैं अपने किये दुष्कर्मोंका ही फल भोग रहा हूँ। अतः हे मुनीश्वर! यदि ऐसा कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें, जिससे इस दुर्गतिसे मेरा उद्धार हो।

विपीतमुनि बोले—सीरभद्र! दस जन्म पहले तुमने भगवान् अच्युतकी आराधनाकी इच्छासे सुकृत-द्वादशीका उपवास किया था, उसके प्रभावसे इस पापके बहुत बड़े भागका क्षय हो गया है, अब तुम्हें अल्पकालमें ही उत्तम गति प्राप्त होगी। यह द्वादशी-व्रत पापोंका क्षय तथा पुण्यका संचार करनेवाला है, इसी कारण इसका नाम सुकृत-द्वादशी है। इस तरह सीरभद्रको आश्वस्त कर विपीतमुनि अपने आश्रमको छले गये और सीरभद्र भी द्वादशीव्रतके फलस्वरूप थोड़े कालके अनन्तर मोक्षको प्राप्त हो गया।

इतना कहकर श्रीकृष्णभगवान् बोले— हे महाराज! यह उपवासका प्रभाव है कि इतना पाप थोड़े ही कालमें क्षय हुआ, इसलिये मनुष्यको पुण्यके लिये सदा यत्करना चाहिये और अपने कल्याणके लिये उपवासादि करते रहना चाहिये।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—श्रीकृष्णचन्द्र! पापोंसे अति दारुण नरककी यातना भोगनी पड़ती है।

ऐसा कौन-सा व्रत है, जिससे सब पाप नष्ट हो जायें और मोक्ष प्राप्त हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी एकादशीको उपवास कर काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ आदिका त्यागकर संसारकी असारताकी भावना करता हुआ 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये और इसी भाँति द्वादशीको भी भगवान् मधुसूदनकी पूजा आदि करनी चाहिये। प्रथम चार (फाल्गुनसे ज्येष्ठ) मासके पारणमें चाँदी, ताँबे अथवा मृत्तिकाके पात्रोंमें यव भरकर ब्राह्मणोंको देना चाहिये। आषाढ़ादि द्वितीय पारणमें घृतपात्र देना चाहिये और कार्तिकादि चार मासमें तिलपात्र ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये। भगवान्की पूजाके अनन्तर उनके अनुग्रहकी प्राप्तिके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तदनन्तर भोजन करना चाहिये। वर्ष पूरा होनेपर सुवर्णकी विष्णु-प्रतिमा बनवाकर उसे पूजित कर वस्त्र, सुवर्ण, दक्षिणासहित सवत्साधेनु ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस सुकृत-द्वादशीका व्रत करता है, वह कभी नरकको नहीं प्राप्त होता। नारायणके भक्तको कभी नरककी बाधा नहीं होती। विष्णुका नाम उच्चारण करते ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, फिर नरकके भयका तो प्रश्न ही नहीं उठता। इसी प्रकार वासुदेव नारायणके नामोंका उच्चारण करनेवाला कभी भी यमका मुख नहीं देखता। अतः भगवान्के पवित्र नामोंका उच्चारण करना चाहिये। (अध्याय ८२)

धरणी-व्रत (अर्चावतार-व्रत)

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! वेदोंमें यह कहा गया है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने, बड़े-बड़े दान देने और कठिन परिश्रम करनेसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, किंतु कलियुगके

प्राणी, जो न दान दे सकते हैं और न ही यज्ञ करनेमें समर्थ हैं, उनकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है, यदि कोई उपाय हो तो आप उसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैं आपको एक रहस्यपूर्ण बात बतलाता हूँ। प्रलयके समय जब धरणी (पृथ्वी) जलमें निमग्न होकर रसातल चली गयी, तब उस समय धरणीदेवीने अपने उद्धारके लिये व्रत किया था। व्रतके प्रभावसे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने वाराहरूप धारणकर उसे पुनः अपने स्थानपर लाकर स्थापित कर दिया। उस व्रतका विधान इस प्रकार है—

ब्रतीको मार्गशीर्ष मासके कृष्ण पक्षकी दशमीको प्रातः काल नित्य-स्नानादि क्रियाओंको सम्पन्न कर देवार्चन एवं हवनादि कर्म विधिपूर्वक करने चाहिये। उस दिन पवित्र, अत्यल्प हविष्यान्न-भोजन करना चाहिये। अनन्तर पुनः पाँच पग चलकर हाथ-पाँव धोकर पवित्र हो क्षीर-वृक्षके आठ अंगुलके दातूनसे दन्तधावन कर आचमन करना चाहिये। जलसे अङ्गोंका स्पर्शकर भगवान् जनार्दनका ध्यान करते हुए वह दिन व्यतीत करना चाहिये। एकादशीको निराहार रहकर भगवान्‌के नामोंका जप करना चाहिये। द्वादशीको प्रातः नदी आदिके पवित्र जलमें स्नान करना चाहिये। स्नानसे पूर्व नदी, तालाब अथवा शुद्ध एवं पवित्र स्थानकी मृत्तिका ग्रहण करनी चाहिये, मृत्तिका ग्रहण करते समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा।
तेन सत्त्वेन मां पाहि पापान्मोचय सुब्रते॥

(उत्तरपर्व ८३। १७)

‘देवि सुब्रते! जिस शक्तिके द्वारा आप समस्त स्थावर-जंगमात्मक प्राणियोंका धारण-पोषण करती हैं, उसी शक्तिके द्वारा मुझे पापोंसे मुक्त कीजिये तथा सदा मेरा पालन कीजिये।’

पुनः उस मिट्टीको सूर्यको दिखाकर, शरीरमें लगाकर स्नान करे। तदनन्तर आचमनकर देवमन्दिरमें जाकर भगवान् नारायणके अङ्गोंकी पूजा करे। नारायणके आगे चार जलपूर्ण घटोंमें चार समुद्रोंकी

परिकल्पनाकर स्थापना करे। उन घटोंपर तिलपूर्ण पूर्णपात्र स्थापित करे। घटोंके मध्य एक पीठके ऊपर जलपात्रमें सुवर्ण, चाँदी अथवा काष्ठकी मत्स्यभगवान्‌की प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। यथाविधि उपचारोंसे उनका पूजनकर प्रार्थना करे। रात्रिमें वहीं जागरण करे। प्रभातमें चारों घटोंको ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी तथा अथर्ववेदी चार ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें निवेदित करे। जलपात्रमें स्थापित भगवान् मत्स्यकी प्रतिमा ब्राह्मण-दम्पतिको प्रदान करे। ब्राह्मणोंको पायसान्नसे संतृप्त कर पश्चात् स्वयं भी भोजन करे। राजन्! इस विधिसे जो मार्गशीर्ष कृष्ण द्वादशीका व्रत करता है, उसे दीर्घ आयुकी प्राप्ति होती है। जन्मान्तरमें किये गये ब्रह्महत्या आदि महापातकोंसे उसकी मुक्ति हो जाती है। यदि निष्कामभावसे व्रत करता है तो उसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

इसी प्रकार स्नानादि कर पौष मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवास कर भगवान् जनार्दनकी कूर्मरूपमें पूजा करनी चाहिये। माघ मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् वराहकी प्रतिमाका पूजनकर ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् नरसिंहकी प्रतिमाका, चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको भगवान् वामनकी प्रतिमाका, वैशाख शुक्ल द्वादशीको परशुरामजीकी प्रतिमाका, ज्येष्ठ मासकी शुक्ल द्वादशीको भगवान् राम-लक्ष्मणकी प्रतिमाका, आषाढ़ शुक्ल द्वादशीको भगवान् वासुदेव (कृष्ण)-की प्रतिमाका, श्रावण मासकी शुक्ल द्वादशीको बुद्धभगवान्‌की तथा भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् कल्किकी प्रतिमाका यथाविधि अङ्ग-पूजन आदि कर घटोंकी स्थापना करके पूजित प्रतिमा आदि ब्राह्मणोंको निवेदित कर देनी चाहिये।

इस प्रकार दस मासोंमें भगवान्‌के दशावतारोंका

पूजनकर पूर्व-विधानसे आश्चिन शुक्ल द्वादशीको उपवासपूर्वक भगवान् पद्मनाभकी तथा कार्तिक द्वादशीको वासुदेवकी पूजा करनी चाहिये। अन्तमें प्रतिमा तथा घटोंको ब्राह्मणको निवेदित कर दे। उन्हें भोजन कराकर, दक्षिणा प्रदान करे तथा दीनों, अनाथोंको भी भोजन-वस्त्र आदिसे संतुष्ट करना चाहिये और फिर स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार द्वादश मासोंमें जो इस व्रतको करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-सायुज्यको प्राप्त करता है। धरणीदेवीने इस व्रतको किया था। इसीलिये यह धरणी-व्रतके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्राचीन कालमें दक्षप्रजापतिने इस व्रतका

अनुष्ठानकर प्रजाओंका अधिपतित्व प्राप्त किया था। राजा युवनाश्वने इस व्रतके अनुष्ठानसे मान्धाता नामक श्रेष्ठ पुत्रको प्राप्तकर अन्तमें शाश्वत ब्रह्मपद प्राप्त किया था। इसी प्रकार है हयाधिपति कृतवीर्यने इस व्रतके प्रभावसे महान् पराक्रमी चक्रवर्ती राजा सहस्रार्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। शकुन्तलाने भी इस व्रतके प्रभावसे राजर्षि दुष्यन्तको पतिरूपमें तथा श्रेष्ठ भरतको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। इसी प्रकार अन्य कई श्रेष्ठ चक्रवर्ती राजाओं तथा श्रेष्ठ पुरुषोंने इस व्रतके प्रभावसे उत्तम फल प्राप्त किया था। जो भी इसे करता है, भगवान् नारायण उसका उद्धार कर देते हैं^१। (अध्याय ८३)

विशोकद्वादशी-व्रत और गुड-धेनु^२ आदि दस धेनुओंके दानकी विधि तथा उसकी महिमा

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! आपने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, वह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते तथापि आप-जैसे भक्तिमान्‌के प्रति मैं अवश्य उसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् व्रतीको आश्चिन मासमें दशमी तिथिके दिन अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातून करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर

भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और ‘दूसरे दिन भोजन करूँगा’—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वोषधि और पञ्चगव्य मिले जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोंद्वारा पूजा करे। पूजन करनेके पश्चात् एक मण्डल बनाकर मिट्टीसे वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी और सुन्दर हो। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर ‘देव्यै नमः’, ‘शान्त्यै नमः’, ‘लक्ष्म्यै नमः’, ‘श्रियै नमः’, ‘पुष्ट्यै नमः’, ‘तुष्ट्यै नमः’, ‘दृष्ट्यै नमः’, ‘हृष्ट्यै नमः’ के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—‘विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका

१—वाराहपुराणके ३९वें अध्यायसे ५०वें तक ठीक इसी प्रकार इन द्वादश द्वादशी-व्रतोंकी कथा एवं व्रत-विधिका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

२—यह विषय मत्स्यपुराण ८२, पद्मपु १। २१, वाराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड पृ० १४१ तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत हैं। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

मुझे संतति दें और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलोंसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर ब्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक-पान करे और सारी रात नृत्य-गीत आदिका आयोजन कराये। तीन पहर रात व्यतीत होनेपर ब्रती मनुष्य स्वयं नींद त्यागकर जग जाय और अपनी शक्तिके अनुसार शश्यापर सोते हुए तीन या एक द्विज-दम्पत्तिके पास जाकर वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे 'जलशायिने नमोऽस्तु' जलशायी भगवान्को नमस्कार है—यों कहकर उनकी पूजा करे। इस प्रकार रातमें गीत-वाद्य आदि कराकर जागरण करे तथा प्रातःकाल स्नान कर पुनः द्विज-दम्पतिका पूजन करे और कृपणता छोड़कर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उन्हें भोजन कराये। फिर स्वयं भोजन करके पुराणोंकी कथाएँ सुनते हुए वह दिन व्यतीत करे। प्रत्येक मासमें इसी विधिसे सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये।

इस प्रकार ब्रतकी समाप्तिके अवसरपर गद्दा, चादर, तकिया आदि उपकरणोंसे युक्त एक सुन्दर शश्या गुड-धेनुके साथ दान करके इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवेश! जिस प्रकार लक्ष्मी आपका परित्याग करके अन्यत्र नहीं जातीं, उसी प्रकार सौन्दर्य, नीरोगता और निःशोकता सदा मुझे निरवच्छन्नरूपसे प्राप्त हों—मेरा परित्याग न करें और भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो।' वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले ब्रतीको समन्त्र गुड-धेनुसहित शश्या और लक्ष्मीसहित सूप-दान करना चाहिये। इस ब्रतमें कमल, करवीर (कनेर), बाण (नीलकुसुम या अगस्त्य-वृक्षका पुष्प), ताजा (बिना कुम्हलाया हुआ) कुंकुम, केसर, सिंदुवार, मल्लिका, गन्धपाटला, कदम्ब, कुञ्जक और

जाती—ये पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—जगत्पते! अब आप मुझे (विशोकद्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये कि गुड-धेनुका रूप कैसा होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ। गुड-धेनुका दान समस्त पापोंका विनाशक है। गुड-धेनुका दान करनेके दिन गोबरसे भूमिको लीप-पोतकर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। तदनन्तर एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्वमुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करे। चार भार^२ गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये। अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)-का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर घीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गन्तेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गल-कम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनों स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सर्सिंगके आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप, आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे—

१-विशोका दुःखनाशय विशोका वरदास्तु मे। विशोका चास्तु संतत्यै विशोका सर्वसिद्धये ॥ (उत्तरपर्व ८४। १६)

२- दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं।

‘जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूप हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी, कुबेरकी तथा लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा, यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा तथा समस्त पापोंको हरनेवाली धेनुरूपा हैं, वे मुझे ऐश्वर्य प्रदान करें।’ इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा गया है।

नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी गयी हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी मधु-धेनु, पाँचवीं जल-धेनु, छठी क्षीर-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-

धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये, क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फलको प्रदान करनेवाली हैं। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चैंकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है। उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये। यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायु प्राप्तकर अन्तमें श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोक प्राप्त करता है।

(अध्याय ८४)

विभूतिद्वादशी*-व्रतमें राजा पुष्पवाहनकी कथा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है। बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिक, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ़ मासमें शुक्ल पक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त हो इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—‘प्रभो! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव! मेरा यह नियम

निर्विश्वापूर्वक पूर्ण हो जाय और फलदायक हो।’ फिर रातमें ‘उँ नमो नारायणाय’ मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे।

एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान् के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमाका स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करना चाहिये। उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये। राजन्! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको

* इस व्रतका वर्णन मत्स्यपु० ९९-१००, पद्मपु० सृष्टि खं २०। १-४२, विष्णुधर्मो, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है। पाद्याय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शश्या-दान करना चाहिये । ब्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ भूमिका दान करना चाहिये । साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रक्षसमूह और धनराशियोंद्वारा संतुष्ट करना चाहिये । स्वल्प धनवाला ब्रती अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान करे तथा जो ब्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे तीन वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस ब्रतका पालन करना चाहिये । जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है । उसे एक लाख जन्मोंतक न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है । वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है । राजन् ! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य-क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है ।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा— महाराज ! बहुत पहले रथन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था । उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (-रूप विमान) प्रदान किया था, जिससे वह इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था । उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकमें तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था, कल्पके आदिमें

पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीपके नामसे कहा जाने लगा । चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे । तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें कोई भी स्थान अगम्य न था । नरेन्द्र ! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था । वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी । वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वतीजी परम प्रिय हैं । उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे । अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारम्बार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मय-विमुग्ध हो जाता था । एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि* राजाके यहाँ पधारे । उन्हें आया देखकर राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया—

राजा पुष्पवाहनने पूछा— मुनीन्द्र ! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है । मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायें तो भी वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये । वह विमान तारागणों, लोकपालों तथा देवताओंके लिये भी अलक्षित-सा रहता है । प्रचेतः ! मैंने, मेरी पुत्रीने अथवा मेरी भार्याने पूर्वजन्मोंमें कौन-सा ऐसा कर्म किया है, जिसका प्रभाव आज दिखलायी पड़ रहा है, इसे आप बतलायें ।

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक

* वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड १३ । १७, १६ । १०, ११ । ११ तथा अध्यात्मरामायण ७ । ७ । ३१, बालरामायण, उत्तररामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है ।

एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—‘राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्ग संधियुक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धयुक्त थी और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और तुम बड़े कुरुप थे। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और न भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहिन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पली ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कुछ भी जंगली (कन्द-मूल) फल आदि कोई खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मणिडत था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिशा* नामक नगर (विदिशा नगरी) में चले गये। वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीदार न मिला। उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त होकर पलीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पलीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघ मासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय

कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शश्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता। नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पलीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चाके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंने शश्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया।

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—‘भोजन कीजिये’, किंतु तुम दोनोंने उसका भी परित्याग कर दिया और कहा—‘वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढ़ब्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं, पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हमें विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।’ उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ और तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया था। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शश्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादिसहित बारह गौएँ प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दीन, अंधे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें बिदा किया।

राजेन्द्र! वह सपलीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो

* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघमका ‘भेलसा टौप्स’ ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रतिके* सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो।

उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी। श्रीकृष्णने कहा—महाराज! ऐसा कहकर प्रचेतामुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। राजन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड-व्रतका पालन करना आवश्यक है। जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमल-पुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है, वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ८५)

मदनद्वादशी-व्रतमें मरुदूषणोंका आख्यान

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! दिति (दैत्योंकी जननी)–ने जिस व्रतके करनेसे उनचास मरुदूषणोंको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, अब मैं आपसे उस मदनद्वादशी-व्रतके विषयमें सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिसे जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आप मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्रहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और

गन्तेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करे। उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वामभागमें शक्करसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य तथा भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करे। प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस प्रकार उच्चारण करे—‘जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर

* हरिवंश एवं अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये दो कामदेवकी पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यही है।

आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।'

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन आमलक-फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनु-सहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्णनिर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ ब्राह्मणको समर्पित करे। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये—‘आप प्रसन्न हों।’ तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ ब्रतीको कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए गोदुआधसे बनी हुई हवि और श्वेत तिलोंसे हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना तथा पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये। जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है।

दितिके इस ब्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न तरुण बना दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। दितिने कहा—‘पतिदेव! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हो।’ यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे कहा ‘ऐसा ही होगा।’

कश्यपने पुनः उससे कहा—‘वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और अपने गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि! गर्भिणी स्त्रीको संध्या-कालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री—मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे और शरीरको तोड़े-मरोड़े नहीं। वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर रहे, न उट्टिग्रचित्त रहे, न कभी भीगे चरणोंसे शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे। बुरी स्त्रियोंसे बातचीत न करे, कपड़ेसे हवा न ले। मृतवत्सा स्त्रीके साथ न बैठे, दूसरेके घरमें न जाय, जल्दी-जल्दी न चले, महानदियोंको पार न करे। भयंकर और बीभत्स दृश्य न देखे। अजीर्ण भोजन न करे। कठिन व्यायामादि न करे। ओषधियोंद्वारा गर्भकी रक्षा करती रहे, हृदयमें मात्सर्यभाव न रखे। जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है। प्रिये! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके अपने गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।’ दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं अन्तर्धान हो गये।

तब दिति नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी। कालान्तरमें दितिको उनचास पुत्र (मरुदण) प्राप्त हुए।

राजन्! इस प्रकारसे जो भी नारी इस मदनद्वादशी-ब्रतका अनुष्ठान करेगी, वह पुत्र प्राप्त कर पतिके सुखको प्राप्त करेगी। (अध्याय ८६)

अबाधक-ब्रत एवं दौर्भाग्य-दौर्गन्ध्यनाशक-ब्रतका माहात्म्य

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जनशून्य घोर वनमें, समुद्रतरणमें, संग्राममें, चोर आदिके भयमें व्याकुल मनुष्य किस देवताका स्मरण करे, जिससे उस संकटके समय उसकी रक्षा हो सके, यह आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सर्वमङ्गला भगवती श्रीदुर्गादेवीका स्मरण करनेपर पुरुष कभी भी दुःख और भयको प्राप्त नहीं होता। भारत! जब मैं और बलदेवजी अपने गुरु संदीपनिमुनिके यहाँ सब विद्या पढ़ चुके तो उस समय हमने गुरुदक्षिणाके लिये गुरुजीसे प्रार्थना की। तब गुरुजीने हमारा दिव्य प्रभाव जानकर यही कहा—‘प्रभो! मेरा पुत्र प्रभासक्षेत्रमें गया था, वहाँ उसे समुद्रमें किसी प्राणीने मार दिया, उसी पुत्रको गुरुदक्षिणाके रूपमें मुझे प्राप्त कराओ।’ तब हम यमलोकमें गये और वहाँसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुजीके समीप आये तथा गुरुदक्षिणाके रूपमें उनका पुत्र उन्हें समर्पित कर दिया। तदनन्तर गुरुको प्रणामकर जब हम चलने लगे, तब गुरुजीने कहा—‘पुत्रो! इस स्थानमें तुम अपने चरणोंका चिह्न बना दो’, हमने गुरुकी आज्ञाके अनुसार वैसा ही किया, फिर हम वापस घर आ गये। उसी दिनसे बलरामजीके दक्षिण पादका, मध्यमें सर्वमङ्गलाका और मेरे वाम चरणचिह्नका पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे अथवा अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये सभी वहाँ पूजन

करते हैं। प्रत्येक मासको शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एकभुक्त, नक्तब्रत अथवा उपवास रहकर मृतिका या सुवर्णकी इनकी प्रतिमा बना करके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, मधु आदिसे जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गमें निवास करता है।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—यदुशार्दूल! ऐसा कौन ब्रत है, जिसके आचरणसे शरीरका दुर्गन्ध नष्ट हो जाय और दौर्भाग्य भी दूर हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इसी प्रश्नको रानी विष्णुभक्तिने जातूकर्ण्यमुनिसे पूछा था, तब उन्होंने उनसे कहा—‘देवि! ज्येष्ठ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें पवित्र जलाशयमें स्नान करे और शुद्ध स्थानमें उत्पन्न श्वेत आक, रक्त करवीर तथा निम्ब-वृक्षकी पूजा करे। ये तीनों वृक्ष भगवान् सूर्यको अत्यन्त प्रिय हैं। प्रातःकाल सूर्योदय हो जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शनकर उनका अपने हृदयमें ध्यान करे। अनन्तर पुष्प, नैवेद्य, धूप आदि उपचारोंसे उन वृक्षोंकी पूजा करे और पूजनके अनन्तर उन्हें नमस्कार करे।

राजन्! इस विधिसे जो स्त्री-पुरुष इस ब्रतको करते हैं, उनके शरीरकी दुर्गन्धि तथा उनका दौर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं और वे सौभाग्यशाली हो जाते हैं।

(अध्याय ८७-८८)

धर्मराजका समाराधन-व्रत*

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! ऐसा कौन-सा व्रत है, जिसके करनेसे यमराज प्रसन्न हो जायें और नरकका दर्शन न हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार जब मैं द्वारका-स्थित समुद्रमें स्नान करके बाहर निकला, तब देखा कि मुद्गलमुनि चले आ रहे हैं। उनका तेज सूर्यके समान था और उनके मुखके तपस्तेजसे दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं। तब मैंने उनका अर्घ्य, पाद्य आदिसे सत्कार कर आदरपूर्वक उनसे पूछा—‘महाराज! प्राणियोंके लिये अत्यन्त भयदायक नरक तथा यमदूतों आदिका जिससे दर्शन न हो ऐसा कोई व्रत आप मुझसे बतलायें।’ यह सुनकर मुद्गलमुनि भी कुछ विस्मित-से हुए। किंतु बादमें शान्त-मन होकर वे बोले—‘प्रभो! एक बार ऐसा हुआ कि मुझे अकस्मात् मूर्छा आ गयी और मैं पृथ्वीपर गिर पड़ा, उस स्थितिमें मैंने देखा कि हाथमें लाठी लिये कुछ लोग आगसे जलते हुए-से मेरे शरीरसे निकलकर बाहर खड़े हुए थे और मेरे हृदयसे एक अङ्गूठेके बराबर व्यक्तिको बलपूर्वक खींचकर तथा रस्सियोंसे बाँधकर यमपुरीकी ओर ले जा रहे हैं। फिर मैं तत्काल क्या देखता हूँ कि यमराजकी सभा लगी है और लाल-पीले नेत्रोंवाले यमराज सभामें विराजमान हैं तथा कफ, वात, पित्त, ज्वर, मांस, शोथ, फोड़े, फुंसी, भगंदर, अक्षिरोग, विषूचिका, गलग्रह आदि अनेकों प्रकारके रोग और मृत्यु उन्हें धेरे हुए हैं और वे सभी मूर्तिमान् होकर यमदेवकी उपासना कर रहे हैं। यमदूत भयंकर शस्त्र धारण किये हैं। कुछ राक्षस, दानव आदि भी वहाँ बैठे हैं। सिंह, व्याघ्र, बिच्छू, दंश, सियार, साँप, उल्लू, कीड़े-

मकोड़े आदि भयंकर जीव-जन्तु वहाँ उपस्थित हैं।’ यमराजने अपने किंकरोंसे पूछा—‘दूतो! तुमलोग यहाँ इन मुद्गलमुनिको क्यों ले आये? मैंने तो मुद्गल क्षत्रियको लानेके लिये कहा था, वह कौंडिन्यनगरका निवासी भीष्मकका पुत्र है, उसकी आयु समाप्त हो चुकी है, इन मुनिको तत्काल छोड़ दो और उसे ही ले आओ।’ यह सुनकर वे दूत कौंडिन्यनगर गये, किंतु वहाँ राजा मुद्गलमें मृत्युके कोई लक्षण न देखकर भ्रान्त होकर पुनः यमलोकमें वापस आये और उन्होंने सारा वृत्तान्त यमराजको बता दिया। इसपर यमराजने उनसे कहा—‘दूतो! जिन पुरुषोंने नरकार्ति-विनाशिनी त्रयोदशीका व्रत किया है, उन्हें यमकिंकर नहीं देख पाते, इसीलिये तुमलोगोंने राजा मुद्गलको पहचाना नहीं।’ पुनः यमदूतोंद्वारा व्रतके विधानको पूछे जानेपर यमराजने उनसे कहा—‘मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जब रविवार एवं मंगलवार न हो, तब उस दिन तेरह विद्वान् और पवित्र ब्राह्मणों तथा एक पुराणवाचकका वरण करके पूर्वाह्नकालमें उन ब्राह्मणोंको उत्तराभिमुख पवित्र आसनपर बैठाये। तिल-तैलसे उनका अश्यंग करके गन्धकाषाय तथा हलके गरम जलसे उन्हें पृथक्-पृथक् स्नान कराये और उनकी सेवा-शुश्रूषा करे। अनन्तर पूर्वाभिमुख बैठाकर उन्हें शाल्यन्त्र, मुद्गान्त्र, गुड़के अपूप तथा सुपक्त व्यञ्जन आदरपूर्वक खिलाये।

पुनः व्रती पवित्र होकर आचमन करे और उन ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। ताम्रपात्रमें प्रस्थमात्र (एक पसर या एक सेर) तिल-तण्डुल, दक्षिणा, छत्र, जलपूर्ण कलश आदि उन्हें अलग-अलग प्रदान कर विसर्जित करे।

* यह कथा स्कन्दपुराणके नामसे अनेक व्रत-निबन्धोंमें संग्रहीत है।

इसी प्रकार वर्षभरतक ब्रत करे। कोई मानव यदि आदरपूर्वक एक बार भी इस ब्रतको कर ले तो वह मेरे यमलोकका दर्शन नहीं करता। वह मेरी मायासे अदृष्ट रहता है, अन्तमें विमानद्वारा अर्कमण्डलमें प्रवेश कर वह विष्णुपुर और शिवपुरको प्राप्त करता है। यमदूतो! उस राजा मुद्रलने इस त्रयोदशी-ब्रतको पहले किया था, इसीलिये तुम सब उस क्षत्रिय-श्रेष्ठका दर्शन नहीं कर पाये।

श्रीकृष्ण! उसी क्षण मेरी मूर्छा दूर हो गयी और मैं स्वस्थ हो गया। भगवन्! मैं आपके

दर्शनकी इच्छासे यहाँ आया था, जैसा पहले वृत्तान्त हुआ, वह सब मैंने आपको बतलाया। भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! वे मुनि मुझसे इतना कहकर अपने स्थानको चले गये। कौन्तेय! आप भी इस ब्रतको करें। इससे आपको यमलोक नहीं जाना पड़ेगा। इसी प्रकार जो कोई स्त्री-पुरुष इस त्रयोदशी-ब्रतका श्रद्धापूर्वक आचरण करेंगे, वे सभी पापोंसे मुक्त होकर अपने पुण्य-कर्मके प्रभावसे स्वर्गमें पूजित होंगे और उन्हें कभी यमयातना नहीं सहनी पड़ेगी। (अध्याय ८९)

अनङ्ग-त्रयोदशी-ब्रत

युधिष्ठिरने पूछा—संसारसे उद्धार करनेवाले स्वामिन्! आप रूप एवं सौभाग्य प्रदान करनेवाला कोई ब्रत बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! शरीरको क्लेश देनेवाले बहुत-से ब्रतोंके करनेसे क्या लाभ? अकेले अनङ्ग-त्रयोदशी ही सब दोषोंका शमन एवं समस्त मङ्गलोंकी वृद्धि करनेवाली है। आप इसकी विधि सुनें।

पहले जब भगवान् शंकरने कामदेवको दग्ध कर दिया, तब वह बिना अङ्गके ही सबके शरीरमें निवास करने लगा। कामदेवने इस ब्रतको किया था, इसीसे इसका नाम अनङ्ग-त्रयोदशी पड़ा। इस ब्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको नदी, तड़ाग आदिमें स्नान कर, जितेन्द्रिय हो, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और कालोद्धूत फलोंसे भगवान् शंकरका ‘शशिशेखर’ नामसे पूजन करे तथा तिलसहित अक्षतोंसे हवन करे। रात्रिको मधु-प्राशन कर सो जाय। इससे ब्रती कामदेवके समान ही सुन्दर हो जाता है और दस अश्वमेध-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार पौष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीमें भगवान् शंकरका

‘योगेश्वर’ नामसे पूजन कर चन्दनका प्राशन करे तो शरीरमें चन्दनके समान गन्ध हो जाती है और ब्रती राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है। माघ मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको भगवान् शंकरका ‘महेश्वर’ नामसे पूजन कर मोतीका चूर्ण भक्षण करे तो उत्तम सौभाग्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार फाल्गुनमें ‘हरेश्वर’ नामसे पूजन कर कंकोलका प्राशन करनेसे अतुल सौन्दर्य प्राप्त होता है। चैत्रमें ‘सुरूपक’ नामसे पूजन करने और कर्पूर-प्राशन करनेसे ब्रती चन्द्रके तुल्य मनोहर हो जाता है एवं महान् सौभाग्य प्राप्त करता है। वैशाखमें ‘महारूप’ नामसे पूजन कर जातीफल (जायफल)-का प्राशन करे, इससे उत्तम कुलकी प्राप्ति होती है और उसके सब काम सफल हो जाते हैं तथा वह सहस्र गोदानका फल प्राप्त कर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। ज्येष्ठमें ‘प्रद्युम्न’ नामसे पूजन करे और लवंगका प्राशन करे, इससे उत्तम स्थान, श्रेष्ठ लक्ष्मी और सभी सुख-सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं तथा वह एक सौ आठ वाजपेय-यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। आषाढ़में ‘उमाभर्ता’ नामसे पूजन कर तिलोदकका प्राशन करे। इससे उत्तम रूप

प्राप्त होता है तथा वह सौ वर्षतक सुखी जीवन व्यतीत करता है। श्रावणमें 'उमापति' नामसे पूजन कर तिलोंका प्राशन करे, इससे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। भाद्रपद मासमें 'सद्योजात' नामसे पूजन कर अगस्तका प्राशन करे, इससे वह भूमिपर सबका गुरु बनता है और पुत्र-पौत्र, धन आदि प्राप्त कर बहुत दिन संसारमें सुख भोगकर अन्तमें विष्णुलोकमें पूजित होता है। आश्विन मासमें 'त्रिदशाधिपति' नामसे पूजन कर स्वर्णोदकका प्राशन करे तो व्रती उत्तम रूप, सौभाग्य, प्रगल्भता और करोड़ों निष्कदानका फल प्राप्त करता है। कार्तिकमें 'विश्वेश्वर' नामसे पूजन कर दमन (दौना) फलका प्राशन करे तो व्रती अपने बाहुबलसे समस्त संसारका स्वामी होता है और अन्तमें

शिवलोकमें निवास करता है।

इस प्रकार वर्षभर इस उत्तम व्रतका पालन कर पारणा करनी चाहिये। फिर कलश स्थापित कर उसके ऊपर ताम्रपात्र और उसके ऊपर शिवकी प्रतिमा स्थापित कर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर उसे शिवभक्त ब्राह्मणको प्रदान कर दे। साथ ही पयस्विनी सवत्सा गौ, छाता और यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। इस प्रकार जो इस अनङ्ग-त्रयोदशी-व्रतको करता है और व्रत-पारणाके समय महान् उत्सव करता है वह निष्कण्टक राज्य, आयुष्य, बल, यश तथा सौभाग्य प्राप्त करता है और अन्तमें शिवलोकमें निवास करता है।

(अध्याय ९०)

पाली-व्रत^१ एवं रम्भा (कदली)-व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! श्रेष्ठ स्त्रियाँ जलपूर्ण तडागों और सरोवरोंमें किस निमित्त स्नान-दान आदि कर्म करती हैं? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको बावली, कुएँ पुष्करिणी तथा बड़े-बड़े जलाशयों आदिके पास पवित्र होकर भगवान् वरुणदेवको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि तडागके तटपर जाकर फल, पुष्प, वस्त्र, दीप, चन्दन, महावर, सप्तधान्य, बिना अग्निके स्पर्शसे पका हुआ अन्न, तिल, चावल, खजूर, नारिकेल, बिजौरा नीबू, नारंगी, अंगूर, दाढ़िम, सुपारी आदि उपचारोंसे वारुणीसहित वरुणदेवकी एवं जलाशयकी विधिपूर्वक पूजा करे और उन्हें अर्घ्य प्रदान कर इस प्रकार

उनकी प्रार्थना करे—

वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसाम्पते।
अपाम्पते नमस्तेऽस्तु रसानाम्पतये नमः॥
मा क्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं विरस्यं मा मुखेऽस्तु मे।
वरुणो वारुणीभर्ता वरदोऽस्तु सदा मम॥

(उत्तरपर्व ९१।७-८)

'जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव! आपको नमस्कार है। सभी जल एवं जलसे उत्पन्न रस-द्रव्योंके स्वामी वरुणदेव! आपको नमस्कार है। मेरे शरीरमें पसीना, दुर्गन्ध या विरसता^२ आदि मेरे मुखमें न हों। वारुणीदेवीके स्वामी वरुणदेव! आप मेरे लिये सदा प्रसन्न एवं वरदायक बने रहें।'

व्रतीको चाहिये कि इस दिन बिना अग्निके पके हुए भोजन अर्थात् फल आदिका भोजन करे।

१-'पाली' शब्द जटिल है, यह कोशोंमें प्रायः नहीं मिलता। इसका अर्थ कूप, तडाग आदि जलाशयोंकी रक्षाके लिये बने घेरेसे है। उसीपर बैठकर स्त्रियाँ इस व्रतको सम्पन्न करती हैं। वरुणदेव चूँकि सभी जलोंमें रहते हैं, अतः इसे वर्णी बैठकर करना चाहिये।

२-ज्वर आदिसे मुखका स्वाद बिगड़ जाता है, उसे विरसता कहते हैं।

इस विधिसे जो पाली-ब्रतको करता है, वह तत्क्षण सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। आयु, यश और सौभाग्य प्राप्त करता है तथा समुद्रके जलकी भाँति उसके धनका कभी अन्त नहीं होता।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन्! अब मैं ब्रह्माजीकी सभामें देवर्षियोंके द्वारा पूछे जानेपर देवलमुनिप्रोक्त रम्भा-ब्रतका वर्णन कर रहा हूँ। यह भी भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशीको ही होता है। सभी देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंने भी इस ब्रतका अनुष्ठान कर कदली-वृक्षको सादर अर्घ्य प्रदान किया था। ब्रतीको चाहिये कि इस चतुर्दशीको नाना प्रकारके फल, अंकुरित अन्नों, ससधान्य, दीप, चन्दन, दही, दूर्वा, अक्षत, वस्त्र, पक्वान्न, जायफल, इलायची तथा लवंग आदि उपचारोंसे कदली-वृक्षका पूजनकर उसे निम्रलिखित मन्त्रसे अर्घ्य प्रदान करे—

चित्या त्वं कन्दलदलैः कदली कामदायिनि ।
शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

(उत्तरपर्व ९२।७)

‘कदली देवि! आप अपने पत्तोंसे वायुके व्याजसे ज्ञान एवं चेतनाका संचार करती हुई सभी कामनाओंको देती हैं। आप मेरे शरीरमें रूप, लावण्य, आरोग्य प्रदान करनेकी कृपा करें। आपको नमस्कार है*।’

इसके अनन्तर स्वयं पके हुए फल आदिका भोजन ग्रहण करे। जो भी पुरुष अथवा स्त्री भक्तिसे इस ब्रतको करती है, उसके वंशमें दुर्भगा, दरिद्रा, वन्ध्या, पापिनी, व्यभिचारिणी, कुलटा, पुनर्भू, दुष्ट और पतिकी विरोधिनी कोई कन्या नहीं उत्पन्न होती। इस ब्रतको करनेपर नारी सौभाग्य, पुत्र-पौत्र, धन, आयुष्य तथा कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त अपने पतिके साथ आनन्दपूर्वक रहती है। इस रम्भा-ब्रतको गायत्रीने स्वर्गमें किया था। इसी प्रकार गौरीने कैलासमें, इन्द्राणीने नन्दनवनमें, लक्ष्मीने श्वेतद्वीपमें, राज्ञीने रविमण्डलमें, अरुन्धतीने दारुवनमें, स्वाहाने मेरुपर्वतपर, सीतादेवीने अयोध्यामें, वेदवतीने हिमाचलपर और भानुमतीने नागपुरमें इस ब्रतको किया था। (अध्याय ९१-९२)

आग्रेयी शिवचतुर्दशी-ब्रतके प्रसंगमें महर्षि अङ्गिराका आख्यान

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! प्राचीन कालमें जब अग्निदेव अदृश्य हो गये, उस समय अग्निका कार्य किसने किया और कैसे अग्निने पुनः अपना स्वरूप प्राप्त किया? इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार उत्थयमुनि और अङ्गिरामुनिका विद्यामें और तपमें परस्पर श्रेष्ठताके विषयमें बहुत विवाद हुआ। इसका निश्चय करनेके लिये दोनों ब्रह्मलोक गये

और उन्होंने ब्रह्माजीको सारा वृत्तान्त बतलाया। ब्रह्माजीने उनसे कहा कि ‘तुम दोनों जाकर सभी देवताओं और लोकपालोंको यहाँ बुला लाओ, तब सभीके समक्ष इसका निर्णय किया जायगा।’ ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर दोनों जाकर सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षस, दैत्य, दानव आदिको बुला लाये। किंतु भगवान् सूर्य नहीं आये। ब्रह्माजीके पुनः कहनेपर उत्थयमुनि

* कदलीके व्याजसे सर्वशक्तिमवी दुर्गाकी ‘चित्तरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै’ को ही स्मरण करते हुए प्रार्थना की गयी है।

सूर्यनारायणके समीप जाकर बोले—‘भगवन्! आप शीघ्र ही हमारे साथ ब्रह्मलोक चलें।’ भगवान् सूर्यने कहा—‘मुने! हमारे चले जानेपर जगत्‌में अन्धकार छा जायगा, इसलिये हमारा चलना किस प्रकार हो सकता है, हम नहीं चल सकेंगे।’ यह सुनकर उत्थ्यमुनि वहाँसे चले आये और ब्रह्माजीको सब वृत्तान्त सुना दिया। तब ब्रह्माजीने अङ्गिरामुनिसे सूर्यभगवान्‌को बुलानेके लिये कहा। अङ्गिरामुनि ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सूर्यनारायणके समीप गये और उनसे ब्रह्मलोक चलनेको कहा। सूर्यनारायणने वही उत्तर इनको भी दिया। तब अङ्गिराने कहा—‘प्रभो! आप ब्रह्मलोक जायँ, मैं आपके स्थानपर यहाँ रहकर प्रकाश करूँगा।’ यह सुनकर सूर्यनारायण तो ब्रह्माजीके पास चले गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेजसे तपने लगे। इधर भगवान् सूर्यने ब्रह्माजीसे पूछा—‘ब्रह्मन्! आपने किस निमित्तसे मुझे यहाँ बुलाया है?’ ब्रह्माजीने कहा—‘देव! आप शीघ्र ही अपने स्थानपर जायँ, नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्मण्डको दग्ध कर डालेंगे। देखिये उनके तापसे सभी लोग दग्ध हो रहे हैं। जबतक वे सब कुछ भस्म न कर डालें उससे पूर्व ही आप प्रतिष्ठित हो जायँ।’ यह सुनते ही सूर्यभगवान् पुनः अपने स्थानपर लौट आये और उन्होंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति कर उन्हें बिदा किया। अङ्गिरा पुनः देवताओंके समीप आये। देवताओंने अङ्गिरामुनिकी स्तुति की और कहा—‘भगवन्! जबतक हम अग्निको ढूँढ़ें तबतक आप अग्निके सभी कर्म कीजिये।’ देवताओंका ऐसा वचन सुनकर महर्षि अङ्गिरा अग्निरूपमें देवकार्यादिको सम्पन्न करने लगे। जब अग्निदेव आये तो उन्होंने देखा कि अङ्गिरामुनि अग्नि बनकर स्थित हैं। इसपर वे बोले—‘मुने! आप मेरा स्थान छोड़ दें। मैं आपकी शुभा नामकी

स्त्रीसे ज्येष्ठ एवं प्रिय पुत्रके रूपमें उत्पन्न होऊँगा और तब मेरा नाम होगा बृहस्पति। आपके और भी बहुत-से पुत्र-पौत्र होंगे।’ यह वर पाकर प्रसन्न हो महर्षि अङ्गिराने अग्निका स्थान छोड़ दिया।

राजन्! अग्निदेवको चतुर्दशी तिथिको ही अपना स्थान प्राप्त हुआ था, इसलिये यह तिथि अग्निको अति प्रिय है और आग्नेयी चतुर्दशी तथा रौद्री चतुर्दशीके नामसे प्रसिद्ध है। स्वर्गमें देवता और भूमिपर मान्धाता, मनु, नहष आदि बड़े-बड़े राजाओंने इस तिथिको माना है। जो पुरुष युद्धमें मारे जायँ, सर्प आदिके काटनेसे मरे हों और जिसने आत्मघात किया हो, उनका इस चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये, जिससे वे सद्वितीको प्राप्त हो जायँ। इस तिथिके व्रतका विधान इस प्रकार है—चतुर्दशीको उपवास करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे त्रिलोचन श्रीसदाशिवका पूजन करे, रात्रिमें जागरण करे। रात्रिमें पञ्चगव्यका प्राशन कर भूमिपर ही शयन करे। तैल-क्षारसे रहित श्यामाक (साँवा)-का भोजन करे। अग्निके नाम-मन्त्रोंद्वारा काले तिलोंसे १०८ आहुतियाँ प्रदान करे। दूसरे दिन प्रातः स्नान कर पञ्चामृतसे शिवजीको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक उनका पूजन करे और पूर्वोक्त रीतिसे हवनकर उनकी प्रार्थना करे। पीछे आरती कर ब्राह्मणको भोजन कराये। उनको दक्षिणा दे और मौन हो स्वयं भी भोजन करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सुवर्णकी त्रिलोचन भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनाये। प्रतिमाको चाँदीके वृषभपर स्थितकर दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर ताम्रपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दे दे। जो एक वर्षतक इस व्रतको करता है, वह लम्बी आयु प्राप्त कर अन्तमें तीर्थमें प्राण परित्याग कर

शिवलोकमें देवताओंके साथ विहार करता है। वहाँ बहुत कालतक रहकर वह पृथ्वीमें आकर ऐश्वर्यसम्पन्न धार्मिक राजा होता है। पुत्र-पौत्रोंसे

समन्वित होता है और चिरकालतक आनन्दित रहता है तथा अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करता है*। (अध्याय ९३)

अनन्तचतुर्दशी-व्रत-विधान

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! सम्पूर्ण पापोंका नाशक, कल्याणकारक तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला अनन्तचतुर्दशी नामक एक व्रत है, जिसे भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको सम्पन्न किया जाता है।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो अनन्त नाम लिया है, क्या ये अनन्त शेषनाग हैं या कोई अन्य नाग हैं अथवा परमात्मा हैं या ब्रह्म हैं? अनन्त संज्ञा किसकी है? इसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! अनन्त मेरा ही नाम है। कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग तथा कल्प आदि काल-विभागोंके रूपमें मैं ही अवस्थित हूँ। संसारका भार उतारने तथा दानवोंका विनाश करनेके लिये वसुदेवके कुलमें मैं ही उत्पन्न हुआ हूँ। पार्थ! आप मुझे ही विष्णु, जिष्णु, हर, शिव, ब्रह्मा, भास्कर, शेष, सर्वव्यापी ईश्वर समझिये और अनन्त भी मैं ही हूँ। मैंने आपको विश्वास उत्पन्न करनेके लिये ऐसा कहा है।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! मुझे आप अनन्त-व्रतके माहात्म्य और विधिको तथा इसे किसने पहले किया था एवं इस व्रतका क्या पुण्य है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—युधिष्ठिर! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन आख्यान है, उसे आप

सुनें। कृतयुगमें वसिष्ठगोत्री सुमन्तु नामके एक ब्राह्मण थे। उनका महर्षि भृगुकी कन्या दीक्षासे वेदोक्त-विधिसे विवाह हुआ था। उन्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम शीला रखा गया। कुछ समय बाद उसकी माता दीक्षाका ज्वरसे देहान्त हो गया और उस पतिव्रताको स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। सुमन्तुने पुनः एक कर्कशा नामकी कन्यासे विवाह कर लिया। वह अपने कर्कशा नामके समान ही दुःशील, कर्कश तथा नित्य कलहकारिणी एवं चण्डीरूपा थी। शीला अपने पिताके घरमें रहती हुई दीवाल, देहली तथा स्तम्भ आदिमें माङ्गलिक स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख आदि विष्णुचिह्नोंको अঙ्कित कर उनकी अर्चना करती रहती। सुमन्तुको शीलाके विवाहकी चिन्ता होने लगी। उन्होंने शीलाका विवाह कौंडिन्यमुनिके साथ कर दिया। विवाहके अनन्तर सुमन्तुने अपनी पत्नीसे कहा—‘देवि! दामादके लिये परितोषिक रूपमें कुछ दहेज द्रव्य देना चाहिये।’ यह सुनकर कर्कशा क्रुद्ध हो उठी और उसने घरमें बने मण्डपको उखाड़ डाला तथा भोजनसे बचे हुए कुछ पदार्थोंको पाथेयके रूपमें प्रदान कर कहा—चले जाओ, फिर उसने कपाट बंद कर लिया।

कौंडिन्य भी शीलाको साथ लेकर बैलगाड़ीसे धीरे-धीरे वहाँसे चल पड़े। दोपहरका समय हो

* प्रायः अन्य ज्यौतिष ग्रन्थोंतथा पुराणोंके अनुसार अग्निदेवकी तिथि प्रतिपदा ही है। चतुर्दशी शिवजीकी तिथि है। यहाँ भी शिवजीकी ही पूजा है, अतः कल्पान्तर-व्यवस्था मान लेनी चाहिये।

गया। वे एक नदीके किनारे पहुँचे। शीलाने देखा कि शुभ वस्त्रोंको पहने हुए कुछ स्त्रियाँ चतुर्दशीके दिन भक्तिपूर्वक जनार्दनकी अलग-अलग पूजा कर रही हैं। शीलाने उन स्त्रियोंके पास जाकर पूछा—‘देवियो! आपलोग यहाँ किसकी पूजा कर रही हैं, इस ब्रतका क्या नाम है?’ इसपर वे स्त्रियाँ बोलीं—‘यह ब्रत अनन्तचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है।’ शीला बोली—‘मैं भी इस ब्रतको करूँगी, इस ब्रतका क्या विधान है, किस देवताकी इसमें पूजा की जाती है और दानमें क्या दिया जाता है, इसे आपलोग बतायें।’ इसपर स्त्रियोंने कहा—‘शीले! प्रस्थभर पक्षान्नका नैवेद्य बनाकर नदीतटपर जाय, वहाँ स्नान कर एक मण्डलमें अनन्तस्वरूप भगवान् विष्णुकी गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे और कथा सुने। उन्हें नैवेद्य अर्पित करे। नैवेद्यका आधा भाग ब्राह्मणको निवेदित कर आधा भाग प्रसादरूपमें ग्रहण करनेके लिये रखे। भगवान् अनन्तके सामने चौंदह ग्रन्थियुक्त एक दोरक (डोरा) स्थापित कर उसे कुंकुमादिसे चर्चित करे। भगवान् को वह दोरक निवेदित करके पुरुष दाहिने हाथमें और स्त्री बायें हाथमें बाँध ले। दोरक-बन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजितात्मा ह्यनन्तरूपाय नमो नमस्ते॥

(उत्तरपर्व १४। ३३)

‘हे वासुदेव! अनन्त संसाररूपी महासमुद्रमें मैं ढूब रही हूँ, आप मेरा उद्धार करें, साथ ही अपने अनन्तस्वरूपमें मुझे भी आप विनियुक्त कर लें। हे अनन्तस्वरूप! आपको मेरा बार-बार प्रणाम है।’

दोरक बाँधनेके अनन्तर नैवेद्य ग्रहण करना चाहिये। अन्तमें विश्वरूपी अनन्तदेव भगवान्

नारायणका ध्यान कर अपने घर जाय। शीले! हमने इस अनन्तब्रतका वर्णन किया। तदनन्तर शीलाने भी विधिसे इस ब्रतका अनुष्ठान किया। पाथेय निवेदित कर उसका आधा भाग ब्राह्मणको प्रदान कर आधा स्वयं ग्रहण किया और दोरक भी बाँधा। उसी समय शीलाके पति कौँडिन्य भी वहाँ आये। फिर वे दोनों बैलगाड़ीसे अपने घरकी ओर चल पड़े। घर पहुँचते ही ब्रतके प्रभावसे उनका घर प्रचुर धन-धान्य एवं गोधनसे सम्पन्न हो गया। वह शीला भी मणि-मुक्ता तथा स्वर्णादिके हारों और वस्त्रोंसे सुशोभित हो गयी। वह साक्षात् सावित्रीके समान दिखलायी देने लगी। कुछ समय बाद एक दिन शीलाके हाथमें बँधे अनन्त-दोरकको उसके पतिने क्रुद्ध हो तोड़ दिया। उस विपरीत कर्मविपाकसे उनकी सारी लक्ष्मी नष्ट हो गयी, गोधन आदि चोरोंने चुरा लिया। सभी कुछ नष्ट हो गया। आपसमें कलह होने लगा। मित्रोंने सम्बन्ध तोड़ लिया। अनन्तभगवान् के तिरस्कार करनेसे उनके घरमें दरिद्रताका साम्राज्य छा गया। दुःखी होकर कौँडिन्य एक गहन वनमें चले गये और विचार करने लगे कि मुझे कब अनन्तभगवान् के दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा। उन्होंने पुनः निराहार रहकर तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक भगवान् अनन्तका ब्रत एवं उनके नामोंका जप किया और उनके दर्शनोंकी लालसासे विह्वल होकर वे पुनः दूसरे निर्जन वनमें गये। वहाँ उन्होंने एक फले-फूले आम्र-वृक्षको देखा और उससे पूछा कि क्या तुमने अनन्तभगवान् को देखा है? तब उसने कहा—‘ब्राह्मण देवता! मैं अनन्तको नहीं जानता।’ इस प्रकार वृक्षों आदिसे अनन्तभगवान् के विषयमें पूछते-पूछते घास चरती हुई एक सवत्सा गौको देखा। कौँडिन्यने गौसे पूछा—‘धेनुके! क्या तुमने अनन्तको देखा है?’ गौने कहा—‘विभो! मैं अनन्तको नहीं जानती।’

इसके पश्चात् कौँडिन्य फिर आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने देखा कि एक वृषभ घासपर बैठा है। पूछनेपर वृषभने भी बताया कि मैंने अनन्तको नहीं देखा है। फिर आगे जानेपर कौँडिन्यको दो रमणीय तालाब दिखलायी पड़े। कौँडिन्यने उनसे भी अनन्तभगवान्‌के विषयमें पूछा, किंतु उन्होंने भी अनभिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार कौँडिन्यने अनन्तके विषयमें गर्दभ तथा हाथीसे पूछा, उन्होंने भी नकारात्मक उत्तर दिया। इसपर वे कौँडिन्य अत्यन्त निराश हो पृथ्वीपर गिर पड़े। उसी समय कौँडिन्यमुनिके सामने कृपा करके भगवान् अनन्त वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हो गये और पुनः उन्हें अपने दिव्य चतुर्भुज विश्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्‌का दर्शनकर कौँडिन्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनकी प्रार्थना करने लगे तथा अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगे—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
पाहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्।

(उत्तरपर्व ९४। ६०-६१)

कौँडिन्यने भगवान्‌से पुनः पूछा—भगवन्! घोर वनमें मुझे जो आम्रवृक्ष, वृषभ, गौ, पुष्करिणी, गर्दभ तथा हाथी मिले, वे कौन थे? आप तत्त्वतः इसे बतलायें।

भगवान् बोले—‘द्विजदेव! वह आम्रवृक्ष पूर्वजन्ममें एक वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण था, किंतु उसे अपनी विद्याका बड़ा गर्व था। उसने

शिष्योंको विद्या-दान नहीं किया, इसलिये वह वृक्ष-योनिको प्राप्त हुआ। जिस गौको तुमने देखा, वह उपजाऊ शक्तिरहित वसुन्धरा थी, वह भूमि सर्वथा निष्कल थी, अतः वह गौ बनी। वृषभ सत्य धर्मका आश्रय ग्रहणकर धर्मस्वरूप ही था। वे पुष्करिणियाँ धर्म और अधर्मकी व्यवस्था करनेवाली दो ब्राह्मणियाँ थीं। वे परस्पर बहिनें थीं, किंतु धर्म-अधर्मके विषयमें उनमें परस्पर अनुचित विवाद होता रहता था। उन्होंने किसी ब्राह्मण, अतिथि अथवा भूखेको दान भी नहीं किया। इसी कारण वे दोनों बहिनें पुष्करिणी हो गयीं, यहाँ भी लहरोंके रूपमें आपसमें उनमें संघर्ष होता रहता है। जिस गर्दभको तुमने देखा, वह पूर्वजन्ममें महान् क्रोधी व्यक्ति था और हाथी पूर्वजन्ममें धर्मदूषक था। हे विप्र! मैंने तुम्हें सारी बातें बतला दीं। अब तुम अपने घर जाकर अनन्त-ब्रत करो, तब मैं तुम्हें उत्तम नक्षत्रका पद प्रदान करूँगा। तुम स्वयं संसारमें पुत्र-पौत्रों एवं सुखको प्राप्तकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त करोगे। ऐसा वर देकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

कौँडिन्यने भी घर आकर भक्तिपूर्वक अनन्तब्रतका पालन किया और अपनी पत्नी शीलाके साथ वे धर्मात्मा उत्तम सुख प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गमें पुनर्वसु नामक नक्षत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हुए। जो व्यक्ति इस ब्रतको करता है या इस कथाको सुनता है, वह भी भगवान्‌के स्वरूपमें मिल जाता है।

(अध्याय ९४)

श्रवणिकाब्रत-कथा एवं ब्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संसारमें श्रावणी नामकी जिन देवियोंका नाम सुना जाता है, वे कौन हैं और उनका क्या धर्म है तथा वे क्या करती हैं? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पाण्डवश्रेष्ठ! ब्रह्माने इन श्रावणी देवियोंकी रचना की है। संसारमें मानव जो कुछ भी शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है, वे श्रावणी देवियाँ उस विषयकी सूचना शीघ्र

ही ब्रह्माको श्रवण कराती हैं, इसीलिये ये श्रावणी कही गयी हैं*। संसारके प्राणियोंका नियमन करनेके कारण वे पूज्य हैं। वे दूरसे ही जान-सुन-देख लेती हैं। कोई भी ऐसा कर्म नहीं है जो इनसे अदृश्य हो। इनमें ऐसी विलक्षण शक्ति है जो तर्क, हेतु आदिसे अगम्य है। जिस प्रकार देवता, विद्याधर, सिद्ध, गच्छर्व, किम्पुरुष आदि पूज्य एवं पुण्यप्रद हैं, उसी प्रकार ये श्रावणी देवियाँ भी वन्दनीय एवं पुण्यमयी हैं। स्त्री-पुरुषोंको इनकी प्रसन्नताके लिये व्रत करना चाहिये तथा जल, चन्दन, पुष्प, धूप, पक्षान्न आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये और स्त्रियों तथा पुरुषोंको भोजन कराकर व्रतकी पारणा करनी चाहिये।

इनका व्रत न करनेसे मृत्यु-कष्ट होता है और यम-यातना सहन करनी पड़ती है। राजन्! इस विषयमें आपको एक आख्यान सुनाता हूँ—

प्राचीन कालमें नहुष नामके एक राजा थे। उनकी रानीका नाम 'जयश्री' था। वह अत्यन्त सुन्दर, शीलवती एवं पतिव्रता थी। एक बार गङ्गामें स्नान करके वह महर्षि वसिष्ठके समीपवर्ती आश्रममें गयी, वहाँ उसने देखा कि माता अरुन्धती मुनिपतियोंको विविध प्रकारका भोजन करा रही हैं। जयश्रीने उन्हें प्रणाम कर पूछा—'भगवति! आप यह कौन-सा व्रत कर रही हैं।' अरुन्धती बोलीं—'देवि! मैं श्रवणिकाव्रत कर रही हूँ। इस व्रतको मुझे महर्षि वसिष्ठने बताया है। यह व्रत अत्यन्त गुप्त और ब्रह्मियोंका सर्वस्व है तथा कन्याओंके लिये श्रेष्ठ एवं उत्तम पति प्रदान करनेवाला है। तुम यहाँ ठहरो, मैं तुम्हारा आतिथ्य करूँगी' और उन्होंने वैसा ही किया। तदनन्तर जयश्री अपने नगरमें चली आयी। कुछ समय बाद वह

उस व्रतको तथा अरुन्धतीके भोजनको भूल गयी। समय आनेपर जब वह महासती मरणासन्न हुई तो उसके गलेमें घर्घराहट होने लगी, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, मुखसे फेन एवं लार टपकने लगा। इस प्रकार दारुण कष्ट भोगते हुए उसे पंद्रह दिन व्यतीत हो गये। उसका मुख देखनेसे भय लगता था। सोलहवें दिन अरुन्धती जयश्रीके घर आयीं और उन्होंने वैसी कष्टप्रद स्थितिमें उसे देखा। तब अरुन्धतीने राजा नहुषसे श्रवणिकाव्रतके विषयमें बतलाया। राजा नहुषने भी देवी अरुन्धतीके निर्देशानुसार जयश्रीके निमित्त तत्काल श्रवणिकाव्रतका आयोजन किया। उस व्रतके प्रभावसे जयश्रीने सुखपूर्वक मृत्युका वरण किया और इन्द्रलोकको प्राप्त किया।

श्रीकृष्णने पुनः कहा—राजन्! मार्गशीर्षसे कार्तिकतक द्वादश मासोंकी चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथियोंमें भक्तिपूर्वक यह व्रत करना चाहिये। प्रातःकाल नदी आदिमें स्नानकर पवित्र हो, श्रेष्ठ बारह ब्राह्मण-दम्पतियों अथवा अपने गोत्रमें उत्पन्न बारह दम्पतियोंको बुलाकर गन्ध, पुष्प, रोचना, वस्त्र, अलंकार, सिंदूर आदिसे उनका भक्तिपूर्वक पूजन करे। सुन्दर, सुडौल, अच्छद्र, जलसे भरे हुए, सूत्रसे आवेषित तथा पुष्पमाला आदिसे विभूषित स्वर्णयुक्त बारह वर्धनियों (जलपूर्ण कलश) -को ब्राह्मणियोंके सामने पृथक्-पृथक् रखे। उनमेंसे मध्यकी एक वर्धनी उठाकर अपने सिरपर रखे और उन ब्राह्मणियोंसे बाल्यावस्था, कुमारावस्था तथा वृद्धावस्थामें किये गये पापोंके विनाश, सुखपूर्वक मृत्यु-प्राप्ति एवं संसार-सागरसे पार होने और भगवान्के परमपदको पानेके लिये प्रार्थना करे। वे ब्राह्मणियाँ भी कहें—'ऐसा ही

* गरुडपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ७ में भी यह विषय विस्तारसे प्रतिपादित है। वहाँ इन्हें देवी न कहकर श्रवण नामका पुरुष देवता कहा गया है।

हो।' ब्राह्मणोंसे पापके विनाशके लिये प्रार्थना करे। ब्राह्मण उस वर्धनीको उसके सिरसे उतार लें और उसे आशीर्वाद प्रदान करें। उन सभी वर्धनियोंको ब्राह्मण-पत्नियोंको दे दे।

हे पार्थ ! इस प्रकार इस श्रवणिकाव्रतको भक्तिपूर्वक करनेवाला सभी भोगोंका उपभोग कर सुखपूर्वक मृत्युका वरण करता है और उत्तम लोकको प्राप्त करता है। (अध्याय ९५)

नक्त एवं शिवचतुर्दशी-व्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब आप नक्तव्रतका विधान सुनिये, जिसके करनेसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। किसी भी मासकी शुक्ल चतुर्दशीको ब्राह्मणको भोजन कराकर नक्तव्रत प्रारम्भ करना चाहिये। प्रत्येक मासमें दो अष्टमियाँ और दो चतुर्दशियाँ होती हैं। उस दिन भक्तिपूर्वक शिवजीका पूजन करे और उनके ध्यानमें तत्पर रहे। रात्रिके समय पृथ्वीको पात्र बनाकर उसीमें भोजन करें। उपवाससे उत्तम भिक्षा, भिक्षासे उत्तम अयाचित-व्रत और अयाचित-व्रतसे भी उत्तम है नक्त-भोजन। इसलिये नक्तव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्नमें देवता, मध्याह्नमें मुनिगण, अपराह्नमें पितर और सायंकालमें गुह्यक आदि भोजन करते हैं। इसलिये सबके बाद नक्त-भोजन करना चाहिये। नक्तव्रत करनेवाला पुरुष नित्य स्नान, स्वल्प हविष्यान्न-भोजन, सत्य-भाषण, नित्य-हवन और भूमिशयन करे। इस प्रकार एक वर्षतक व्रत करके अन्तमें घृतपूर्ण कलशके ऊपर भगवान् शिवकी मृत्तिकासे बनी प्रतिमा स्थापित करे। कपिला गौके पञ्चगव्यसे प्रतिमाको स्नान कराकर फल, पुष्प, यव, क्षीर, दधि, दूर्वाङ्कुर, तिल तथा चावल जलमें छोड़कर अष्टाङ्ग-अर्ध्य प्रदान करे। दोनों घुटनोंको पृथ्वीपर

रखकर पात्रको सिरतक उठाकर महादेवजीको अर्घ्य दे। अनन्तर अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य नैवेद्य निवेदित करे। एक उत्तम सवत्सा गौ और वृषभ वेदवेत्ता ब्राह्मणको दक्षिणासहित दे। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति दिव्य देह धारण कर उत्तम विमानमें बैठकर रुद्रलोकमें जाता है। वहाँ तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोगकर इस लोकमें महान् राजा होता है। एक बार भी जो इस विधानसे नक्तव्रत कर श्रीसदाशिवका पूजन करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध शिवचतुर्दशीकी विधि बता रहा हूँ। यह माहेश्वरव्रत शिवचतुर्दशी नामसे प्रसिद्ध है^१। इस व्रतमें मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको एक बार भोजन करे और चतुर्दशीको निराहार रहकर पार्वतीसहित भगवान् शंकरकी गम्भी, पुष्प, धूप, दीप आदि उपचारोंसे पूजा करे। स्वर्णका वृषभ बनाकर उसकी भी पूजा करे। अनन्तर वह वृषभ तथा स्थापित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको प्रदान कर दे, विविध प्रकारके भक्ष्य पदार्थ भी दे और कहे—‘प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।’ अनन्तर उत्तराभिमुख हो घृतका प्राशन कर भूमिपर शयन करे। प्रतिमासकी शुक्ल चतुर्दशीको यही

१—गया आदि तीर्थोंमें पृथ्वीपर ही भोजनपात्रके रूपमें थालियाँ बनी हुई हैं। पहले जैन, बौद्ध, भिक्षु, संन्यासी उन्हींमें या मिट्टीकी बनी थालियोंमें भोजन करते थे और कुछ लोग हाथमें लेकर भोजन करते थे। उन्हें करपात्री कहते थे। इसमें त्याग, व्रत, तपस्या और सहिष्णुता सब मिश्रित थी।

२—इस व्रतका वर्णन मत्स्य आदि पुराणोंमें भी प्राप्त होता है।

विधान करे और मार्गशीर्ष आदि महीनोंमें शयनके समय इस प्रकार प्रार्थना करे—

शंकराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करबीरक।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं महेश्वरमतः परम्॥
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्।
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे नमः॥
नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे।
नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः॥

(उत्तरपर्व १७। १५—१७)

बारह महीनोंमें क्रमसे गोमूत्र, गोमय, दुग्ध, दधि, घृत, कुशोदक, पञ्चगव्य, बिल्व, यवागू (यवकी काँजी), कमल तथा काले तिलका प्राशन करे और मन्दार, मालती, धूर, सिंदुवार, अशोक, मल्लिका, कुञ्जक, पाटल, अर्क-पुष्प, कदम्ब, रक्त अथवा नील कमल तथा कनेर—इन बारह पुष्पोंसे क्रमशः बारहों चतुर्दशियोंमें

उमामहेश्वरका पूजन करे। अनेक प्रकारके भोजन, वस्त्र, आभूषण, दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर नीले (कृष्ण) रंगका वृष छोड़े और एक गौ तथा एक वृष सुवर्णका बना करके आठ मोतियोंसे युक्त उत्तम शश्यापर स्थापित करे। जल-कुम्भ, शालि-चावल, घृत, दक्षिणासहित सब सामग्री वेद-ब्रत-परायण, शान्तचित्त सप्लीक ब्राह्मणोंको प्रदान कर दे। इस व्रतको जो पुरुष भक्तिपूर्वक करता है, उसके माता-पिताके भी सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वह स्वयं हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है तथा दीर्घायु, ऐश्वर्य, आरोग्य, संतान एवं विद्या आदि प्राप्त करता है। बहुत दिनोंतक संसारका सुख भोगकर वह विष्णुलोकादिमें विहार करता हुआ अन्तमें शिवलोकको प्राप्त करता है।

(अध्याय ९६-९७)

सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रत

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—भारत! अब आप सर्वफलत्याग-चतुर्दशीव्रतका माहात्म्य सुनें। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इस व्रतका नियम मार्गशीर्ष मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको अथवा अन्य मासोंकी अष्टमीको ग्रहण करना चाहिये। उस दिन ब्राह्मणोंको पायस-भोजन कराकर दक्षिणा दे। इस व्रतका आरम्भ कर वर्षभर कोई निन्द्या फल-मूल तथा अठारह प्रकारके धान्य* भक्षण न करे। वर्षके अन्तमें चतुर्दशी अथवा अष्टमीके दिन सुवर्णके रुद्र एवं धर्मराजकी प्रतिमा बनाकर दो कलशोंके ऊपर स्थापित कर उनका पूजन करे। सोनेके सोलह कूष्माण्ड और

मातुलुङ्ग, बैगन, कटहल, आम्र, आमड़ा, कैथ, कलिंग (तरबूज), ककड़ी, श्रीफल, वट, अश्वत्थ, जम्बोरी नींबू केला, बेर तथा दाढ़िम (अनार)—ये फल बनवाये। मूली, आँवला, जामुन, कमलगद्वा, करौंदा, गूलर, नारियल, अंगूर, दो बनभंटा, कंकोल, काकमाची, खीरा, करील, कुटज तथा शमी—ये सोलह फल चाँदीके बनवाये और ताल, अगस्त्य, पिंडार, खजूर, सूरण, कंदक, कटहल, लकुच, खेंकसा, इमली, चित्रावल्ली, कूटशाल्मलिका, महुआ, कारवेल्ल, वल्ली तथा गुदपटोलक—ये सोलह फल ताँबेके बनवाये। इन फलोंका व्रतपर्यन्त भक्षण न करे अर्थात् इन फलोंके त्यागका व्रतमें

* ये अठारह धान्य—याज्वल्य-स्म० १। २०८ की अपराक व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं—सावाँ, धान, जौ, मौँग, तिल, अण, (कैंगनी), उड्ड, गेहूँ, कोदो, कुलधी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्कु (सरसों, राई या टॉगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुषादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह हैं।

संकल्प करे। व्रतकी पूर्णतापर धर्मराज एवं रुद्रकी प्रतिमा तथा स्वर्ण, रौप्य एवं ताम्रसे बनाये गये इन पलोंको वेदज, शान्त, सपत्नीक ब्राह्मणको भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये प्रार्थनापूर्वक दान कर दे। सभी उपकरणोंसहित उत्तम शश्या, भूषण, दक्षिणा भी ब्राह्मणको देकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये। स्वयं भी तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। यदि सभी फलोंको न त्याग सके तो एक

ही फलका त्याग करे और सुवर्ण आदिका बनवाकर इसी विधानसे ब्राह्मणको दे। उन फलोंमें जितने परमाणु होते हैं, उतने हजार युग वर्षतक इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकमें पूजित होता है। स्त्रियोंको भी यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेवालोंको किसी जन्ममें इष्टका वियोग नहीं होता और अन्तमें वह स्वर्गमें निवास करता है। (अध्याय ९८)

पौर्णमासी-व्रत-विधान एवं अमावास्यामें श्राद्ध-तर्पणकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! पूर्णिमा चन्द्रमाकी प्रिय तिथि है। क्योंकि इसी दिन चन्द्रमा* सोलह कलाओंसे परिपूर्ण होते हैं। इसीलिये यह पौर्णमासी कही जाती है। इसी तिथिको चन्द्रमा तारासे बुध नामक पुत्रको प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। यह पौर्णमासी तिथि सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली है। चन्द्रमाने स्वयं कहा है कि ‘जो इस पूर्णिमा-तिथिमें भक्तिपूर्वक विधिवत् मेरी पूजा करेगा, मैं प्रसन्न होकर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर दूँगा।’ व्रतीको चाहिये कि पूर्णिमाके दिन प्रातः नदी आदिमें स्नान कर देवता और पितरोंका तर्पण करे। तदनन्तर घर आकर एक मण्डल बनाये और उसमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमाको अङ्कित कर श्वेत गन्ध, अक्षत, श्वेत पुष्प, धूप, दीप, घृतपक्व नैवेद्य तथा श्वेत वस्त्र आदि उपचारोंसे चन्द्रमाका पूजन कर उनसे क्षमा-प्रार्थना करे एवं सायंकाल इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

वसन्तबान्धव विभो शीतांशो स्वस्ति नः कुरु।

गग्नार्णवमाणिक्य चन्द्र दाक्षायणीपते॥

(उत्तरपर्व ९९।५४)

अनन्तर रात्रिमें मौन होकर शाक एवं तिनीके चावलका भोजन करे। प्रत्येक मासकी पौर्णमासीको

इसी प्रकार उपवासपूर्वक चन्द्रमाकी पूजा करनी चाहिये। यदि कृष्ण पक्षकी अमावास्यामें कोई श्राद्धावान् व्यक्ति चन्द्रमाकी पूजा करना चाहे तो उसके लिये भी यही विधि बतलायी गयी है। इससे सभी अभीष्ट सुख प्राप्त होते हैं। अमावास्या तिथि पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। इस दिन दान एवं तर्पण आदि करनेसे पितरोंको तृप्ति प्राप्त होती है। जो अमावास्याको उपवास करता है, उसे अक्षय-वटके नीचे श्राद्ध करनेका फल प्राप्त होता है। यह अक्षय-वट पितरोंके लिये उत्तम तीर्थ है। जो अमावास्याको अक्षय-वटमें पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धादि क्रिया करता है, वह पुण्यात्मा अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त पूर्णिमा-व्रत करके नक्षत्रसहित चन्द्रमाकी सुवर्णकी प्रतिमा बना करके वस्त्राभूषण आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको दान कर दे। व्रती यदि इस व्रतको निरन्तर न कर सके तो एक पक्षके व्रतको ही करके उद्यापन कर ले। पर्थ! पौर्णमासी-व्रत करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है और पुत्र-पौत्र, धन, आरोग्य आदि प्राप्तकर बहुत कालतक सुख भोगकर अन्तसमयमें प्रयागमें प्राण त्यागकर

* मास शब्दका अर्थ चन्द्रमा होता है, हिन्दुओंके महीने अमावास्याको पूर्ण होते हैं।

विष्णुलोकको जाता है। जो पुरुष पूर्णिमाको चन्द्रमाका | आदि करते हैं, वे कभी धन-धान्य-संतान आदिसे पूजन और अमावास्याको पितृ-तर्पण, पिण्डदान | च्युत नहीं होते। (अध्याय ९९)

वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमाकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! संवत्सरमें कौन-कौन तिथियाँ स्नान-दान आदिमें अधिक पुण्यप्रद हैं। उनका आप वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! वैशाख, कार्तिक और माघ—इन तीन महीनोंकी पूर्णिमाएँ स्नान-दान आदिके लिये अति श्रेष्ठ हैं। इन तिथियोंमें स्नान, दान आदि अवश्य करने चाहिये। इन तिथियोंमें तीर्थोंमें स्नान करे और यथाशक्ति दान दे। वैशाखीको उज्ज्यिनी (शिंप्रा)-में, कार्तिकीको पुष्करमें और माघीको वाराणसी (गङ्गा)-में स्नान करना चाहिये। इस दिन जो पितरोंका तर्पण करता है, वह अनन्त फल पाता है और पितरोंका उद्धार करता है। वैशाख-पूर्णिमाको अन्न, सुवर्ण वस्त्रसहित जलपूर्ण कलश ब्राह्मणको दान करनेसे ब्रती सर्वथा शोकमुक्त हो जाता है। इस ब्रतमें सुन्दर मधुर भोजनसे परिपूर्ण पात्र, गौ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्र आदिका दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको देवता और पितरोंका तर्पण कर सुवर्णसहित तिलपात्र, कम्बल, रुईके वस्त्र, कपास, रत्न आदि ब्राह्मणको दे। कार्तिक-पूर्णिमाको वृषोत्सर्ग करे। भगवान् विष्णुका नीराजन करे। हाथी, घोड़े, रथ और घृत-धेनु आदि दस धेनुओंका दान करे और केला, खजूर, नारियल, अनार, संतरा, ककड़ी, बैंगन, करेला, कुंदुरु, कूष्माण्ड आदि फलोंका दान करे। इन पुण्य तिथियोंमें जो स्नान, दान आदि नहीं करते, वे जन्मान्तरमें रोगी और दरिद्री होते हैं। ब्राह्मणोंको

दान देनेका तो फल है ही, परंतु बहन, भानजे, बुआ आदिको तथा दरिद्र बन्धुओंको भी दान देनेसे बड़ा पुण्य होता है। मित्र, कुलीन व्यक्ति, विपत्तिसे पीड़ित व्यक्ति, दरिद्री और आशासे आये अतिथिको दान देनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। राजन्! सीता और लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र जब वन चले गये थे, उस समय भरतजी अपने ननिहालमें थे। इधर लोगोंने माता कौसल्याको उनके विषयमें सशंकित कर दिया कि श्रीरामके वन-गमनमें भरत ही मुख्य हेतु हैं। फिर जब वे ननिहालसे वापस आये और उन्हें सारी बातें ज्ञात हुईं तो उन्होंने माताको अनेक प्रकारसे समझाया और शपथ भी ली, पर माताको विश्वास न हुआ, किंतु जब भरतने कहा कि 'माँ! भगवान् श्रीरामके वन-गमनमें यदि मेरी सम्मति रही हो तो देवताओंद्वारा पूजित तथा अनेक पुण्योंको प्रदान करनेवाली वैशाख, कार्तिक तथा माघकी पूर्णिमाएँ मेरे बिना स्नान-दानके ही व्यतीत हों और मुझे निम्र गति प्राप्त हो।' इस महान् शपथको सुनते ही माताको विश्वास हो गया और उन्होंने भरतको अपने अङ्गमें ले लिया तथा अनेक प्रकारसे आश्वस्त किया। महाराज! इन तीनों तिथियोंका सम्पूर्ण माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है। मैंने संक्षेपमें कहा है। इन तीनों तिथियोंको जल, अन्न, वस्त्र, स्वर्णपात्र, छत्र आदि दान करनेवाले पुरुष इन्द्रलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १००)

युगादि तिथियोंकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप उन तिथियोंका वर्णन करें, जिनमें स्वल्प भी किया गया स्नान, दान, जप आदि पुण्यकर्म अक्षय हो जाते हैं और महान् धर्म तथा शुभ फल प्राप्त होता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं आपको अत्यन्त रहस्यकी बात बताता हूँ, जिसे आजतक मैंने किसीसे नहीं कहा था। वैशाख मासके शुक्ल पक्षकी तृतीया, कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमी, भाद्रपद मासके कृष्ण पक्षकी त्रयोदशी और माघकी पूर्णिमा—ये चारों युगादि तिथियाँ हैं अर्थात् इन तिथियोंमें क्रमशः सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—चारों युगोंका प्रारम्भ हुआ है। इन तिथियोंको उपवास, तप, दान, जप, होम आदि करनेसे कोटि गुना पुण्य प्राप्त होता है। वैशाख शुक्ल तृतीयाको गन्ध, पुष्टि, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्राभूषणादिसे लक्ष्मीसहित नारायणका पूजन कर सवत्सा लवण-धेनुका दान करना चाहिये। कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी नवमीको नदी, तड़ाग आदिमें स्नानकर पुष्टि, धूप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे उमाके साथ नीलकण्ठ भगवान् शंकरकी पूजा कर तिल-

धेनुका दान करना चाहिये। भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशीको पितृ-तर्पणकर शहद और घृतयुक्त अनेक प्रकारके पक्काओंसे ब्राह्मण-भोजन कराये तथा दूध देनेवाली सुन्दर सुपुष्ट सवत्सा प्रत्यक्ष गौ ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। माघ-पूर्णिमाको गायत्रीसहित ब्रह्माजीका पूजन कर सुवर्ण, वस्त्र अनेक प्रकारके फलोंसहित नवनीत-धेनुका दान करना चाहिये।

राजन्! इस प्रकार दान करनेवालोंको तीनों लोकोंमें किसी वस्तुका अभाव नहीं होता। इन युगादि तिथियोंमें जो दान दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है। निर्धन हो तो थोड़ा-थोड़ा ही दान करे, उसका भी अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। वित्तके अनुसार शश्या, आसन, छतरी, जूता, वस्त्र, सुवर्ण, भोजन आदि ब्राह्मणोंको देना चाहिये। इन तिथियोंमें यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन भी कराये। अनन्तर प्रसन्न-मनसे बन्धु-बान्धवोंके साथ मौन हो स्वयं भी भोजन करे। युगादि तिथियोंमें दान-पूजन आदि करनेसे कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और दाता अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है। (अध्याय १०१)

सावित्री-व्रतकथा एवं व्रत-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-व्रतके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सावित्री नामकी एक राजकन्याने वनमें जिस प्रकार यह व्रत किया था, स्त्रियोंके कल्याणार्थ मैं उस व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, उसे आप सुनें। प्राचीन कालमें मद्रदेश (पंजाब)-में एक बड़ा पराक्रमी, सत्यवादी, क्षमाशील, जितेन्द्रिय और प्रजापालनमें तत्पर

अश्वपति नामका राजा राज्य करता था, उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने सप्तनीक व्रतद्वारा सावित्रीकी आराधना की। कुछ कालके अनन्तर व्रतके प्रभावसे ब्रह्माजीकी पत्नी सावित्रीने प्रसन्न हो राजाको वर दिया कि 'राजन्! तुम्हें (मेरे ही अंशसे) एक कन्या उत्पन्न होगी।' इतना कहकर सावित्रीदेवी अन्तर्धान हो गयीं और कुछ दिन बाद राजाको एक दिव्य कन्या उत्पन्न हुई। वह

सावित्रीदेवीके वरसे प्राप्त हुई थी, इसलिये राजाने उसका नाम सावित्री ही रखा। धीरे-धीरे वह विवाहके योग्य हो गयी। सावित्रीने भी भृगुके उपदेशसे सावित्री-व्रत किया।

एक दिन वह व्रतके अनन्तर अपने पिताके पास गयी और प्रणाम कर वहाँ बैठ गयी। पिताने सावित्रीको विवाहयोग्य जानकर अमात्योंसे उसके विवाहके विषयमें मन्त्रणा की; पर उसके योग्य किसी श्रेष्ठ वरको न देखकर पिता अश्वपतिने सावित्रीसे कहा—‘पुत्रि! तुम वृद्धजनों तथा अमात्योंके साथ जाकर स्वयं ही अपने अनुरूप कोई वर ढूँढ़ लो।’ सावित्री भी पिताकी आज्ञा स्वीकार कर मन्त्रियोंके साथ चल पड़ी। स्वल्प कालमें ही राजर्षियोंके आश्रमों, सभी तीर्थों और तपोवनोंमें घूमती हुई तथा वृद्ध ऋषियोंका अभिनन्दन करती हुई वह मन्त्रियोंसहित पुनः अपने पिताके पास लौट आयी। सावित्रीने देखा कि राजसभामें देवर्षि नारद बैठे हुए हैं। सावित्रीने देवर्षि नारद और पिताको प्रणामकर अपना वृत्तान्त इस प्रकार बताया—
महाराज! शाल्वदेशमें द्युमत्सेन नामके एक धर्मात्मा राजा हैं। उनके सत्यवान् नामक पुत्रका मैंने वरण किया है।’ सावित्रीकी बात सुनकर देवर्षि नारद कहने लगे—‘राजन्! इसने बाल्य-स्वभाववश उचित निर्णय नहीं लिया। यद्यपि द्युमत्सेनका पुत्र सभी गुणोंसे सम्पन्न है, परंतु उसमें एक बड़ा भारी दोष है कि आजके ही दिन ठीक एक वर्षके बाद उसकी मृत्यु हो जायगी।’ देवर्षि नारदकी वाणी सुनकर राजाने सावित्रीसे किसी अन्य वरको ढूँढ़नेके लिये कहा।

सावित्री बोली—‘राजाओंकी आज्ञा एक ही बार होती है। पण्डितजन एक ही बार बोलते हैं

और कन्या भी एक ही बार दी जाती है—ये तीनों बातें बार-बार नहीं होतीं। सत्यवान् दीर्घायु हो अथवा अल्पायु, निर्गुण हो या गुणवान्, मैंने तो उसका वरण कर ही लिया, अब मैं दूसरे पतिको कभी नहीं चुनूँगी। जो कहा जाता है, उसका पहले विचारपूर्वक मनमें निश्चय कर लिया जाता है और जो वचन कह दिया जाय, वही करना चाहिये। इसलिये मैंने जो मनमें निश्चय कर कहा है, मैं वही करूँगी।’ सावित्रीका ऐसा निश्चययुक्त वचन सुनकर नारदजीने कहा—‘राजन्! आपकी कन्याको यही अभीष्ट है तो इस कार्यमें शीघ्रता करनी चाहिये। आपका यह दान-कर्म निर्विघ्न सम्पन्न हो।’ इस तरह कहकर नारदमुनि स्वर्ग चले गये और राजाने भी शुभ मुहूर्तमें सावित्रीका सत्यवान्-से विवाह कर दिया। सावित्री भी मनोवाञ्छित पति प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। दोनों अपने आश्रममें सुखपूर्वक रहने लगे। परंतु नारदमुनिकी वाणी सावित्रीके हृदयमें खटकती रहती थी। जब वर्ष पूरा होनेको आया, तब सावित्रीने विचार किया कि अब मेरे पतिकी मृत्युका समय समीप आ गया है। यह सोचकर सावित्रीने भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीसे तीन रात्रिका व्रत^१ ग्रहण कर लिया और वह भगवती सावित्रीका जप, ध्यान, पूजन करती रही। उसे यह निश्चय था कि आजसे चौथे दिन सत्यवान्की मृत्यु होगी। सावित्रीने तीन दिन-रात नियमसे व्यतीत किये। चौथे दिन देवता-पितरोंको संतुष्ट कर उसने अपने ससुर और सासके चरणोंमें प्रणाम किया।

सत्यवान् वनसे काष्ठ लाया करता था। उस दिन भी वह काष्ठ लेनेके लिये जाने लगा। सावित्री भी उसके साथ जानेको उद्यत हो गयी। इसपर

१-सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः। सकृत् प्रदीयते कन्या त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्॥ (उत्तरपर्व १०२। २९)

२-यह व्रत अन्य वचनोंके अनुसार ज्येष्ठ कृष्ण तथा शुक्ल द्वादशीसे पूर्णिमातक करनेकी परम्परा भी लोकमें प्रसिद्ध है।

सत्यवान्‌ने सावित्रीसे कहा—‘वनमें जानेके लिये अपने सास-ससुरसे पूछ लो।’ वह पूछने गयी। पहले तो सास-ससुरने मना किया, किंतु सावित्रीके बार-बार आग्रह करनेपर उन्होंने जानेकी आज्ञा दे दी। दोनों साथ-साथ वनमें गये। सत्यवान्‌ने वहाँ काष्ठ काटकर बोझ बाँधा, परंतु उसी समय उसके मस्तकमें महान् वेदना उत्पन्न हुई। उसने सावित्रीसे कहा—‘प्रिये! मेरे सिरमें बहुत व्यथा है, इसलिये थोड़ी देर विश्राम करना चाहता हूँ।’ सावित्री अपने पतिके सिरको अपनी गोदमें लेकर बैठ गयी। इतनेमें ही यमराज वहाँ आ गये। सावित्रीने उन्हें देखकर प्रणाम किया और कहा—‘प्रभो! आप देवता, दैत्य, गन्धर्व आदिमेंसे कौन हैं? मेरे पास क्यों आये हैं?’

धर्मराजने कहा—सावित्री! मैं सम्पूर्ण लोकोंका नियमन करनेवाला हूँ। मेरा नाम यम है। तुम्हरे पतिकी आयु समाप्त हो गयी है, परंतु तुम पतिव्रता हो, इसलिये मेरे दूत इसको न ले जा सके। अतः मैं स्वयं ही यहाँ आया हूँ। इतना कहकर यमराजने सत्यवान्‌के शरीरसे अङ्गुष्ठमात्रके पुरुषको खींच लिया और उसे लेकर अपने लोकको चल पड़े। सावित्री भी उनके पीछे चल पड़ी। बहुत दूर जाकर यमराजने सावित्रीसे कहा—‘पतिव्रते! अब तुम लौट जाओ। इस मार्गमें इतनी दूर कोई नहीं आ सकता।’

सावित्रीने कहा—महाराज! पतिके साथ आते हुए मुझे न तो गलानि हो रही है और न कुछ श्रम ही हो रहा है। मैं सुखपूर्वक चली आ रही हूँ। जिस प्रकार सज्जनोंकी गति संत हैं, वर्णश्रिमोंका आधार वेद है, शिष्योंका आधार गुरु और सभी प्राणियोंका आश्रय-स्थान पृथ्वी है, उसी प्रकार

स्त्रियोंका एकमात्र आश्रय-स्थान उसका पति ही है अन्य कोई नहीं*।

इस प्रकार सावित्रीके धर्म और अर्थयुक्त वचनोंको सुनकर यमराज प्रसन्न होकर कहने लगे—‘भामिनि! मैं तुमसे बहुत संतुष्ट हूँ, तुम्हें जो वर अभीष्ट हो वह माँग लो।’ तब सावित्रीने विनयपूर्वक पाँच वर माँगे—(१) मेरे ससुरके नेत्र अच्छे हो जायें और उन्हें राज्य मिल जाय। (२) मेरे पिताके सौ पुत्र हो जायें। (३) मेरे भी सौ पुत्र हों। (४) मेरा पति दीर्घायु प्राप्त करे तथा (५) हमारी सदा धर्ममें दृढ़ श्रद्धा बनी रहे। धर्मराजने सावित्रीको ये सारे वर दे दिये और सत्यवान्‌को भी दे दिया। सावित्री प्रसन्नतापूर्वक अपने पतिको साथ लेकर आश्रममें आ गयी। भाद्रपदकी पूर्णिमाको जो उसने सावित्री-व्रत किया था, यह सब उसीका फल है।

युधिष्ठिरने पुनः कहा—भगवन्! अब आप सावित्री-व्रतकी विधि विस्तारपूर्वक बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! सौभाग्यकी इच्छावाली स्त्रीको भाद्रपद मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको पवित्र होकर तीन दिनके लिये सावित्री-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये। यदि तीन दिन उपवास रहनेकी शक्ति न हो तो त्रयोदशीको नक्तव्रत, चतुर्दशीको अयाचित-व्रत और पूर्णिमाको उपवास करे। सौभाग्यकी कामनावाली नारी नदी, तड़ाग आदिमें नित्य-स्नान करे और पूर्णिमाको सरसोंका उबटन लगाकर स्नान करे।

यथाशक्ति मिट्टी, सोने या चाँदीकी ब्रह्मासहित सावित्रीकी प्रतिमा बनाकर बाँसके एक पात्रमें स्थापित करे और दो रक्त वर्णके वस्त्रोंसे उसे आच्छादित करे। फिर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप,

* सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः । वेदो वर्णश्रिमाणां च शिष्याणां च गतिर्गुरुः ॥

सर्वेषामेव जन्तूनां स्थानमस्ति महीतलम् । भर्तार एव मनुजस्त्रीणां नान्यः ॥ (उत्तरपर्व १०२। ५५-५६)

नैवेद्यसे पूजन करे। कूष्माण्ड, नारियल, ककड़ी, तुरई, खजूर, कैथ, अनार, जामुन, जम्बूर, नारंगी, अखरोट, कटहल, गुड़, लवण, जीरा, अंकुरित अन्न, ससधान्य तथा गलेका डोरा (सावित्री-सूत्र) आदि सब पदार्थ बाँसके पात्रमें रखकर सावित्रीदेवीको अर्पण कर दे। रात्रिके समय जागरण करे। गीत, वाद्य, नृत्य आदिका उत्सव करे। ब्राह्मण सावित्रीकी कथा कहें। इस प्रकार सारी रात्रि उत्सवपूर्वक व्यतीतकर प्रातः ब्रती नारी सब सामग्रीसहित सावित्रीकी प्रतिमा श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणको दान कर दे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराकर स्वयं भी हविष्यान्न-भोजन करे।

राजन्! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासकी अमावास्याको वटवृक्षके नीचे काष्ठभासहित सत्यवान् और महासती

सावित्रीकी प्रतिमा स्थापित कर उनका विधिवत् पूजन करना चाहिये। रात्रिको जागरण आदि कर प्रातः वह प्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधानसे जो स्त्रियाँ यह सावित्री-ब्रत करती हैं, वे पुत्र-पौत्र-धन आदि पदार्थोंको प्राप्तकर चिरकालतक पृथ्वीपर सब सुख भोगकर पतिके साथ ब्रह्मलोकको प्राप्त करती हैं। यह ब्रत स्त्रियोंके लिये पुण्यवर्धक, पापहारक, दुःखप्रणाशक और धन प्रदान करनेवाला है। जो नारी भक्तिसे इस ब्रतको करती है, वह सावित्रीकी भाँति दोनों कुलोंका उद्धार कर पतिसहित चिरकालतक सुख भोगती है। जो इस माहात्म्यको पढ़ते अथवा सुनते हैं, वे भी मनोवाञ्छित फल प्राप्त करते हैं।

(अध्याय १०२)

महाकार्तिकी-ब्रतके प्रसंगमें रानी कलिंगभद्राका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें मध्य देशके वृषस्थल नामक स्थानमें महाराज दिलीपकी कलिंगभद्रा नामकी एक सर्वगुणसम्पन्ना महारानी थी। वह सदा ब्राह्मणोंको दान देती तथा देवार्चन करती रहती। एक समय उसने कार्तिक मासमें छः महीनेका कृत्तिका-ब्रतका संकल्प लिया। वह प्रत्येक पारणामें नित्य पूजन, दान, ब्राह्मण-भोजन, हवन आदिमें तत्पर रहती। एक बार ब्रतमें जब किंचित् कालावशेष था, तब वह रात्रिमें अपने पतिके साथ विश्राम कर रही थी। उसी समय अचानक एक भयंकर सर्पने उसे डॅंस लिया। फलस्वरूप उसके प्राण निकल गये और वह जन्मान्तरमें बकरी बनी, परंतु ब्रतके प्रभावसे उसे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी हुई थी। उसने अपना कृत्तिका-ब्रत फिर ग्रहण किया। वह अपने यूथसे अलग होकर उपवास करने लगी।

एक बार कार्तिक मासमें किसी दूसरेके खेतमें

जब वह चर रही थी, तब उस खेतका स्वामी उसे पकड़कर अपने घर ले आया। जातिस्मर अत्रि ऋषिने उस बकरीको देखा और यह जान लिया कि यह रानी कलिंगभद्रा है। दयाकर उन्होंने उसे बन्धनसे मुक्त करा दिया। वहाँसे छूटकर उसने बेरके पत्ते खाकर शीतल जल पिया और कृत्तिका-ब्रतका पारण किया। ऋषि अत्रि उसे योगज्ञानका उपदेश देकर अपने आश्रमको चले गये और वह योगेश्वरी अपने ब्रतमें पुनः तत्पर हो गयी तथा कुछ कालके अनन्तर उसने योगबलसे अपने प्राण त्याग दिये। तदनन्तर वह गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुई। उस समय उसका नाम योगलक्ष्मी हुआ। गौतममुनिने महर्षि शाण्डिल्यमुनिसे योगलक्ष्मीका विवाह कर दिया। वह भी शाण्डिल्यके घरमें सरस्वती, स्वाहा, शची, अरुन्धती, गौरी, राज्ञी, गायत्री, महालक्ष्मी तथा महासतीकी भाँति सुशोभित हुई। वह देवता,

पितर और अतिथियोंके सत्कारमें नित्य लगी रहती। ब्राह्मणोंको भोजन कराती।

एक दिन महर्षि वहाँ आये और उन्होंने योगबलसे सारा वृत्तान्त जान लिया और पूछा—‘महाभागे योगलक्ष्मि! कृत्तिकाएँ कितनी हैं?’ यह सुनकर महासती योगलक्ष्मीको भी पूर्ववृत्त स्मरण हो आया और उसने कहा—‘महायोगिन्! कृत्तिकाएँ छः हैं।’ यह सुनकर दयालु अत्रिमुनिने पुनः उसे मन्त्र और कृत्तिका-ब्रतका उपदेश दिया, जिसके करनेसे उसने चिरकालतक संसारका सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृत्तिका-ब्रतकी क्या विधि है? इसे आप बतायें।

भगवान् कहने लगे—महाराज! कार्तिकी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्रमें बृहस्पति या सोमवार होनेपर महाकार्तिकीका योग होता है। महाकार्तिकी तो बहुत वर्षोंमें और बड़े पुण्यसे प्राप्त होती है। इसलिये साधारण कार्तिकी पूर्णिमाको भी उपवास करे। कार्तिकी पूर्णिमाको प्रातः ही दन्तधावन आदि कर नक्षत्रब्रतका अथवा उपवासका नियम ग्रहण करे। पुष्कर, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, नैमिष, शालग्राम, कुशावर्त, मूलस्थान, सकुन्तल, गोकर्ण, अर्बुद, अमरकण्टक आदि किसी पवित्र तीर्थमें अथवा अपने घरमें ही स्नान करे। फिर देवता, ऋषि, पितर और अतिथिका पूजन कर हवन करे।

सायंकालके समय घृत और दुग्धसे पूर्ण छः पात्रोंमें सुवर्ण, चाँदी, रत्न, नवनीत, अन्नकण तथा पिष्टसे छः कृत्तिकाओंकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन्हें रक्तसूत्रसे आवेष्टित कर सिंदूर, कुंकुम, चन्दन, चमेलीके पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनका पूजन कर कृत्तिकाओंकी मूर्तियोंको ब्राह्मणको दान कर दे। दान करते समय यह मन्त्र पढ़े—

ॐ सप्तर्षिदारा हृनलस्य वल्लभा

या ब्रह्मणा रक्षितयेति युक्ताः।

तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो

ममापि सुप्रीततरा भवन्तु॥

(उत्तरपर्व १०३। ३७)

ब्राह्मण भी मूर्ति ग्रहण करते समय इस प्रकार मन्त्रोच्चारण करे—

धर्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः।

कृत्तिका दुर्गसंसारात् तारयन्त्वावयोः कुलम्॥

(उत्तरपर्व १०३। ३९)

तदनन्तर ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर जाय और छः कदमतक यजमान उसके पीछे चले। इस प्रकार जो पुरुष कृत्तिका-ब्रत करता है, वह सूर्यके समान प्रकाशमान विमानमें बैठकर नक्षत्रलोकमें जाता है। जो स्त्री इस ब्रतको करती है, वह भी अपने पतिसहित नक्षत्रलोकमें जाकर बहुत कालतक दिव्य भोगोंका उपभोग करती है। (अध्याय १०३)

मनोरथपूर्णिमा तथा अशोकपूर्णिमाब्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! फाल्गुनकी पूर्णिमासे संवत्सरपर्यन्त किया जानेवाला एक ब्रत है, जो मनोरथपूर्णिमाके नामसे विख्यात है। इस ब्रतके करनेसे ब्रतीके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। ब्रतीको चाहिये कि वह फाल्गुन मासकी पूर्णिमाको स्नान आदि कर लक्ष्मीसहित भगवान् जनार्दनका

पूजन करे और चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय जनार्दनका स्मरण करता रहे और पाखण्ड, पतित, नास्तिक, चाण्डाल आदिसे सम्भाषण न करे, जितेन्द्रिय रहे। रात्रिके समय चन्द्रमामें नारायण और लक्ष्मीकी भावना कर अर्ध्य प्रदान करे। बादमें तैल एवं लवणरहित भोजन करे। इसी प्रकार चैत्र, वैशाख,

ज्येष्ठ—इन तीन महीनोंमें भी पूजन एवं अर्घ्य प्रदान कर ब्रती प्रथम पारणा करे। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन—इन चार महीनोंकी पूर्णिमाको श्रीसहित भगवान् श्रीधरका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और पूर्ववत् दूसरी पारणा करे। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ—इन चार महीनोंमें भूतिसहित भगवान् केशवका पूजन कर चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे और तीसरी पारणा सम्पन्न करे। प्रत्येक पारणाके अन्तमें ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। प्रथम पारणाके चार महीनोंमें पञ्चगव्य, दूसरी पारणाके चार महीनोंमें कुशोदक और तीसरी पारणामें सूर्यकिरणोंसे तस जलका प्राशन करे। रात्रिके समय गीत-वाद्यद्वारा भगवान्‌का कीर्तन करे। प्रतिमास जलकुम्भ, जूता, छतरी, सुवर्ण, वस्त्र, भोजन और दक्षिण ब्राह्मणको दान करे। देवताओंके स्वामी भगवान्‌की मार्गशीर्ष आदि बारह महीनोंमें क्रमशः केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर या हृषीकेश, राम, पद्मनाभ अथवा दामोदर और देवदेवेश—इन नामोंका कीर्तन करनेवाला व्यक्ति दुर्गतिसे उद्धार पा जाता है। यदि प्रतिमास दान देनेमें समर्थ न हो तो वर्षके अन्तमें यथाशक्ति सुवर्णका चन्द्रबिम्ब बनाकर फल, वस्त्र आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको निवेदित कर दे। इस प्रकार ब्रत करनेवाले पुरुषको अनेक जन्मपर्यन्त इष्टका वियोग नहीं होता। उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और वह पुरुष नारायणका स्मरण करता हुआ दिव्यलोक प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं अशोकपूर्णिमा-ब्रतका वर्णन करता हूँ।

इस ब्रतको करनेसे मनुष्यको कभी शोक नहीं होता। फाल्गुनकी पूर्णिमाको अङ्गोंमें मृत्तिका लगाकर नदी आदिमें स्नान करे। मृत्तिकाकी एक वेदी बनाकर उसपर भगवान् भूधर और अशोका नामसे धरणीदेवीका पुष्प, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। पूजनके अनन्तर हाथ जोड़कर इस प्रकार प्रार्थना करे—‘धरणीदेवि! आप सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करनेवाली हैं। आपको जिस प्रकार भगवान् जनार्दनने रसातलसे लाकर प्रतिष्ठित करके शोकरहित किया है, उसी प्रकार आप मुझे भी सभी शोकोंसे मुक्त कर दें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें। इस प्रकार प्रार्थना कर रात्रिमें चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे। उस दिन उपवास रखे अथवा रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। फाल्गुन आदि चार-चार मासमें एक-एक पारणा करे और प्रत्येक पारणाके अन्तमें विशेष पूजा और जागरण करे। प्रथम पारणामें धरणी, द्वितीयमें मेदिनी और तृतीयमें वसुन्थरा नामसे पूजन करे। वर्षके अन्तमें सवत्सा गौ, भूमि, वस्त्र, आभूषण आदि ब्राह्मणोंको दान करे। यह ब्रत पातालमें स्थित धरणीदेवीने किया था, तब भगवान्‌ने वाराह रूप धारण कर उनका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि ‘धरणीदेवि! तुम्हारे इस ब्रतसे मैं परम संतुष्ट हूँ, जो कोई भी पुरुष-स्त्री भक्तिसे इस ब्रतको करते हुए मेरा पूजन करेंगे और यथाविधि पारणा करेंगे, वे जन्म-जन्ममें सब प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त हो जायेंगे और तुम्हारे समान ही कल्याणके भाजन हो जायेंगे।’ (अध्याय १०४-१०५)

अनन्तब्रत-माहात्म्यमें कार्तवीर्यके आविर्भावका वृत्तान्त

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! भक्तिपूर्वक नारायणकी आराधना करनेसे सभी मनोवाञ्छित फल प्राप्त हो जाते हैं, किंतु स्त्री-पुरुषोंके लिये संतानहीन होनेसे अधिक कोई दुःख और शोक नहीं है, परंतु कुपुत्रता तो और भी महान् दुःखका कारण है। योग्य संतान सब सुखोंका हेतु है। जगत्में वे धन्य हैं, जो सर्वगुणसम्पन्न, आरोग्य, बलवान्, धर्मज्ञ, शास्त्रवेत्ता, दीन-अनाथोंके आश्रय, भाग्यवान्, हृदयको आनन्द देनेवाले और दीर्घायु पुत्र प्राप्त करते हैं। प्रभो! मैं ऐसा ब्रत सुनना चाहता हूँ कि जिसके करनेसे ऐसे शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न हों।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस सम्बन्धमें एक प्राचीन इतिहास प्रसिद्ध है। हैहयवंशमें माहिष्यती (महेश्वर) नगरीमें कृतवीर्य नामका एक महान् राजा हुआ। उसकी एक हजार रानियोंमें प्रधान तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न शीलधना नामकी एक रानी थी। उसने एक दिन पुत्र-प्राप्तिके लिये ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीसे पूछा। मैत्रेयीने उसको श्रेष्ठ अनन्तब्रतका उपदेश दिया और कहा—‘शीलधने! स्त्री या पुरुष जो कोई भी भगवान् जनार्दनकी आराधना करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। मार्गशीर्ष मासमें जिस दिन मृगशिरा नक्षत्र हो उस दिन स्नान कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदिसे अनन्तभगवान्‌के वाम चरणका पूजन करे और प्रार्थना कर एकाग्रचित्त हो बारम्बार प्रणाम कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे। रात्रिके समय तैल-क्षारवर्जित भोजन करे। इसी विधिसे पौष मासमें पुष्य नक्षत्रमें भगवान्‌के बायें कटिप्रदेशका पूजन करे। माघ मासमें मघा नक्षत्रमें भगवान्‌की बायीं भुजाका पूजन करे। फाल्गुनमें फाल्गुनी नक्षत्रमें बायें स्कन्धका पूजन करे। इन

चार महीनोंमें गोमूत्रका प्राशन करे और सुवर्णसहित तिल ब्राह्मणको दान दे।’

चैत्रमें चित्रा नक्षत्रमें भगवान्‌के दाहिने कन्धेका पूजन करे, वैशाखमें विशाखा नक्षत्रमें दाहिनी भुजाका पूजन करे, ज्येष्ठमें ज्येष्ठा नक्षत्रमें दाहिने कटिप्रदेशका पूजन करे। इसी प्रकार आषाढ़ मासमें आषाढ़ा नक्षत्रमें दाहिने पैरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें पञ्चगव्यका प्राशन करे। ब्राह्मणको सुवर्ण-दान दे और रात्रिको भोजन करे।

श्रावण मासमें श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुके दोनों चरणोंका पूजन करे। भाद्रपद मासमें उत्तराभाद्रपद नक्षत्रमें गुह्या-स्थानका पूजन करे। आश्विनमें अश्विनी नक्षत्रमें हृदयका पूजन करे और कार्तिक मासमें कृत्तिका नक्षत्रमें अनन्तभगवान्‌के सिरका पूजन करे। इन चार महीनोंमें घृतका प्राशन करे और घृत ही ब्राह्मणको दान दे।

मार्गशीर्ष आदि प्रथम चार मासोंमें घृतसे, द्वितीय चैत्र आदि चार मासोंमें शालिधान्यसे और तृतीय श्रावण आदि चार मासोंमें अनन्तभगवान्‌की प्रीतिके लिये दुग्धसे हवन करे। हविष्यान्नका भोजन करना सभी मासोंमें प्रशस्त माना गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें तीन पारणा कर वर्षके अन्तमें सुवर्णकी अनन्तभगवान्‌की मूर्ति और चाँदीके हल-मूसल बनाये। बादमें मूर्तिको ताम्रपीठपर स्थापित कर दोनों ओर हल, मूसल रखकर पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारोंसे पूजन करे। नक्षत्र, देवता, मास, संवत्सर और नक्षत्रोंके अधिपति चन्द्रमाका भी विधिपूर्वक पूजन करे। अनन्तर पुराणवेत्ता, धर्मज्ञ, शान्तप्रिय ब्राह्मणका वस्त्र-आभूषण आदिसे पूजन कर यह सब सामग्री उसे अर्पण कर दे और ‘अनन्तः प्रीयताम्’ यह वाक्य कहे। पीछे अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन, दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट

करे। इस विधिसे जो इस अनन्तव्रतको सम्पन्न करता है, वह सभी अभीष्ट फलोंको प्राप्त करता है। शीलधने! यदि तुम उत्तम पुत्रकी इच्छा रखती हो तो विधिपूर्वक श्रद्धासे इस अनन्तव्रतको करो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! इस प्रकार मैत्रेयीसे उपदेश प्राप्त कर शीलधना भक्तिपूर्वक व्रत करने लगी। व्रतके प्रभावसे भगवान् अनन्त संतुष्ट हुए और उन्होंने उसे एक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया। पुत्रके जन्म होते ही आकाश निर्मल हो गया। आनन्ददायक वायु प्रवाहित होने लगी। देवगण दुन्दुभि बजाने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी, सारे जगत्‌में मङ्गल होने लगा। गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। सभी लोगोंका मन धर्ममें आसक्त हो गया। राजा कृतवीर्यने अपने पुत्रका नाम अर्जुन रखा। कृतवीर्यका पुत्र होनेसे वही अर्जुन कार्तवीर्य कहलाया। कार्तवीर्यर्जुनने कठिन तप किया और विष्णुभगवान्‌के अवतार

श्रीदत्तात्रेयजीकी आराधना की। भगवान् दत्तात्रेयने यह वर दिया कि ‘अर्जुन! तुम चक्रवर्ती सम्राट् होओगे। जो व्यक्ति सायंकाल और प्रातः ‘नमोऽस्तु कार्तवीर्याय’ यह वाक्य उच्चारण करेगा, उसे प्रस्थभर तिल-दानका पुण्य प्राप्त होगा और जो तुम्हारा स्मरण करेंगे, उन पुरुषोंका द्रव्य कभी नष्ट नहीं होगा।’ भगवान्‌से वर प्राप्त कर राजा कार्तवीर्य धर्मपूर्वक सप्तद्वीपा वसुमतीका पालन करने लगे। उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ सम्पन्न किये और शत्रुओंपर विजय प्राप्त की। इस तरह रानी शीलधनाने अनन्तव्रतके प्रभावसे अति उत्तम पुत्र प्राप्त किया, पिताको पुत्रजनित कोई भी दुःख नहीं हुआ। जो पुरुष अथवा स्त्री इस कार्तवीर्यके जन्मको श्रवण करते हैं, वे सात जन्मपर्यन्त संतानका दुःख प्राप्त नहीं करते। जो इस अनन्त-व्रतको भक्तिसे करता है, वह उत्तम संतान और ऐश्वर्यको प्राप्त करता है। (अध्याय १०६)

मास-नक्षत्र-व्रतके माहात्म्यमें साम्भरायणीकी कथा

राजा युधिष्ठिरने कहा—प्रभो! ऐश्वर्य आदिके प्राप्त न होनेसे इतना कष्ट नहीं होता, जितना प्राप्त होकर नष्ट हो जानेसे होता है। इसलिये आप ऐसा कोई व्रत बतायें, जिसके करनेसे ऐश्वर्य-भ्रंश और इष्ट-वियोग न हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुए सुखका फिर नाश हो जाता है। इसके लिये श्रेष्ठ पुरुषोंको चाहिये कि वे बारह मासोंके बारह नक्षत्रोंमें भगवान् अच्युतकी विविध उपचारोंसे पूजा करें। इस नक्षत्र-व्रतको प्रथम कार्तिक मासकी कृत्तिकामें करना चाहिये। इसी प्रकार मार्गशीर्ष मासके मृगशिरा नक्षत्रमें, पौष मासके पुष्य नक्षत्रमें तथा माघ मासके मध्या नक्षत्रमें करना चाहिये। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष

तथा माघ—इन चार महीनोंमें खिचड़ीका भोग लगाये और यही ब्राह्मणको भोजन भी कराये। फाल्गुन आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें संयाव (गोज्जिया)-का नैवेद्य लगाये और आषाढ़ आदि चार महीनोंके नक्षत्रोंमें पायसका नैवेद्य लगाये। पञ्चगव्यका प्राशन करे और भक्तिसे नारायणका अर्चन कर इस प्रकार प्रार्थना करे—
नमो नमस्तेऽच्युत मे क्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्।
ऐश्वर्यविज्ञादि तथाऽक्षयं मे क्षयं च मा संततिरभ्युपैतु ॥
यथाच्युतस्त्वं परतः परस्पात् स ब्रह्मभूतः परतः परात्मा ।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं त्वं हरस्व पापं च तथाप्रमेय ॥

अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् ।
तदक्षयममेयात्मन् कुरुत्वं पुरुषोत्तम ॥

(उत्तरपर्व १०७। १२—१४)

‘अच्युत ! आपको बार-बार नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश हो जाय, पुण्यकी वृद्धि हो, मेरे ऐश्वर्य, वित्त आदि अक्षय हों तथा मेरी संतति कभी नष्ट न हो। जिस प्रकारसे आप परसे परे ब्रह्मभूत और उससे भी परे अच्युत परमात्मा हैं, उसी प्रकार आप मुझे अच्युत कर दें। अप्रमेय ! आप मेरे पापोंको नष्ट कर दें। पुरुषोत्तम ! अच्युत, अनन्त, गोविन्द, अमेयात्मन् ! मेरी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करें, मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों।’

अनन्तर रात्रिके समय भगवान्‌का प्रसाद ग्रहण करे। वर्ष पूरा होनेपर जब भगवान् अच्युत जग जायँ, तब घृतपूर्ण ताम्रपात्र और दक्षिणा ब्राह्मणको देकर ‘अच्युतः प्रीयताम्’ यह वाक्य कहे। इस प्रकार सात वर्षतक नक्षत्र-ब्रत करके सुवर्णकी अच्युतकी प्रतिमा बनवाकर स्थापित करे और उसके सामने भगवान्‌की परम भक्ता और पतिव्रता साम्भरायणी ब्राह्मणीकी चाँदीकी मूर्ति बनाकर स्थापित करे। फिर उन दोनोंकी गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे पूजा कर क्षमा-प्रार्थना करे और सब सामग्री ब्राह्मणको दान कर दे। इस विधिसे जो श्रद्धापूर्वक ब्रत करता है और भगवान् अच्युतका पूजन करता है, उसके धन, संतति, ऐश्वर्य आदिका कभी क्षय नहीं होता। उसकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि सर्वथा अक्षय होनेके लिये इस मास-नक्षत्र-ब्रतका पालन करे।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपने साम्भरायणीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करनेको कहा है, ये साम्भरायणीदेवी कौन हैं ? आप इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! ऐसा सुना जाता है कि स्वर्गमें साम्भरायणी नामकी एक तपोधना कठिन ब्रतोंका आचरण करनेवाली प्रख्यात

सिद्धा नारी थी, जो देवताओंकी भी शंकाओंका समाधान कर देती थी। एक समय देवराज इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे पूछा—‘भगवन् ! हमारे पहले जितने इन्द्र हो गये हैं, उनका क्या आचरण और चरित्र था, आप कृपाकर इसका वर्णन कीजिये।’

देवगुरु बृहस्पति बोले—‘देवेन्द्र ! सब इन्द्रोंका वृत्तान्त तो मुझे नहीं मालूम, केवल अपने समयमें हुए इन्द्रोंके विषयमें मुझे जानकारी है।’ इन्द्रने कहा—‘गुरो ! आपके बिना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें।’ बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे—‘पुरन्दर ! इस विषयको तपस्विनी धर्मज्ञा साम्भरायणी— देवीसे ही पूछो।’ यह सुनकर बृहस्पतिको साथ लेकर देवराज इन्द्र साम्भरायणीके पास गये। साम्भरायणीने बड़े सत्कारसे उनको बैठाया और अर्घ्यादिसे पूजन कर विनयपूर्वक आगमनका प्रयोजन पूछा। इसपर बृहस्पतिजी बोले—‘साम्भरायणि ! देवराज इन्द्रको प्राचीन वृत्तान्त सुननेका बड़ा कौतूहल है। यदि आप विगत इन्द्रोंका चरित्र जानती हों तो उसे बतायें।’

साम्भरायणी बोली—‘देवगुरो ! जितने इन्द्र हो चुके हैं, सबका वृत्तान्त मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैंने बहुत-से मनुओं, देवसृष्टियों और सप्तरियोंको देखा है। मनुपुत्रोंको भी जानती हूँ और सब मन्वन्तरोंका चरित्र मुझे ज्ञात है। जो आप पूछें, वही मैं बताऊँगी। साम्भरायणीका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र और देवगुरु बृहस्पतिने स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष आदि मनुओं, मन्वन्तरों और व्यतीत इन्द्रोंका वृत्तान्त उससे पूछा। साम्भरायणीने सम्पूर्ण वृत्तान्तोंका यथावत् वर्णन किया। राजन् ! उसने एक अत्यन्त आश्वर्यकी बात यह बतलायी कि पूर्वकालमें शंकुकर्ण नामका एक बड़ा प्रतापी दैत्य हुआ। वह लोकपालोंको जीतकर स्वर्गमें इन्द्रको जीतने आया और निर्भय

हो इन्द्रके भवनमें प्रविष्ट हो गया। शंकुकर्णको देखकर इन्द्र भयभीत होकर छिप गये और वह इन्द्रके आसनपर बैठ गया। उसी समय देवताओंके साथ विष्णु भी वहाँ आये। भगवान्‌को देखकर शंकुकर्ण अत्यन्त प्रसन्न हो गया और उसने बड़े स्नेहसे भगवान्‌का आलिङ्गन किया। भगवान् उसकी नियतको समझ रहे थे, अतः उन्होंने भी उसका आलिङ्गन कर ऐसा निष्पीडन किया कि उसके सब अस्थिपञ्चर चूर-चूर हो गये और वह घोर शब्द करता हुआ मृत्युको प्राप्त हो गया। दैत्यको मरा जानकर इन्द्र भी उपस्थित हो गये और विष्णुभगवान्‌की स्तुति करने लगे।'

साम्भरायणीने पुनः कहा—देवराज! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रोंसे देखा था।

इन्द्रने साम्भरायणीसे पूछा—देवि! इतने प्राचीन वृत्तान्तको आप कैसे जानती हैं?

साम्भरायणीने कहा—देवेन्द्र! स्वर्गका कोई

ऐसा वृत्तान्त नहीं है, जो मैं न जानती होऊँ।

इन्द्रने पूछा—धर्मजे! आपने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया है, जिसके प्रभावसे आपको अक्षय स्वर्ग प्राप्त हुआ?

साम्भरायणी बोली—मैंने प्रतिमास मास-नक्षत्रोंमें सात वर्षपर्यन्त भगवान् अच्युतका विधिवत् पूजन और उपवास किया है। यह सब उसी पुण्य-कर्मका फल है। जो पुरुष अक्षय स्वर्गवास, इन्द्रपद, ऐश्वर्य, संतति आदिकी इच्छा करे, उसे अवश्य ही भगवान् विष्णुकी आराधना करनी चाहिये। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ भगवान् विष्णुकी आराधनासे प्राप्त होते हैं। इतना सुनकर देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्र साम्भरायणीपर बहुत प्रसन्न हुए और दोनों भक्तिपूर्वक उसके द्वारा बताये गये मास-नक्षत्र-व्रतका पालन करने लगे।

(अध्याय १०७)

वैष्णव एवं शैव नक्षत्रपुरुष-व्रतोंका विधान

राजा युधिष्ठिरने पूछा—यदुसत्तम! पुरुष और स्त्रियोंको उत्तम रूप किस कर्मके करनेसे प्राप्त होता है? आप सर्वाङ्गसुन्दर श्रेष्ठ रूपकी प्राप्तिका उपाय बताइये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यही बात अरुन्धती वसिष्ठजीसे पूछी थीं और महर्षि वसिष्ठने उनसे कहा था—‘प्रिये! विष्णुभगवान्‌की बिना आराधना और पूजन किये उत्तम रूप प्राप्त नहीं हो सकता। जो पुरुष अथवा स्त्री उत्तम रूप, ऐश्वर्य और संतानकी अभिलाषा करे, उसे नक्षत्रपुरुषरूप भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये।’ इसपर अरुन्धतीने नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान पूछा। वसिष्ठजीने कहा—‘प्रिये! चैत्र माससे लेकर भगवान्‌के पाद आदि अङ्गोंका

उपवासपूर्वक पूजन करे। स्नानादिसे पवित्र होकर नक्षत्रपुरुषरूपी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनके पादसे सिरतकके अङ्गोंका इस विधिसे पूजन करे। मूल नक्षत्रमें दोनों पैर, रोहिणी नक्षत्रमें दोनों जंघा, अश्विनीमें दोनों घुटनों, आषाढ़में दोनों ऊरुओं, दोनों फाल्गुनीमें गुह्यस्थान, कृत्तिकामें कटिप्रदेश, दोनों भाद्रपदाओंमें पार्श्वभाग और टखना, रेवतीमें दोनों कुक्षि, अनुराधामें वक्षःस्थल, धनिष्ठामें पीठ, विशाखामें दोनों भुजाएँ, हस्तमें दोनों हाथ, पुनर्वसुमें अंगुली, आश्लेषामें नख, ज्येष्ठामें ग्रीवा, श्रवणमें कर्ण, पुष्यमें मुख, स्वातीमें दाँत, शतभिषामें मुख, मधामें नासिका, मृगशिरामें नेत्र, चित्रामें ललाट, भरणीमें सिर और आर्द्रमें केशोंका पूजन करे। उपवासके दिन

तैलाभ्यङ्ग न करे। नक्षत्रके देवताओं और नक्षत्रराज चन्द्रमाका भी प्रति नक्षत्रमें पूजन करे और विद्वान् ब्राह्मणको भोजन कराये। यदि व्रतमें अशौच आदि हो जाय तो दूसरे नक्षत्रमें उपवास कर पूजन करे। इस प्रकार माघ मासमें व्रत पूरा हो जानेपर उद्यापन करे। अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णका नक्षत्रपुरुष बनाकर उसे अलंकृत करे, एक उत्तम शय्यापर प्रतिमा स्थापित करे और ब्राह्मण-दम्पतिको शय्यापर बैठाकर वस्त्राभूषण आदिसे उनका पूजन कर सप्तधान्य, सवत्सा गौ, छतरी, जूता, घृतपात्र और दक्षिणासहित वह नक्षत्रपुरुषकी प्रतिमा उन्हें दान कर दे। श्रद्धापूर्वक इस व्रतके करनेसे सर्वाङ्गसुन्दर रूप, मनकी प्रसन्नता, आरोग्य, उत्तम संतान, मधुर वाणी और जन्म-जन्मान्तरतक अखण्ड ऐश्वर्य प्राप्त होता है और सभी पाप निवृत्त हो जाते हैं। इतनी कथा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—‘महाराज! इस प्रकार नक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान वसिष्ठजीने अरुन्धतीको बतलाया। वही मैंने आपको सुनाया। जो इस विधिसे नक्षत्ररूप भगवान् का पूजन करते हैं, वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं।’

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! शिवभक्तोंके कल्याणके लिये आप शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका विधान बतायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! शैवनक्षत्र-पुरुष-व्रतके दिन भगवान् शंकरके अङ्गोंका पूजन और उपवास अथवा नक्षत्र करना चाहिये। फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षसे जब हस्त नक्षत्र हो,

उस दिनसे शैवनक्षत्रपुरुष-व्रतका नियम ग्रहण करना चाहिये और रातमें भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें भगवान् शंकरके सत्ताईस नामोंसे उनके चरणसे लेकर सिरतककी क्रमशः अङ्ग-पूजा करनी चाहिये। रात्रिके समय तैल-क्षाररहित भोजन करे। प्रतिनक्षत्रमें सेरभर शालि-चावल और घृतपात्र ब्राह्मणको प्रदान करे। दो नक्षत्र एक दिन हो जायें तो दो अङ्गोंका दो नामोंसे एक ही दिन पूजन करे। इस प्रकार व्रतकर पारणामें ब्राह्मणोंको भोजन, दक्षिणा आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। सुवर्णकी शिव-पार्वतीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम शय्यापर स्थापित करे। बादमें सभी उपचारोंसे पूजनकर कपिला गौ, बर्तन, छत्र, चामर, दर्पण, जूता, वस्त्र, आभूषण, अनुलेपन आदिसहित वह प्रतिमा ब्राह्मणको निवेदित कर दे। बादमें प्रदक्षिणा कर विसर्जन करे और शय्या, गौ आदि सब सामग्री ब्राह्मणके घर पहुँचा दे। महाराज! दुश्शील, दाम्भिक, कुतार्किक, निन्दक, लोभी आदिको यह व्रत नहीं बताना चाहिये। शान्त-स्वभाव, सद्गुणी, शिवभक्त इस व्रतके अधिकारी हैं। इस व्रतके करनेसे महापातक भी निवृत्त हो जाते हैं। जो स्त्री पतिकी आज्ञा प्राप्त कर इस व्रतको सम्पन्न करती है, उसे कभी इष्ट-वियोग नहीं होता। जो इस व्रतके माहात्म्यको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, उसके भी पितरोंका नरकसे उद्धार हो जाता है।

(अध्याय १०८-१०९)

भग्न-व्रतकी प्रायश्चित्त-विधि तथा पण्यस्त्री-व्रत

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! यदि मनुष्य नक्षत्रपुरुष-व्रतको ग्रहण कर उसे न कर सके तो किस कर्मके द्वारा वह चीर्ण (कृत) माना जाता है, इसे बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण बात है। आपके आग्रहसे मैं इसे बतला रहा हूँ। अनेक प्रकारके उपद्रव, मद, मोह या असावधानी आदिसे यदि व्रत-भग्न हो जायें तो उनकी पूर्णताके लिये यह व्रत करना चाहिये। इस व्रतके करनेसे खण्डित-व्रत पूर्ण फल देनेवाले हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। जिस देवी-देवताका व्रत-भग्न हो जाय, उसकी सुवर्ण अथवा चाँदीकी प्रतिमा बनाकर उस व्रतके दिन ब्राह्मणको बुलाकर प्रतिमाको पञ्चामृतसे स्नान कराये, बादमें जलपूर्ण कलशके ऊपर प्रतिमाको प्रतिष्ठितकर गन्थ, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य आदिसे उनका पूजन करे। अनन्तर देवताके उद्देश्यसे नाममन्त्र (ॐ अमुक देवाय नमः) द्वारा अर्घ्य प्रदान करे तथा फिर व्रतकी पूर्णता एवं व्रत-भग्न-दोषकी निवृत्तिके लिये इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे और भगवान्‌की शरण ग्रहण करे—

उपसन्नस्य दीनस्य प्रायश्चित्तकृताञ्जलेः।
शरणं च प्रपन्नस्य कुरुच्चाद्य दयां प्रभो॥
परत्र भयभीतस्य भग्नखण्डव्रतस्य च।
कुरु प्रसादं सम्पूर्ण व्रतं सम्पूर्णमस्तु मे॥
तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते।
तव प्रसादादेवेश सर्वमच्छिद्रमस्तु नः॥

(उत्तरपर्व ११०। १३—१५)

तात्पर्य यह है कि 'प्रभो! मैं आपकी शरण हूँ मुझपर आप दया करें। किसी भी प्रकारसे मेरे द्वारा किये गये व्रत, तप इत्यादि कर्मोंमें जो कोई भी त्रुटि, अपराध एवं च्युति हो गयी हो,

हे देवदेवेश! आपके अनुग्रहसे वे सब दोष दूर हो जायें और मेरा व्रत पूर्ण हो जाय। आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर दिक्षालोंको अर्घ्य प्रदान कर मुख्य देवताकी अङ्ग-पूजा करे और अन्तमें फिर प्रार्थना करे। ब्राह्मणका पूजन करे और ब्राह्मण भी व्रतकी पूर्णताके लिये इस प्रकार आशीर्वाद प्रदान करे—

वाक्सम्पूर्ण मनः पूर्ण पूर्ण कायव्रतेन ते।
सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः॥
ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः।
सर्वदेवमया विप्रा नैतद्वचनमन्यथा॥
जलधिः क्षारतां नीतः पावकः सर्वभक्षताम्।
सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः॥
ब्राह्मणानां तु वचनाद् ब्रह्महत्या प्रणश्यति।
अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्यते नात्र संशयः॥

व्यासवाल्मीकिवचनाद् ब्राह्मणवचनाच्य गर्गगौतम-पराशरधौम्याङ्गिरसवसिष्ठनारदादिमुनिवचनात् सम्पूर्ण भवतु ते व्रतम्॥ (उत्तरपर्व ११०। २३—२७)

यजमान भी ब्राह्मणको बिदा कर सब सामग्री उसके घर भेज दे। पीछे पञ्चयज्ञ कर भोजन करे। इस सम्पूर्ण व्रतको जो एक बार भी भक्तिसे करता है, वह खण्डित-व्रतका सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है और व्रत-भग्नके पापसे मुक्त हो जाता है। इस व्रतको जो करता है, वह धन, रूप, आरोग्य, कीर्ति आदि प्राप्त कर सौ वर्षपर्यन्त भूमिपर सुख भोगकर स्वर्ग प्राप्त करता है और अन्तमें मोक्षको प्राप्त होता है। महाराज! प्रायश्चित्तरूप इस सम्पूर्ण व्रतको प्रसन्न हो महर्षि गर्जीने मुझे बताया था और बाल्यावस्थामें मैंने भी इसे किया था। इसलिये राजन्! आप भी इस व्रतको करें, जिससे जन्मान्तरोंमें भी किये खण्डित व्रत पूर्ण हो जायें।

राजन्! इसी प्रकार एक अन्य पण्यस्त्री-व्रत

है, जो रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आनेपर प्रारम्भ किया जाता है तथा उसमें विधिपूर्वक विष्णुस्वरूप कामदेवका पूजन किया जाता है, अन्तमें सभी उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा विष्णुप्रतिमा ब्राह्मणको दान कर दी जाती

है। ब्रती स्त्रीको चाहिये कि वह सदाचारके नियमोंका पालन करती रहे। इस ब्रतके करनेसे पण्यस्त्रियों—जैसी अधम स्त्रियोंका भी उद्धार हो जाता है।

(अध्याय ११०-१११)

वृत्ताक-त्याग एवं ग्रह-नक्षत्र-ब्रतकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं वृत्ताक (बैगन)–के त्यागकी विधि बता रहा हूँ। ब्रतीको चाहिये कि एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास वृत्ताकका त्याग कर उद्यापन करे। उसके बाद संकल्पपूर्वक भरणी अथवा मघा नक्षत्रमें उपवासकर एक स्थण्डिल बनाकर उसपर अक्षत-पुष्टियोंसे यमराजका तथा उनके परिकरोंका आवाहन कर गन्ध, पुष्य, नैवेद्य आदि उपचारोंसे यम, काल, नील, चित्रगुप्त, वैवस्वत, मृत्यु तथा परमेष्ठी—इन पृथक्-पृथक् नामोंसे विधिपूर्वक पूजन करे। तदनन्तर अग्रिस्थापन कर तिल और घीसे इन्हीं नाम-मन्त्रोंके द्वारा हवन करे। तदनन्तर स्विष्टकृत् एवं प्रायश्चित्त होम करे। आभूषण, वस्त्र, छाता, जूता, काला कम्बल, काला बैल, काली गाय और दक्षिणाके साथ सोनेका बना हुआ वृत्ताक ब्राह्मणको दान कर दे और अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराये। ऐसा करनेसे पौण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है। साथ ही ब्रतीको सात जन्मतक यमका दर्शन नहीं करना पड़ता और वह दीर्घ समयतक स्वर्गमें समादृत होकर निवास करता है।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज! अब मैं ग्रह-नक्षत्र-ब्रतकी विधि बतलाता हूँ, जिसके करनेसे सभी क्रूर ग्रह शान्त हो जाते हैं और लक्ष्मी, धृति, तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है। जिस रविवारको हस्त नक्षत्र हो उस दिन भगवान् सूर्यका पूजन कर नक्षत्रत करना चाहिये।

इस नक्षत्रतको सात रविवारतक भक्तिपूर्वक करके अन्तमें भगवान् सूर्यकी सुवर्णमयी प्रतिमा बनाकर ताप्रपात्रमें स्थापित करे। फिर उसे घीसे स्नान कराकर रक्त चन्दन, रक्त पुष्य, रक्त वस्त्र, धूप, दीप आदिसे पूजनकर लड्डुका भोग लगाये। जूता, छाता, दो लाल वस्त्र और दक्षिणाके साथ वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे। इस ब्रतको करनेसे आरोग्य, सम्पत्ति और संतानकी प्राप्ति होती है।

चित्रा नक्षत्रसे युक्त सोमवारसे आरम्भ कर सात सोमवारतक नक्षत्रत करके अन्तमें चन्द्रमाकी चाँदीकी प्रतिमा बनाकर, चाँदी अथवा काँसेके पात्रमें स्थापित कर श्वेत पुष्य, श्वेत वस्त्र आदिसे उनका पूजन करे। दध्योदनका भोग लगाकर जूता, छाता तथा दक्षिणासहित वह मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान करे। यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराये, इससे चन्द्रमा प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे दूसरे सभी ग्रह प्रसन्न हो जाते हैं।

स्वाती नक्षत्रसे युक्त भौमवारसे आरम्भ कर सात भौमवारतक नक्षत्रत करके अन्तमें सुवर्णकी भौमकी प्रतिमा बनाकर ताप्रपात्रमें स्थापित कर रक्त चन्दन, रक्त वस्त्र आदिसे पूजनकर घीयुक्त कसारका भोग लगाकर सब सामग्री ब्राह्मणको दे। इसी प्रकार विशाखायुक्त बुधवारको बुधका पूजन कर उद्यापनमें स्वर्णमयी बुधकी प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनुराधा नक्षत्रसे युक्त बृहस्पतिवारतके दिनसे सात बृहस्पतिवारतक नक्षत्रत करके अन्तमें

सुवर्णकी देवगुरु बृहस्पतिकी मूर्ति बनाकर सुवर्णपात्रमें स्थापित करे। तदनन्तर गन्ध, पीत पुष्टि, पीत वस्त्र, यज्ञोपवीत आदिसे उनकी पूजा करके खाँड़का भोग लगाकर सब सामग्री एवं मूर्ति ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इसी प्रकार ज्येष्ठायुक्त शुक्रवारको व्रतका आरम्भ कर सात शुक्रवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी शुक्रकी प्रतिमा बनाकर चाँदी अथवा बाँसके पात्रमें स्थापित कर श्वेत चन्दन, श्वेत वस्त्र आदिसे पूजनकर घी और पायसका भोग लगाये। सब पदार्थ एवं प्रतिमा ब्राह्मणको प्रदान करे।

इसी विधिसे मूल नक्षत्रयुक्त शनिवारसे आरम्भ

कर सात शनिवारतक नक्तव्रत करके अन्तमें शनि, राहु और केतुका पूजन करना चाहिये और तिल तथा घीसे ग्रहोंके नाम-मन्त्रोंसे हवन करके नवग्रहोंकी समिधाओंसे प्रत्येक ग्रहको क्रमसे एक सौ आठ अथवा अट्टाईस बार आहुति दे। शनैश्चर आदिकी प्रतिमा लौह अथवा सुवर्णकी बनाये। कृशरात्रका भोग लगाकर सब सामग्रीसहित वे प्रतिमाएँ ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे सभी ग्रहोंकी पीड़ा शान्त हो जाती है। इस व्रतको विधिपूर्वक करनेसे क्रूर ग्रह भी सौम्य एवं अनुकूल हो जाते हैं और उसे शान्ति प्रदान करते हैं। (अध्याय ११२-११३)

शनैश्चर-व्रतके प्रसंगमें महामुनि पिप्पलादका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! एक बार त्रेतायुगमें अनावृष्टिके कारण भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया। उस घोर अकालमें कौशिकमुनि अपनी स्त्री तथा पुत्रोंके साथ अपना निवास-स्थान छोड़कर दूसरे प्रदेशमें निवास करने निकल पड़े। कुटुम्बका भरण-पोषण दूभर हो जानेके कारण बड़े कष्टसे उन्होंने अपने एक बालकको मार्गमें ही छोड़ दिया। वह बालक अकेला भूख-प्याससे तड़पता हुआ रोने लगा। उसे अकस्मात् एक पीपलका वृक्ष दिखायी पड़ा। उसके समीप ही एक बावड़ी भी थी। बालकने पीपलके फलोंको खाकर ठंडा जल पी लिया और अपनेको स्वस्थ पाकर वह वहीं कठिन तपस्या करने लगा तथा नित्यप्रति पीपलके फलोंको खाकर समय व्यतीत करने लगा। अचानक वहाँ एक दिन देवर्षि नारद पधारे, उन्हें देखकर बालकने प्रणाम किया और आदरपूर्वक बैठाया। दयालु नारदजी उसकी अवस्था, विनय और नम्रताको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बालकका मौज्जीबन्धन आदि सब संस्कार कर पद-क्रम-रहस्यसहित वेदका अध्ययन कराया

तथा साथ ही द्वादशाक्षर वैष्णवमन्त्र (३० नमो भगवते वासुदेवाय)-का उपदेश दिया।

अब वह प्रतिदिन विष्णुभगवान्का ध्यान और मन्त्रका जप करने लगा। नारदजी भी वहीं रहे। थोड़े समयमें ही बालकके तपसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णु गरुड़पर सवार हो वहाँ पहुँचे। देवर्षि नारदके वचनसे बालकने उन्हें पहचान लिया, तब उसने भगवान्में दृढ़ भक्तिकी माँग की। भगवान्ने प्रसन्न होकर ज्ञान और योगका उपदेश प्रदान किया और अपनेमें भक्तिका आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। भगवान्के उपदेशसे वह बालक महाज्ञानी महर्षि हो गया।

एक दिन बालकने नारदजीसे पूछा—‘महाराज! यह किस कर्मका फल है जो मुझे इतना कष्ट उठाना पड़ा। इतनी छोटी अवस्थामें भी मैं क्यों ग्रहोंद्वारा पीड़ित हो रहा हूँ। मेरे माता-पिताका कुछ भी पता नहीं, वे कहाँ हैं। फिर भी मैं अत्यन्त कष्टसे जी रहा हूँ। द्विजोत्तम! सौभाग्यवश आपने दया करके मेरा संस्कार किया और मुझे ब्राह्मणत्व प्रदान किया।’ नारदजी यह वचन सुनकर बोले—

‘बालक ! शनैश्चरग्रहने तुम्हें बहुत पीड़ा पहुँचायी और आज यह सम्पूर्ण देश उसके मन्दगतिसे चलनेके कारण उत्पीड़ित है। देखो, वह अभिमानी शनैश्चर-ग्रह आकाशमें प्रज्वलित दिखायी पड़ रहा है।’

यह सुनकर बालक क्रोधसे अग्निके समान उद्दीप हो उठा। उसने उग्र दृष्टिसे देखकर शनैश्चरको आकाशसे भूमिपर गिरा दिया। शनैश्चर एक पर्वतपर गिरे और उनका पैर टूट गया, जिससे वे पंगु हो गये। देवर्षि नारद भूमिपर गिरे हुए शनैश्चरको देखकर अत्यन्त प्रसन्नतासे नाच उठे। उन्होंने सभी देवताओंको बुलाया। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, अग्नि आदि देवता वहाँ आये और नारदजीने शनैश्चरकी दुर्गति सबको दिखायी।

ब्रह्माजीने बालकसे कहा—महाभाग ! तुमने पीपलके फल भक्षण कर कठिन तप किया है। अतः नारदजीने तुम्हारा पिप्पलाद^१ नाम उचित ही रखा है। तुम आजसे इसी नामसे संसारमें विख्यात होओगे। जो कोई भी शनिवारको तुम्हारा भक्तिभावसे पूजन करेंगे अथवा ‘पिप्पलाद’ इस नामका स्मरण करेंगे, उन्हें सात जन्मतक शनिकी पीड़ा नहीं सहन करनी पड़ेगी और वे पुत्र-पौत्रसे युक्त होंगे। अब तुम शनैश्चरको पूर्ववत् आकाशमें स्थापित कर दो; क्योंकि इनका वस्तुतः कोई अपराध नहीं है। ग्रहोंकी पीड़ासे छुटकारा पानेके लिये नैवेद्य निवेदन, हवन, नमस्कार आदि करना चाहिये। ग्रहोंका अनादर नहीं करना चाहिये।

१-यहाँ यह कथा बड़ी सुन्दर है। इसके पढ़नेसे शनिग्रहकी पीड़ा भी शान्त हो जाती है। ये महर्षि अर्थवर्ण पैप्पलादसंहिताके द्रष्टा हैं। इनकी कथा प्रायः अनेक ब्रत-माहात्म्य एवं स्कन्द आदि पुराणोंमें मिलती है। पर अन्तर यह है कि अन्यत्र सर्वत्र इन्हें दधीचि ऋषिका पुन बताया गया है। माताके नाममें भी थोड़ा अन्तर है, कहीं प्रतिथेयीका और कहीं सुवर्चका नाम मिलता है, जो पतिके साथ सती हो गयी थीं। तब ये पीपलके द्वारा पालित हुए। सभी कथाएँ बड़ी पुण्यप्रद एवं शनि-पीड़ाको शान्त करनेवाली हैं। अन्तर कल्पभेदका है, अतः संदेह नहीं करना चाहिये।

२-चरन्वृक्षं शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः। हत्साध्या ग्रहाश्वेते न भवन्ति कदाचन॥

बलिहोमनमस्कारैः शान्तिं यच्छन्ति पूजिताः। अतोऽर्थमस्य दिवसे स्नानमध्यङ्गपूर्वकम्॥ (उत्तरपर्व ११४। २९-३०)

इसी भावके श्लोक याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियोंमें भी आये हैं।

पूजित होनेपर ये शान्ति प्रदान करते हैं^२।

शनिकी ग्रहजन्य पीड़ाकी निवृत्तिके लिये शनिवारको स्वयं तैलाभ्यङ्ग करके ब्राह्मणोंको भी अभ्यङ्गके लिये तैल देना चाहिये। शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तैलयुक्त लौह-पात्रमें रखकर एक वर्षतक प्रति शनिवारको पूजन करनेके बाद कृष्ण पुष्प, दो कृष्ण वस्त्र, कसार, तिल, भात आदिसे उनका पूजन कर काली गाय, काला कम्बल, तिलका तेल और दक्षिणासहित सब पदार्थ ब्राह्मणको प्रदान करना चाहिये। पूजन आदिमें शनिके इस मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये—

शं नो देवीरभिष्ट्य आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्ववन्तु नः॥ (यजु० ३६। १२)

राज्य नष्ट हुए राजा नलको शनिदेवने स्वप्रमें अपने एक प्रार्थना-मन्त्रका उपदेश दिया था। उसी नाम-स्तुतिसे उन्हें पुनः राज्य उपलब्ध हुआ था। उस स्तुतिसे शनिकी प्रार्थना करनी चाहिये। सर्वकामप्रद वह स्तुति इस प्रकार है—

क्रोडं नीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमस्तजम्।
छायामार्तण्डसम्भूतं नमस्यामि शनैश्चरम्॥
नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय

नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय ।

श्रुत्वा रहस्यं भवकामदश्च

फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र॥
नमोऽस्तु प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः।
शनैश्चराय कूराय शुद्धबुद्धिप्रदायिने॥

य एभिर्नामभिः स्तौति तस्य तुष्टो भवाम्यहम्।
मदीयं तु भयं तस्य स्वप्रेऽपि न भविष्यति ॥

(उत्तरपर्व ११४। ३९—४२)

जो भी व्यक्ति प्रत्येक शनिवारको एक वर्षतक इस व्रतको करता है और इस विधिसे उद्यापन करता है, उसे कभी शनिकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। यह कहकर ब्रह्माजी सभी देवताओंके साथ अपने परमधामको चले गये और पिप्पलादमुनिने भी ब्रह्माजीके आज्ञानुसार शनैश्चरको उनके स्थानपर प्रतिष्ठित कर दिया। महामुनि पिप्पलादने शनिग्रहकी

इस प्रकार प्रार्थना की—
कोणस्थः पिङ्गलो बभुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः ।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां मे ग्रहोत्तमः ॥

(उत्तरपर्व ११४। ४७)

जो व्यक्ति शनैश्चरोपाख्यानको भक्तिपूर्वक सुनता है तथा शनिकी लौह-प्रतिमा बनाकर तेलसे भरे हुए लौह-कलशमें रखकर ब्राह्मणको दक्षिणासहित दान देता है, उसको कभी भी शनिकी पीड़ा नहीं होती।

(अध्याय ११४)

आदित्यवार नक्त-व्रत तथा संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा— भगवान् गोविन्द ! आप कोई ऐसा व्रत बतलाइये, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला, आरोग्यदायक और अनन्त फलप्रद हो ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! परब्रह्म विश्वात्मा जो परम सनातन धाम है, वह संसारमें सूर्य, अग्नि तथा चन्द्र—इन तीनोंमें विभक्त होकर स्थित है। कुरुनन्दन ! उस परमात्माकी आराधना कर मनुष्य क्या नहीं प्राप्त कर सकता ? इसलिये रविवारके दिन नक्तव्रत करना चाहिये। भगवान् सूर्यमें अनन्य भक्ति रखकर आदित्यवारको यह व्रत करना चाहिये। ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा कर सायंकाल रक्त चन्दनसे एक द्वादशदल कमलकी रचना करे और उसके द्वादशदलोंमें सूर्य, दिवाकर, विवस्वान्, भग, वरुण, महेन्द्र, आदित्य, शान्त, सूर्यके अश्व, यम, मार्तण्ड तथा रविकी स्थापना करे और उनका पूजन कर तिल, रक्त चन्दन, फल तथा अक्षतसे युक्त अर्ध्य प्रदान करे। अनन्तर विसर्जन कर दे। रात्रिमें भगवान् भास्करका स्मरण करता हुआ तैलरहित भोजन करे। व्रतके पूर्व दिन शनिवारको तैलाभ्यङ्ग न करे। इस प्रकार एक वर्षपर्यन्त व्रत करके उद्यापन करे और यथाशक्ति

गुड़से पूर्ण एक ताम्रपात्रमें स्वर्णकमल स्थापित करे तथा उसके ऊपर स्वर्णमयी भगवान् सूर्यकी द्विभुज प्रतिमा स्थापित करे, साथ ही एक सुवर्णमयी सवत्सा गौ भी स्थापित करे। इनका पूजन कर विद्वान् ब्राह्मणको यह सब सामग्री निवेदित कर दे।

इस प्रकार जो स्त्री-पुरुष इस व्रतको वर्षभर सम्पन्न कर विधिपूर्वक उद्यापन करते हैं, वे नीरोग, धार्मिक, धन-धान्य, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यलोकको प्राप्त करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन् ! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापनरूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्ति-व्रतका आरम्भ करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दातून करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कण्ठिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका

आवाहन करे। कर्णिकामें 'सूर्याय नमः', पूर्वदलपर 'आदित्याय नमः', अग्निकोणस्थित दलपर 'सप्तर्षिष्ये नमः', दक्षिणदलपर 'ऋग्मण्डलाय नमः', नैऋत्यकोणवाले दलपर 'सवित्रे नमः', पश्चिमदलपर 'वरुणाय नमः', वायव्यकोणस्थित दलपर 'सप्तसप्तये नमः', उत्तरदलपर 'मार्तण्डाय नमः' और ईशानकोणवाले दलपर 'विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंसे सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बार-बार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये और अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे (अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।' इस विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका

फल समान ही है)।

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे तथा बारह गौ एवं रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हों, वे आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीक्षण होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दर पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र एवं भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है।

(अध्याय ११५-११६)

भद्राका चरित्र एवं उसके व्रतकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! लोकमें भद्रा विष्टि नामसे प्रसिद्ध है, वह कैसी है, कौन है, वह किसकी पुत्री है, उसका पूजन किस विधिसे किया जाता है? कृपया आप बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! भद्रा भगवान् सूर्यनारायणकी कन्या है। यह भगवान् सूर्यकी पत्नी छायासे उत्पन्न है और शनैश्चरकी सगी बहिन है। वह काले वर्ण, लम्बे केश, बड़े-बड़े दाँत

और बहुत ही भयंकर रूपवाली है। जन्मते ही वह संसारका ग्रास करनेके लिये दौड़ी, यज्ञोंमें विघ्न-बाधा पहुँचाने लगी और उत्सवों तथा मङ्गल-यात्रा आदिमें उपद्रव करने लगी और पूरे जगत्को पीड़ा पहुँचाने लगी। उसके उच्छृङ्खल स्वभावको देखकर भगवान् सूर्य अत्यन्त चिन्तित हो उठे और उन्होंने शीघ्र ही उसका विवाह करनेका विचार किया। जब जिस-जिस भी देवता, असुर,

किन्नर आदिसे सूर्यनारायणने विवाहका प्रस्ताव रखा, तब उस भयंकर कन्यासे कोई भी विवाह करनेको तैयार न हुआ। दुःखित हो सूर्यनारायणने अपनी कन्याके विवाहके लिये मण्डप बनवाया, पर उसने मण्डप-तोरण आदि सबको उखाड़कर फेंक दिया और सभी लोगोंको कष्ट देने लगी। सूर्यनारायणने सोचा कि इस दुष्टा, कुरुपा, स्वेच्छाचारिणी कन्याका विवाह किसके साथ किया जाय। इसी समय प्रजाके दुःखको देखकर ब्रह्माजीने भी सूर्यके पास आकर उनकी कन्याद्वारा किये गये दुष्कर्मोंको बतलाया। यह सुनकर सूर्यनारायणने कहा—‘ब्रह्मन्! आप ही तो इस संसारके कर्ता तथा भर्ता हैं, फिर आप मुझसे ऐसा क्यों कह रहे हैं। जो भी आप उचित समझें वही करें।’ सूर्यनारायणका ऐसा वचन सुनकर ब्रह्माजीने विष्टिको बुलाकर कहा—‘भद्रे! वव, बालव, कौलव आदि करणोंके अन्तमें तुम निवास करो और जो व्यक्ति यात्रा, प्रवेश, माझ्जल्य कृत्य, खेती, व्यापार, उद्योग आदि कार्य तुम्हारे समयमें करे, उन्हींमें तुम विघ्न करो। तीन दिनतक किसी प्रकारकी बाधा न डालो। चौथे दिनके आधे भागमें देवता और असुर तुम्हारी पूजा करेंगे। जो तुम्हारा आदर न करें उनका कार्य तुम ध्वस्त कर देना।’ इस प्रकार विष्टिको उपदेश देकर ब्रह्माजी अपने धामको चले गये, इधर विष्ट भी देवता, दैत्य, मनुष्य सब प्राणियोंको कष्ट देती हुई घूमने लगी। महाराज! इस तरहसे भद्राकी उत्पत्ति हुई और वह अति दुष्ट

प्रकृतिकी है, इसलिये माझ्जलिक कार्योंमें उसका अवश्य त्याग करना चाहिये।

भद्रा पाँच घड़ी मुखमें, दो घड़ी कण्ठमें, ग्यारह घड़ी हृदयमें, चार घड़ी नाभिमें, पाँच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित रहती है। जब भद्रा मुखमें रहती है तब कार्यका नाश होता है, कण्ठमें धनका नाश, हृदयमें प्राणका नाश, नाभिमें कलह, कटिमें अर्थभ्रंश होता है, पर पुच्छमें निश्चितरूपसे विजय एवं कार्य-सिद्ध हो जाती है^१।

भद्राके बारह नाम हैं—(१) धन्या, (२) दधिमुखी, (३) भद्रा, (४) महामारी, (५) खरानना, (६) कालरात्रि, (७) महारुद्रा, (८) विष्टि, (९) कुलपुत्रिका, (१०) भैरवी, (११) महाकाली तथा (१२) असुरक्षयकरी।

इन बारह नामोंका प्रातःकाल उठकर जो स्मरण करता है, उसे किसी भी व्याधिका भय नहीं होता। रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं। उसके कार्योंमें कोई विघ्न नहीं होता। युद्धमें तथा राजकुलमें वह विजय प्राप्त करता है^२। जो विधिपूर्वक नित्य विष्टिका पूजन करता है, निःसंदेह उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। अब मैं भद्राके व्रतकी विधि बता रहा हूँ—

राजन्! जिस दिन भद्रा हो उस दिन उपवास करना चाहिये। यदि रात्रिके समय भद्रा हो तो दो दिनतक एकभुक्त व्रत करना चाहिये। एक प्रहरके बाद भद्रा हो तो तीन प्रहरतक उपवास करना चाहिये अथवा एकभुक्त रहना चाहिये। स्त्री अथवा

१-मुखे तु घटिका: पञ्च द्वे कण्ठे तु सदा स्थिते। हृदि चैकादश प्रोक्ताश्वत्स्नो नाभिमण्डले ॥

कट्यां पञ्चैव विज्ञेयास्तिसः पुच्छे जयावहाः । मुखे कार्यविनाशाय ग्रीवायां धननाशिनी ॥

हृदि प्राणहरा ज्ञेया नाभ्यां तु कलहावहा । कट्यामर्थपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवो जयः ॥

(उत्तरपर्व ११७। २३—२५)

२-धन्या दधिमुखी भद्रा महामारीखरानना। कालरात्रिर्महारुद्रा विष्टिश्च कुलपुत्रिका ॥

भैरवी च महाकाली असुराणां क्षयंकरी । द्वादशैव तु नामानि प्रातस्त्वाय यः पठेत् ॥

न च व्याधिर्भवेत् तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते । ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्वर्णं च विग्रादि जायते ॥

रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥ (उत्तरपर्व ११७। २७—३०)

पुरुष व्रतके दिन सुगन्ध आमलक लगाकर सर्वोषधि-युक्त जलसे स्नान करे अथवा नदी आदिपर जाकर विधिपूर्वक स्नान करे। देवता एवं पितरोंका तर्पण तथा पूजन कर कुशाकी भद्राकी मूर्ति बनाये और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसकी पूजा करे। भद्राके बारह नामोंसे एक सौ आठ बार हवन करनेके बाद तिल और पायस ब्राह्मणको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर तिलमिश्रित कृशरान्नका भोजन करना चाहिये। फिर पूजनके अन्तमें इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

छायासूर्यसुते देवि विष्णुरिष्टार्थदायिनि।

पूजितासि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव॥

(उत्तरपर्व ११७। ३९)

इस प्रकार सत्रह भद्राव्रत कर अन्तमें उद्यापन करे। लोहेकी पीठपर भद्राकी मूर्तिको स्थापित कर काला वस्त्र पहनाकर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजन कर प्रार्थना करे। लोहा, तैल, तिल, बछड़ासहित काली गाय, काला कम्बल और यथाशक्ति दक्षिणाके साथ वह मूर्ति ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये और विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो भी व्यक्ति भद्राव्रत और व्रतका उद्यापन करता है, उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं पड़ता। भद्राव्रत करनेवाले व्यक्तिको प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी तथा ग्रह आदि कष्ट नहीं देते। उसका इष्टसे वियोग नहीं होता और अन्तमें उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है*। (अध्याय ११७)

महर्षि अगस्त्यकी कथा और उनके अर्ध-दानकी विधि

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अब आप सभी पापोंको दूर करनेवाले अगस्त्यमुनिके चरित्र, अर्ध-दानकी विधि और अगस्त्योदय-कालका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! एक बार देवश्रेष्ठ मित्र और वरुण दोनों मन्दराचलपर कठिन तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यामें बाधा डालनेके लिये इन्हने उर्वशी अप्सराको भेजा। उसे देखकर दोनों क्षुब्ध हो उठे। अपने मनके विकारको जानकर उन्होंने अपना तेज एक कुम्भमें स्थापित कर दिया। राजा निमिके शापसे उसी कुम्भसे प्रथम महर्षि वसिष्ठका अनन्तर दिव्य तपोधन महात्मा अगस्त्यका प्रादुर्भाव हुआ।

अगस्त्यमुनिका विवाह लोपामुद्रासे हुआ। अनन्तर विप्रोंसे घिरे हुए अगस्त्यमुनि अपनी

पत्नीके साथ रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त कठोर तप करने लगे। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे, उसी समय बड़े ही दुराचारी और ब्राह्मणोंद्वारा किये जा रहे यज्ञोंका विध्वंस करनेवाले दो दैत्य जिनका नाम इल्वल और वातापि था, वहाँ उपस्थित हुए। ये दोनों बड़े ही मायाकी थे। इन दोनोंका प्रतिदिनका कार्य यह था कि एक भाई मेष बनकर विविध प्रकारके भोजनोंका रूप धारण कर लेता और दूसरा भाई श्राद्धमें भोजन करने-हेतु ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर बुलाता और भोजन कराता। भोजन कर लेनेके तुरंत बाद ही इल्वल अपने भाईका नाम लेकर पुकारता। दैत्यकी पुकार सुनते ही उसका दूसरा भाई ब्राह्मणोंके पेटको चीरता हुआ बाहर निकल

* भद्राके विषयमें ज्योतिप-ग्रन्थोंमें विस्तारसे वर्णन मिलता है, विशेषकर मुहूर्त-चिन्तामणिकी पीयूषधारा व्याख्यामें। पञ्चाङ्गोंकी यह व्यापक वस्तु है। यह प्रायः प्रत्येक द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, द्वादशी और त्रयोदशीको लगी रहती है। इसका पूरा समय प्रायः २४ घंटेका होता है। इस अध्यायमें उसके रहस्यको ठीकसे समझानेका प्रयत्न किया गया है और उसकी शान्तिका भी उपाय बतलाया है।

जाता था। इस प्रकार उन दोनों दैत्योंने अनेक ब्राह्मणों तथा मुनियोंको मार डाला।

एक दिनकी बात है, इल्वलने भृगुवंशमें उत्पन्न ब्राह्मणोंके साथ अगस्त्यमुनिको भोजनके लिये आपन्त्रित किया। भोजनके समय अगस्त्यमुनिने इल्वलके द्वारा बनाया गया भोजन सारा-का-सारा खा डाला, पर मुनि निर्विकार होकर शुद्ध हो गये थे। इल्वलने पूर्वीतिसे अपने भाई वातापिको पुकारकर कहा—‘भाई! अब क्यों विलम्ब कर रहे हो, मुनिके शरीरको चीरकर बाहर आ जाओ।’ इसपर अगस्त्यमुनिने कहा—‘अरे दुष्ट दैत्य! तुम्हारा भाई वातापि तो उदरमें ही भस्म होकर समाप्त हो गया, अब वह बाहर कहाँसे आयेगा। यह सुनकर इल्वल बहुत ही क्रुद्ध हो उठा, परंतु अगस्त्यमुनिने उसको भी अपनी क्रुद्ध दृष्टिसे जलाकर भस्म कर डाला। उन दोनों दैत्योंके मारे जानेपर शेष दैत्य भी मुनिके वैरको स्मरण करते हुए भयभीत होकर समुद्रमें जाकर छिप गये। वे रात्रिके समय समुद्रसे बाहर निकलकर मुनियोंका भक्षण करते, यज्ञपात्र फोड़ डालते और पुनः समुद्रमें जाकर छिप जाते। दैत्योंके इस प्रकारके उत्पातको देखकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि सभी देवता आपसमें विचारकर महर्षि अगस्त्यजीके पास आकर बोले—‘ब्रह्मण! आप समुद्रके जलको सोख लीजिये।’ यह सुनकर अगस्त्यजीने अपनेमें आग्रेयी धारणाका अवधान कर समुद्रके जलका पान कर लिया। समुद्रके सूख जानेपर देवताओंने उन सभी दैत्योंका संहार कर डाला।

इस प्रकार महर्षि अगस्त्यने इस संसारको निष्कण्टक कर दिया। उसके बाद गङ्गाजीके जलसे समुद्र पुनः भर गया। तब देवता और दैत्योंने मिलकर मन्दराचल पर्वतको मथानी तथा नागराज वासुकिको रस्सी बनाकर समुद्रका मन्थन

किया। उस समय समुद्रसे चन्द्रमा, लक्ष्मी, अमृत, कौस्तुभमणि, ऐरावत हाथी आदि उत्तम-उत्तम रत्न निकले। समुद्रसे ही अति भयंकर कालकूट विष भी निकला, जिसके गन्धमात्रसे ही देवता और दैत्य सभी मूर्छित होने लगे। इस कालकूट विषका कुछ भाग भगवान् शंकरने पान कर लिया। जिससे वे नीलकण्ठ कहलाये, तब ब्रह्माजीने कहा कि ‘भगवान् शंकरके अतिरिक्त संसारमें ऐसा किसीमें सामर्थ्य नहीं है, जो इस शेष विषका पान करे, अतः देवगणो! आप सब दक्षिण दिशामें लङ्घाके समीप निवास करनेवाले अगस्त्यमुनिके पास जायँ, वे हमलोगोंके शरणदाता हैं। ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर सभी देवता अगस्त्यमुनिके पास गये। मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने सबको भयभीत पाकर उन्हें यह आश्वासन दिया कि मैं उस विषको अपने तपोबलके प्रभावसे हिमालय पर्वतमें प्रविष्ट कर दूँगा। तब महर्षि अगस्त्यजीके तपोबलके प्रभावसे वही विष हिमालयके शिखरों, निकुञ्जों तथा वृक्षोंमें बिखर गया और शेष बचे हुए विषको धूर, अर्क आदि वृक्षोंमें उन्होंने बाँट दिया। उसी हिमालय पर्वतके विषसे युक्त वायुके प्रभावसे प्राणियोंमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, जिससे प्राणियोंको कष्ट सहन करना पड़ता है। उस विषयुक्त वायुका प्रभाव वृषकी संक्रान्तिसे लेकर सिंह-संक्रान्तितक बना रहता है। बादमें उसका वेग शान्त हो जाता है। इस प्रकार कालकूट विषके विनाशकारी प्रभावसे अगस्त्यमुनिने समस्त प्राणियोंकी रक्षा की।’

पूर्वकालमें प्रजाकी बहुत वृद्धि हुई। उस समय ब्रह्माजीने अपने शरीरसे मृत्युको उत्पन्न किया और मृत्युने प्रजाका भयंकर विनाश किया। एक दिन वह मृत्यु अगस्त्यमुनिके समीप भी आयी। अगस्त्यजीने क्रोधभरी दृष्टिसे मृत्युको तत्काल

भस्म कर दिया। पुनः ब्रह्माजीको दूसरी व्याधिरूप मृत्युकी उत्पत्ति करनी पड़ी।

दण्डकारण्यमें श्वेत नामक एक राजा रहता था, स्वर्ग जानेपर भी वह प्रतिदिन क्षुधाके कारण अपने मांसको ही खाकर कष्ट भोग रहा था। एक दिन दुःखी हो राजाने अगस्त्यमुनिसे कहा—‘महाराज! सभी वस्तुओंका दान तो मैंने किया है, परंतु अन्न और जलका दान मैं नहीं कर सका और न मैंने श्राद्ध ही किया। इसलिये मुझे इस रूपमें प्रतिदिन अपना ही मांस खाना पड़ रहा है। प्रभो! आप दया करके कोई उपाय कीजिये, जिससे कि मुझे इस विपत्तिसे छुटकारा प्राप्त हो।’ राजाद्वारा इस प्रकार दीन वचन सुनकर अगस्त्यमुनि दयार्द्र हो उठे और उन्होंने रत्नोद्धारा श्राद्ध कराया। श्राद्धके फलस्वरूप सहसा वह दिव्य देह धारणकर स्वर्गलोकमें दिव्य भोग भोगने लगा।

एक बार विन्ध्याचल पर्वतके हृदयमें यह प्रश्न उठा कि सूर्यनारायण मेरुपर्वतकी परिक्रमा तो करते हैं, पर मेरी नहीं करते। क्यों न मैं उनका मार्ग रोक दूँ। मनमें यह निश्चय कर विन्ध्यगिरि प्रतिदिन बढ़ने लगा। विन्ध्याचलको बढ़ते हुए देखकर सभी देवता व्याकुल हो उठे और उन्होंने अगस्त्यमुनिके पास जाकर निवेदन किया—‘प्रभो! आप कृपाकर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध करनेवाले उस विन्ध्यगिरिको रोकें और उसे स्थिर कर दें।’ देवताओंका विनययुक्त वचन सुनकर अगस्त्यजीने विन्ध्याचल पर्वतके पास पहुँचकर कहा—‘पर्वतोत्तम! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूँ, तुम थोड़ा नीचे हो जाओ तो उस पार चला जाऊँ।’ मुनिकी आज्ञासे विन्ध्याचल नीचा हो गया। अगस्त्यमुनिने पर्वतको लाँघकर कहा—‘जबतक मैं तीर्थयात्रासे वापस नहीं आ जाता, तबतक तुम इसी स्थितिमें रहना।’ इतना कहकर

अगस्त्यमुनि दक्षिण दिशाको चले गये और फिर वापस नहीं लौटे। आज भी आकाशमें दक्षिण दिशामें देवीप्यमान हो रहे हैं और लोपामुद्राके साथ महर्षि अगस्त्यकी यह त्रिलोकी वन्दना करता है।

एक समयकी बात है, अपनी पत्नी लोपामुद्राकी इच्छापर अगस्त्यजीने कुबेरको बुलाकर आनन्दके सभी ऐश्वर्य महल, शश्या, वस्त्राभूषण आदि उन्हें उपलब्ध करा दिये और लोपामुद्राके साथ अगस्त्यजी बहुत समयतक आनन्दित होते रहे।

राजन्! इस प्रकार अगस्त्यमुनिके अनेक अद्भुत दिव्य चरित्र हैं। आप भी भगवान् अगस्त्यके लिये अर्घ्य प्रदान करें, इससे आपको महान् पुण्य प्राप्त होगा। उनके अर्घ्य-दानकी विधि इस प्रकार है—

जब कन्या राशिमें सूर्यके सात अंश (५। २२) शेष रहते हैं, उसी दिन महर्षि अगस्त्यका पूर्वमें उदय होता है, उसी समय उनके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये। ब्रतीको चाहिये कि प्रातः श्वेत तिलोंसे स्नानकर श्वेत वस्त्र, श्वेत पुष्पोंकी माला आदिसे विभूषित होकर पञ्चरत्नसहित एक सुवर्ण कलश स्थापित करे। उसके ऊपर अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ और सप्तधान्यसहित धीका पात्र रखे। उसके ऊपर जटाधारी, हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए शिष्योंके साथ अगस्त्यमुनिकी स्वर्ण-प्रतिमा बनाकर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् श्वेत चन्दन, चमेलीके पुष्प, उत्तम धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उनकी पूजा करनेके बाद अर्घ्य देना चाहिये। खजूर, नारियल, कूष्माण्ड, खीरा, ककड़ी, कर्कोटक, आरवेल्ल, बीजपूर (बिजौरा), बैगन, अनार, नारंगी, केला, कुशा, काश, दूवके अंकुर, नीलकमल तथा अंकुरित अन्न—यह सभी सामग्री एक बाँसके पात्रमें रखकर सुवर्ण, चाँदी अथवा ताँबेका अर्घ्यपात्र नम्र हो सिरसे लगाकर प्रसन्न-चित्तसे जानुओंको पृथ्वीपर

टेककर दक्षिणाभिमुख हो इन मन्त्रोंसे भक्तिपूर्वक भगवान् अगस्त्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये—

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥
विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह।
रत्नवल्लभ देवर्षे लङ्गावास नमोऽस्तु ते॥
वातापिर्भक्षितो येन समुद्राः शोषिताः पुरा।
लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः॥
येनोदितेन पापानि प्रलयं यान्ति व्याधयः।
तस्मै नमोऽस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे॥

(उत्तरपर्व ११८। ६९—७२)

‘देवर्षे ! आपका वर्ण काश-पुष्पके समान है, आप अग्नि और मरुत्‌से उद्भूत हैं। मित्रावरुणके पुत्र कुम्भयोने ! आपको नमस्कार है। आप वृष्टिमें अमृतका संचार करनेवाले हैं, आपने बढ़ते हुए विन्ध्यगिरिको निवृत्त किया था और आप दक्षिण दिशामें निवास करते हैं, आपको नमस्कार है। आपने वातापि राक्षसको भस्म कर दिया तथा समुद्रको सोख लिया, लोपामुद्राके पति भगवान् अगस्त्य ! आपको बार-बार नमस्कार है। आपके

उदय होनेपर सारी व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं, शिष्यों और पुत्रोंके साथ भगवन् ! आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार अर्घ्य प्रदान कर वह प्रतिमा विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मणको दानमें दे दे।

किसी एक फल अथवा धान्य आदिका एक वर्षतक त्याग करे। इस विधिसे यदि ब्राह्मण सात वर्षतक अर्घ्य दे तो चारों वेदोंका ज्ञाता और सभी शास्त्रोंका मर्मज्ञ हो जाता है। क्षत्रिय समस्त पृथ्वीको जीतकर राजा बनता है। वैश्य धन-धान्य तथा पशुओं एवं समृद्धिको प्राप्त करता है तथा शूद्र धन, सम्मान, आरोग्य प्राप्त करता है और स्त्रियोंको सौभाग्य, ऋद्धि-वृद्धि तथा पुत्रकी प्राप्ति होती है। विधवाको अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है, कन्याको श्रेष्ठ पति प्राप्ति होता है तथा रोगी अगस्त्यमुनिको अर्घ्य देकर रोगसे छुटकारा पा जाता है। जिस देशमें भगवान् अगस्त्यका इस विधिसे पूजन होता है और अर्घ्य दिया जाता है, वहाँ कभी दुर्धिक्ष, अकाल आदिका भय नहीं होता। अगस्त्य-ऋषिके आख्यानको सुननेवाले सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं*। (अध्याय ११८)

नवोदित चन्द्र, गुरु एवं शुक्रको अर्घ्य देनेकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! अब मैं नवोदित चन्द्रमाको अर्घ्य देनेकी विधि बता रहा हूँ। प्रतिमास शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको प्रदोषकालके समय भूमिपर गोबरका एक मण्डल बनाकर उसमें रोहिणीसहित चन्द्रमाकी प्रतिमाको स्थापित करके श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य, दही, श्वेत वस्त्र तथा दूर्वाङ्कुर

आदिसे उनका पूजन करे और इस मन्त्रसे चन्द्रमाको अर्घ्य प्रदान करे—

नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः।
आप्यायस्व स मे त्वेवं सोमराज नमो नमः॥

(उत्तरपर्व ११९। ६)

जो व्यक्ति इस विधिसे चन्द्रमाको प्रतिमास अर्घ्य देता है, उसे पुत्र, पौत्र, धन, पशु, आरोग्य

* इस व्रतका उल्लेख मत्स्यपुराण अध्याय ६१ आदिमें तथा इनकी कथा, इनका अनेक आश्रमोंमें निवास और अगस्त्यार्घ्यपर ऋग्वेद १। १७९। ६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहद्दर्म आदि पुराणोंतकमें अपार सामग्री भरी पड़ी है। हेमाद्रि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इहें अपने व्रत-निवन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है।

आदिकी प्राप्ति होती है तथा सौ वर्षतक सुख भोगकर अन्तमें वह चन्द्रलोकको और फिर मोक्षको प्राप्त करता है।

राजन्! शुक्रके दोषकी निवृत्तिके लिये यात्राके आरम्भमें, गमनकालमें और शुक्रोदयके समय शुक्रदेवकी पूजा अवश्य करनी चाहिये। शुक्रकी पूजन-विधिको मैं बता रहा हूँ, उसे आप ध्यानपूर्वक सुनें—

सुवर्ण, चाँदी अथवा कांस्यके पात्रमें मोतीयुक्त चाँदीकी शुक्रकी मूर्तिको पुष्प तथा श्वेत वस्त्रसे अलंकृतकर श्वेत चावलोंपर स्थापित करे। षोडशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे शुक्रदेवकी पूजा करके इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे—

नमस्ते सर्वदेवेश नमस्ते भृगुनन्दन।
कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्थं नमोऽस्तु ते ॥
(उत्तरर्पण १२०।४)

तदनन्तर प्रणामपूर्वक मूर्तिको विसर्जित कर

सवत्सा गौके साथ वह प्रतिमा तथा अन्य सभी सामग्री ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे शुक्रदेवकी पूजा करनेसे सभी मनःकामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और फसल अच्छी होती है।

इसी प्रकार सुवर्ण आदिके पात्रमें सुवर्णकी बृहस्पतिकी मूर्ति स्थापित करे। प्रतिमाको सर्षपयुक्त जल तथा पञ्चगव्यसे स्नान कराकर पीत पुष्प और पीत वस्त्रोंसे अलंकृत करे। अनन्तर विविध उपचारोंसे उनका पूजन कर अर्घ्य प्रदान कर घीसे हवन करे। सवत्सा गौके साथ वह बृहस्पतिकी मूर्ति दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान कर दे। यात्राकाल, बृहस्पतिकी संक्रान्ति और उनके उदयके समय जो इनका पूजन करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। शुक्र तथा बृहस्पतिका इस विधिसे पूजन करनेसे पूजकके घरमें उनका दोष नहीं होता।

(अध्याय ११९-१२०)

प्रकीर्ण-ब्रत*

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं अत्यन्त गुप्त विविध प्रकीर्ण ब्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो प्रातः स्नानकर अश्वत्थ-वृक्षका पूजन कर ब्राह्मणोंको तिलसे भरे हुए पात्रका दान करता है, उसे कृत-अकृत किसी कार्यके लिये शोक नहीं करना पड़ता। यह पात्रब्रत सभी पापोंको दूर करनेवाला है। सुवर्णकी बृहस्पतिकी प्रतिमा बनाकर उसे पीत वस्त्रादिसे अलंकृतकर पुण्य दिनमें ब्राह्मणको दान करना चाहिये। यह वाचस्पतिब्रत बल और बुद्धिप्रदायक है। एकभुक्त रहकर लवण, कटु, तिक्त, जीरक, मरिच, हींग और सोंठसे युक्त पदार्थ तथा शिलाजीत—ये सात पदार्थ सात कुटुम्बी ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये, इस शिलाब्रतको

करनेसे लक्ष्मीलोककी तथा वाक्पटुता प्राप्त होती है। नक्तब्रतकर गाय, वस्त्र और सुवर्णका सुदर्शनचक्र तथा त्रिशूल गृहस्थ ब्राह्मणको दानमें दे और उन्हें प्रणाम कर ‘शिवकेशवौ प्रीयेताम्’ यह वाक्य कहे। यह शिवकेशवब्रत महापातकोंको भी नष्ट कर देता है। एक वर्षतक एकभुक्त रहकर सुवर्णका बना हुआ बैल और उपस्करोंसहित तिलधेनु ब्राह्मणको दान करे। इस ब्रतको रुद्रब्रत कहते हैं। यह ब्रत सभी प्रकारके पाप एवं शोकको दूर करता है और ब्रतीको शिवलोककी प्राप्ति कराता है।

पञ्चमी तिथिके दिन सर्वोषधिमिश्रित जलसे स्नानकर गृहस्थाश्रमके सात उपस्करों—घर, ऊखल, सूप, सिल, थाली, घड़ा तथा चूल्हाका दान गृहस्थ

* मत्स्यपुराणके १०१ वें अध्याय तथा पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय २० में भी स्वल्प भेदके साथ इन ब्रतोंका वर्णन है।

ब्राह्मणको देना चाहिये। इसे गृहन्नत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे सभी सुख प्राप्त होते हैं। इस व्रतका उपदेश अत्रिमुनिने अनसूयाको किया था।

सुवर्णका कमल तथा नील कमल शर्करापात्रसहित श्रद्धासे गृहस्थ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। यह नीलव्रत है। इस व्रतको जो कोई भी व्यक्ति करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें तैलाभ्यङ्ग नहीं करना चाहिये। अन्तमें पारणामें तिलके तेलसे भरा हुआ नया घड़ा ब्राह्मणको दे और घी तथा पायसयुक्त भोजन कराये, इस व्रतको प्रीतिव्रत कहते हैं। इसे भक्तिपूर्वक करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

चैत्र मासमें दही, दूध, घी और गुड़, खाँड़, ईखके द्वारा बने पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और बादमें दो ब्राह्मणोंकी पूजा कर दही, दूध तथा दो वस्त्र, रससे भरे पात्र आदि पदार्थ 'गौरी मे प्रीयताम्' कहकर ब्राह्मणको देना चाहिये। यह गौरीव्रत है। इस व्रतको जो करता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है।

त्रयोदशीसे एक वर्षतक नक्तव्रत करनेके बाद पारणामें दो वस्त्रोंसहित सुवर्णका अशोक-वृक्ष तथा ब्राह्मणको दक्षिणा देकर 'प्रद्युम्नः प्रीयताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। यह कामव्रत है। इस व्रतको करनेसे सभी प्रकारके शोक दूर हो जाते हैं तथा विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। आषाढ़ आदि चार मासोंमें अपने नख नहीं काटने चाहिये और बैगनका भोजन भी नहीं करना चाहिये। अन्तमें कार्तिक पूर्णिमाके दिन घी और शहदसे भरे हुए घटके साथ सुवर्णका बैगन ब्राह्मणको दान दे। इसे शिवव्रत कहते हैं। शिवव्रत करनेवाला व्यक्ति रुद्रलोकको प्राप्त करता है। इसी प्रकार पूर्णिमाको एकभुक्तव्रत करनेके बाद चन्दनसे पूर्णिमाकी मूर्ति बनाकर उसका पूजन करे। अनन्तर

दूध, दही, घी, शहद और श्वेत शर्करा—इन पाँच सामग्रियोंसे भरे हुए पाँच घड़े पाँच ब्राह्मणोंको दानमें दे। इस व्रतको पञ्चव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें उद्धूत पुष्पोंका त्याग कर फाल्गुनकी पूर्णिमाको यथाशक्ति सुवर्णके बने हुए तीन पुष्प ब्राह्मणको दान देकर 'शिवकेशवौ प्रीयताम्' इस वाक्यका उच्चारण करना चाहिये। इसे सौगन्ध्यव्रत कहते हैं। इस व्रतके करनेसे शिरःप्रदेशसे सुगन्धि उत्पन्न होती रहती है और व्रतीको उत्तम लोककी प्राप्ति होती है।

फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको नमक नहीं खाना चाहिये। जो व्यक्ति एक वर्षतक नियमपूर्वक इस सौभाग्यव्रतको करके अन्तमें सप्तलीक ब्राह्मणकी पूजा कर गृहके साथ गृहस्थके उपयोगी सामग्रियों तथा उत्तम शव्याका दान देकर 'भवानी प्रीयताम्' इस वाक्यको कहता है, उसे गौरीलोककी प्राप्ति होती है। यह उत्तम सौभाग्यको प्रदान करनेवाला है।

संध्या-समय एक वर्षतक मौनव्रत रखकर पारणाकर तथा घृतकुम्भ, दो वस्त्र और घण्टा ब्राह्मणको दान करना चाहिये। इसे सारस्वतव्रत कहते हैं। यह व्रत विद्या और रूपको देनेवाला है। इस व्रतको करनेसे सरस्वतीलोककी प्राप्ति होती है।

एक वर्षतक पञ्चमी तिथिको उपवास करनेके बाद सुवर्णकमल और श्रेष्ठ गौ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इसे लक्ष्मीव्रत कहते हैं। यह व्रत कान्ति एवं सौभाग्यको प्रदान करता है। व्रतीको जन्म-जन्ममें लक्ष्मीकी प्राप्ति और अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

जो स्त्री चैत्र माससे आरम्भ कर नियमसे (प्रातःकाल) एक वर्षतक जलका पान करे और (भगवान् सूर्यके निमित्त) जलधारा प्रदान करे

और वर्षके अन्तमें घृतपूर्ण नवीन कलशका दान करे तो उसे सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे धाराब्रत कहा गया है। यह सभी रोगोंका नाशक, कान्ति एवं सौभाग्य-प्रदायक तथा सपलीके दर्पको नाश करनेवाला है।

गौरीसहित रुद्र, लक्ष्मीसहित विष्णु और राज्ञीसहित भगवान् सूर्यकी मूर्तिको विधिपूर्वक स्थापित कर उनका पूजन करे, घण्टायुक्त गौ, दोहनी और दक्षिणाके साथ उस मूर्तिको ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको देवब्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेसे शरीर दिव्य हो जाता है।

श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प आदिसे शिवलिङ्ग और विष्णुकी मूर्तिका प्रतिदिन एक वर्षतक उपलेपन करनेके बाद जलसे भरे हुए घटके साथ सुन्दर गाय ब्राह्मणको दान दे। यह शुक्लब्रत है। यह व्रत बहुत कल्याणकारी है। इस व्रतको करनेवाला शिवलोकको प्राप्त करता है।

अश्वत्थ, सूर्यनारायण और गङ्गाजीका नित्य प्रणामपूर्वक पूजनकर नौ वर्षतक एकभुक्तव्रत करे, अन्तमें सपलीक ब्राह्मणकी पूजा कर तीन गाय और सुवर्णका वृक्ष ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको कीर्तिव्रत कहते हैं। यह व्रत ऐश्वर्य और कीर्तिको देनेवाला है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये, उसके ऊपर शिव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, गौरी तथा गणपतिको धीसे स्थान कराकर एक वर्षतक प्रतिदिन पूजन करनेके बाद सामवेदका गान करके अन्तमें आठ अंगुलके सुवर्ण-कमलसहित उत्तम गाय ब्राह्मणको दान दे। इस व्रतको सामव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला व्यक्ति शिवलोकको प्राप्त करता है।

नवमीको एकभुक्तव्रत कर अन्तमें कन्याओंको भोजन कराये तथा उन्हें कंचुकी, दो वस्त्र प्रदान करे एवं सुवर्णका सिंहासन भी ब्राह्मणको दे। इस

व्रतको वीरब्रत कहते हैं। जो स्त्री इस व्रतको करती है, उसे अनेक जन्मोंतक सुन्दर रूप, अखण्ड सौभाग्य और सुखकी प्राप्ति होती रहती है। द्वितीयोंको शिवलोककी प्राप्ति होती है। अमावास्यासे जो एक वर्षपर्यन्त श्राद्ध करता है और श्रद्धापूर्वक पाँच पयस्तिनी सवत्सा गौ, पीले वस्त्र तथा जलपूर्ण कलश दान करता है, वह व्यक्ति अपने पूर्वजोंका उद्धारकर विष्णुलोकको प्राप्त करता है। यह पितृब्रत कहलाता है।

जो स्त्री एक वर्षतक ताम्बूलका त्यागकर अन्तमें सुवर्णके तीन ताम्बूल बनाकर उसमें चूनेकी जगह मोती रखकर तथा सुपारीके चूर्णके साथ गणेशको निवेदित कर ब्राह्मणको दान करती है, उसे कभी भी दुर्भाग्यकी प्राप्ति नहीं होती, साथ ही मुखमें उत्तम सुगन्ध और सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। यह पत्रब्रत है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ तथा आषाढ़—इन चार मासोंमें अथवा एक मास या एक पक्षपर्यन्त जलका अयाचितव्रत करना चाहिये। अन्तमें जलपूर्ण कलश, अन्न, वस्त्र, धी, सप्तधान्य, तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दे। इस व्रतको वारिव्रत कहते हैं। वारिव्रतको करनेवाला व्यक्ति एक कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें निवास करनेके बाद पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है।

जो एक वर्षतक पञ्चामृतसे भगवान् शिव और भगवान् विष्णुको स्थान कराकर अन्तमें गाय, शङ्ख और सुवर्ण ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत कालतक शिवलोकमें निवास करता है और राजाका पद प्राप्त करता है। यह वृत्तिब्रत कहलाता है। जो व्यक्ति सर्वथा मांसाहारका परित्याग कर अन्तमें सुवर्णका हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसे अहिंसाब्रत कहते हैं, यह सम्पूर्ण शान्तियोंको देनेवाला है। जो माघ मासमें प्रातःकाल

स्नानकर अन्तमें ब्राह्मण-दम्पतिकी वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे पूजा कर उनको स्वादिष्ट भोजन कराता है, वह आरोग्य और सौभाग्यको प्राप्त करता है और कल्पपर्यन्त सूर्यलोकमें निवास करता है। इस व्रतको सूर्यव्रत कहते हैं।

जो आषाढ़ आदि चार मासोंमें प्रातःकाल स्नानकर कार्तिक पूर्णिमाके दिन घृतकुम्भ और गौ गृहस्थ ब्राह्मणको दान देकर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मण-भोजन कराता है, उसकी सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। यह वैष्णवव्रत कहलाता है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक मधु और घीका त्याग करके अन्तमें घी तथा गौ ब्राह्मणको दानकर घी और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, उसे शील और आरोग्यकी प्राप्ति होती है। इस व्रतको शीलव्रत कहते हैं। जो (नियतकालतक) प्रतिदिन संध्याके समय दीपदान करता है तथा अभक्ष्य पदार्थ एवं तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, सुवर्णके बने चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्र दान करता है, वह महान् तेजस्वी होता है। यह कान्ति प्रदान करनेवाला व्रत दीपव्रत कहलाता है।

जो स्त्री एकभुक्त रहकर एक सप्ताहतक गन्ध, पुष्प, रक्त चन्दन आदिसे भगवती गौरीकी पूजा करती है, साथ ही प्रत्येक दिन क्रम-क्रमसे कुमुदा, माधवी, गौरी, भवानी, पार्वती, उमा तथा काली—इन सात नामोंसे एक-एक सुवासिनी स्त्रीका पुष्प, चन्दन, कुंकुम, ताम्बूल तथा नारिकेल एवं अलंकारोंसे पूजनकर 'कुमुदा प्रीयताम्' इस प्रकारसे कहकर विसर्जन करती है तथा आठवें दिन उन्हें पूजित सुवासिनी स्त्रियोंको निमन्त्रित कर उन्हें षड्हरस भोजन आदिसे तृप्ति कर वस्त्र, माला तथा आभूषण एवं दर्पण आदि प्रदान करती है, साथ ही एक

ब्राह्मणकी भी पूजा करती है, उसे सुन्दर देह और सौभाग्य प्राप्त होता है, इसे सप्तसुन्दरकव्रत कहा जाता है। चैत्र मासमें सभी प्रकारके सुगन्धित पदार्थोंका त्याग करना चाहिये और अन्तमें सुगन्धद्रव्यसे पूर्ण एक सीपी, दो सफेद वस्त्र अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान देना चाहिये। इस व्रतको वरुणव्रत कहते हैं। इसको करनेसे सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वरुणलोककी प्राप्ति होती है।

वैशाख मासमें नमकका त्यागकर अन्तमें सवत्सा गौ ब्राह्मणको दे। यह कान्तिव्रत है। इस व्रतको करनेसे कीर्ति और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा अन्तमें विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। जो तीन पलसे अधिक परिमाणका सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहंकाररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ', ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्ति करे एवं तीन दिनतक तिलव्रती रहे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनमें तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे तो ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम ब्रह्मव्रत है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है।

जो तीन दिनतक दुग्धका आहार कर सुवर्णसहित सवत्सा गौ तथा एक पलसे अधिक सुवर्णसे कल्पवृक्ष बनाकर चावलोंके ढेरपर स्थापित कर उत्तम वस्त्र और पुष्पमालाओंसे ढककर ब्राह्मणको दान करता है, उसे कल्पभर स्वर्गमें निवास-स्थान मिलता है, इसे कल्पव्रत कहते हैं। जो अयाचितव्रतकर सभी अलंकारोंसे अलंकृत एक श्रेष्ठ बछियाका व्यतीपात तथा ग्रहण, अयन-संक्रान्तिमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे परलोकगमनमें

कोई कष्ट नहीं होता तथा उसका मार्ग सुखदायी होता है, इसे द्वारब्रत कहते हैं।

जो एक वर्षतक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है तथा अन्तमें ब्राह्मणको पयस्विनी गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे सुगतिब्रत कहते हैं। जो हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें ईधनका दान करता है और अन्तमें घी तथा गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह आरोग्य, द्युति, कान्ति तथा ब्रह्मपदको प्राप्त करता है। यह वैश्वानरब्रत सभी पापोंका नाशक है। जो एकादशीको नक्तब्रतकर चैत्र मासके चित्रा नक्षत्रमें सुवर्णका शङ्ख और चक्र ब्राह्मणको दान करता है, वह कल्पपर्यन्त विष्णुलोकमें निवास कर पृथ्वीपर राजाका पद प्राप्त करता है। यह विष्णुब्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक पञ्चमीको दुर्घाहार कर अन्तमें दो गाय ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। यह देवीब्रत कहलाता है। जो एक वर्षतक सप्तमीके दिन नक्तब्रत कर अन्तमें पयस्विनी गाय ब्राह्मणको दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। इसे भानुब्रत कहते हैं। जो चतुर्थीको एक वर्षतक रात्रिमें भोजन करता है और अन्तमें आठ गौएँ अग्निहोत्री ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी तरहके विष्णु दूर हो जाते हैं। इसे विनायकब्रत कहते हैं। जो चातुर्मास्यमें फलोंका त्याग कर कार्तिकमें सुवर्णका फल, दो गौ, दो श्वेत वस्त्र और घीसे पूर्ण घट दक्षिणासहित ब्राह्मणको दान करता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इसे फलब्रत कहते हैं।

एक वर्षतक सप्तमीको उपवास कर अन्तमें सुवर्णका कमल बनाकर और कांस्यकी दोहनीसहित सवत्सा गौ पौराणिक ब्राह्मणको दान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह सौरब्रत है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अन्तमें यथाशक्ति

वस्त्रसहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणोंको दान करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। यह गोविन्दब्रत भगवान् गोविन्दके पदको प्राप्त करानेवाला है।

कार्तिक पूर्णिमाको वृषोत्सर्गकर रात्रिमें भोजन करना चाहिये। इस ब्रतको वृषब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे गोलोककी प्राप्ति होती है। कृच्छ-प्रायश्चित्तके अन्तमें गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। यह प्राजापत्यब्रत है। इससे पापशुद्धि होती है। जो एक वर्षतक चतुर्दशीको नक्तब्रत करके अन्तमें दो गायोंका दान करता है, वह शैवपदको प्राप्त करता है। यह त्यम्बकब्रत है। सात रात्रि उपवास कर ब्राह्मणको धृतपूर्ण घटका दान करे। इसे ब्रह्मब्रत कहते हैं, इससे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है।

कार्तिक मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशीको उपवास कर रात्रिके समय पञ्चगव्य-पान करे अर्थात् कपिला गौका मूत्र, कृष्णा गौका गोबर, श्वेत गौका दूध, लाल गौका दही तथा कबरी गौका घी लेकर मन्त्रोंसे कुशोदक मिलाकर प्राशन करे। दूसरे दिन प्रातः स्नानकर देवता और पितरोंका तर्पण आदि करनेके बाद ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करे। इसे ब्रह्मकूर्चब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेसे बाल्य, यौवन और बुढ़ापेमें किये गये सभी प्रकारके पापोंका नाश हो जाता है। जो एक वर्षतक तृतीयाको बिना पकाये अन्न, फल इत्यादिका भोजन करता है और अन्तमें सुन्दर गौ ब्राह्मणको दानमें देता है, वह शिवलोकमें निवास करता है। इसे ऋषिब्रत कहते हैं।

एक वर्षतक ताम्बूल आदि मुखवासके पदार्थोंका त्यागकर अन्तमें ब्राह्मणको गायका दान करे। यह सुमुखब्रत है। इससे कुबेरलोककी प्राप्ति होती है। रात्रिभर जलमें निवास कर प्रातःकाल जो गोदान करता है, उसे वरुणलोककी प्राप्ति होती है। यह

वरुणव्रत कहलाता है। जो चान्द्रायणव्रत करनेके बाद सुवर्णका चन्द्रमा बनाकर ब्राह्मणको दान करता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह चन्द्रव्रत है।

ज्येष्ठ मासकी अष्टमी और चतुर्दशीको पञ्चाग्रि-सेवन करके सुवर्णसहित गौका ब्राह्मणको दान करे, यह रुद्रव्रत है। इससे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। जो एक वर्षतक तृतीयाको शिवालयमें उपलेपन करनेके बाद गोदान करता है वह स्वर्गलोक प्राप्ति करता है। यह भवानीव्रत है।

जो माघ मासकी सप्तमी तिथिको रात्रिमें आर्द्र वस्त्रोंको धारण किये रहता है और उपवास कर ब्राह्मणको गौका दान करता है, वह कल्पभरतक स्वर्गमें निवास करता है। यह तापनव्रत कहलाता है। जो तीन रात्रि उपवास कर फाल्गुनकी पूर्णिमाको गृहदान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह धामव्रत है। पूर्णमासीको उपवासकर तीनों संध्याओंमें वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर सपलीक ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। इस व्रतको इन्दुव्रत कहते हैं। इस व्रतके प्रभावसे उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। जो शुक्ल पक्षकी द्वितीयाको नमकसे भरे हुए काँसेके पात्रके साथ वस्त्र और दक्षिणा एक वर्षतक ब्राह्मणको देता है और अन्तमें शिवमन्दिरमें गोदान करता है, वह कल्पभरतक शिवलोकमें निवास करनेके बाद राजाओंका राजा होता है। इसे सोमव्रत कहते हैं। एक वर्षतक प्रत्येक प्रतिपदाको एक समय भोजन करनेके बाद कपिला गौ ब्राह्मणको दान करे। यह आग्नेयव्रत है। इसके करनेसे अग्निलोककी प्राप्ति होती है।

जो माघ मासकी एकादशी, चतुर्दशी और अष्टमीको एकभुक्त रहता है तथा वस्त्र, जूता, कम्बल, चर्म आदि शीत निवारण करनेवाली वस्तुओंका दान करता है तथा चैत्रमें इन्हीं तिथियोंमें

चाता, पंखा आदि उष्णनिवारक पदार्थोंका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त होता है। यह सौख्यव्रत है। एक वर्षतक दशमी तिथिको एकभुक्तव्रत करके अन्तमें सुवर्णकी स्त्री-रूप दस दिशाओंकी मूर्ति तिलोंकी राशिपर स्थापितकर गायसहित ब्राह्मणको दान करनेसे महापातक दूर हो जाते हैं। यह विश्वव्रत है। इसे करनेसे ब्रह्माण्डका आधिपत्य मिलता है। जो शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिको नक्तव्रत करके सूर्यनारायणका पूजन कर सप्तधान्य और लवण ब्राह्मणको दान देता है, वह अपने सात कुलोंका उद्धार करता है। यह धान्यव्रत है। एक मास उपवासकर जो ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इसे भीमव्रत कहते हैं।

जो तीस पलसे अधिक पर्वत और समुद्रोंसहित स्वर्णकी पृथ्वी बनाकर तिलोंकी राशिपर रखकर कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है तथा दूध पीकर रहता है, वह सात कल्पतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह महीव्रत कहलाता है।

माघ अथवा चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको गुड़का भक्षण करे तथा सभी उपस्करोंसहित गुडधेनु ब्राह्मणको दान दे, उसे उमाव्रत कहते हैं। इस व्रतको करनेवाला गौरीलोकमें निवास करता है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्नका भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे प्राप्तिव्रत कहते हैं। जो कार्तिकसे आरम्भ कर प्रत्येक मासकी तृतीयाको रात्रिमें गोमूत्रमें पकायी गयी लपसीका प्राशन करता है, वह गौरीलोकमें एक कल्पतक निवास करता है, अनन्तर पृथ्वीपर राजा होता है। यह महान् कल्पाणकारी रुद्रव्रत है। जो पुरुष कन्यादान करता है अथवा कराता है, वह अपने इक्कीस कुलोंसहित ब्रह्मलोकको

प्राप्त करता है। कन्यादानसे बढ़कर कोई भी दान उत्तम नहीं है। इस दानको करनेसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। यह कन्यादानब्रत है। तिलपिष्टका हाथी बनाकर दो लाल वस्त्र, अङ्गुश, चामर, माला आदिसे उसको सजाकर तथा ताम्रपात्रमें स्थापित करनेके बाद वस्त्राभूषण आदिसे पत्नीसहित ब्राह्मणका पूजन करके गलेतक जलमें स्थित होकर वह हाथी उनको दान कर दे। यह कान्तारब्रत है। इस ब्रतको करनेसे जंगल आदिसे सम्बन्धित समस्त संकट और पापोंसे छुटकारा मिल जाता है।

जो ज्येष्ठा नक्षत्र आनेपर 'त्रातारमिन्द्र-मवितारमिन्द्रम्' आदि मन्त्रोंसे इन्द्रदेवताका ब्रत-पूजन तथा हवन करते हैं, वे प्रलयपर्यन्त इन्द्रलोकमें निवास करते हैं। इसे पुरन्दरब्रत या इन्द्रब्रत कहते हैं। जो पञ्चमीको दूधका आहार करके सुवर्णकी नाग-प्रतिमा ब्राह्मणको देता है, उसे कभी सर्पका भय नहीं रहता। शुक्ल पक्षकी अष्टमीको उपवास कर दो श्वेत वस्त्र और घण्टासे भूषित बैल ब्राह्मणको दान दे। इसे वृषब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेवाला एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है तथा पुनः राजाका पद प्राप्त करता है। उत्तरायणके दिन एक सेर धीसे सूर्यनारायणको स्नान कराकर उत्तम घोड़ी ब्राह्मणको दे। इस ब्रतको राजीब्रत कहते हैं। इस ब्रतको करनेवाले व्यक्तिको अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह पुत्र, भाई, स्त्री आदिसहित सूर्यलोकमें निवास करता है। जो नवमीको नक्तब्रतकर भगवती विन्ध्यवासिनीकी पूजा कर

पिञ्जरके साथ सुवर्णका शुक ब्राह्मणको प्रदान करता है, उसे उत्तम वाणी और अन्तमें अग्निलोककी प्राप्ति होती है। इसे आग्नेयब्रत कहते हैं।

विष्कुम्भ आदि सत्ताईस योगोंमें नक्तब्रत करके क्रमसे धी, तेल, फल, ईख, जौ, गेहूँ, चना, सेम, शालि-चावल, नमक, दही, दूध, वस्त्र, सुवर्ण, कम्बल, गाय, बैल, छतरी, जूता, कपूर, कुंकुम, चन्दन, पुष्प, लोहा, ताम्र, कांस्य और चाँदी ब्राह्मणको देना चाहिये। यह योगब्रत है। इस ब्रतको करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और उसको कभी अपने इष्टसे वियोग नहीं होता। जो कार्तिकी पूर्णिमासे आरम्भ कर आश्विनकी पूर्णिमातक बारह पूर्णिमाओंमें क्रमसे मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ तथा मीन—इन बारह राशियोंकी स्वर्णप्रतिमाओंको वस्त्र, माल्य आदिसे अलंकृत एवं पूजितकर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान करता है, उसके सम्पूर्ण उपद्रवोंका शमन हो जाता है एवं सारी आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसे सोमलोककी प्राप्ति होती है। यह राशिब्रत कहलाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मैंने इन विविध ब्रतोंको बतलाया है, इन ब्रतोंकी विधि श्रवण करने या पढ़नेमात्रसे ही पातक, महापातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं। जो कोई भी व्यक्ति इन ब्रतोंको भक्तिपूर्वक करेगा, उसे धन, सौख्य, संतान, स्वर्ग आदि कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा। (अध्याय १२१)

माघ-स्नान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! कलियुगमें मनुष्योंको स्नान-कर्ममें शिथिलता रहती है, फिर भी माघ-स्नानका विशेष फल होनेसे इसकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। जिसके हाथ, पाँव, वाणी, मन

अच्छी तरह संयत हैं और जो विद्या, तप तथा कीर्तिसे समन्वित हैं, उन्हें ही तीर्थ, स्नान-दान आदि पुण्य कर्मोंका शास्त्रोंमें निर्दिष्ट फल प्राप्त होता है। परंतु श्रद्धाहीन, पापी, नास्तिक, संशयात्मा

और हेतुवादी (कुतार्किक) — इन पाँच व्यक्तियोंको
शास्त्रोक्त तीर्थ-स्नान आदिका फल नहीं मिलता^१।

प्रयाग, पुष्कर तथा कुरुक्षेत्र आदि तीर्थोंमें अथवा
चाहे जिस स्थानपर माघ-स्नान करना हो तो प्रातःकाल
ही स्नान करना चाहिये। माघ मासमें प्रातः सूर्योदयसे
पूर्व स्नान करनेसे सभी महापातक दूर हो जाते हैं
और प्राजापत्य-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो
ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह सभी
पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।
उष्ण जलसे स्नान, बिना ज्ञानके मन्त्रका जप, श्रेत्रिय
ब्राह्मणके बिना श्राद्ध और सायंकालके समय भोजन
व्यर्थ होता है। वायव्य, वारुण, ब्राह्म और दिव्य—
ये चार प्रकारके स्नान होते हैं। गायोंके रजसे वायव्य,
मन्त्रोंसे ब्राह्म, समुद्र, नदी, तालाब इत्यादिके जलसे
वारुण तथा वर्षाके जलसे स्नान करना दिव्य स्नान
कहलाता है। इनमें वारुण स्नान विशिष्ट स्नान है।
ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी और बालक,
तरुण, वृद्ध, स्त्री तथा नपुंसक आदि सभी माघ
मासमें तीर्थोंमें स्नान करनेसे उत्तम फल प्राप्त करते
हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रपूर्वक स्नान
करें और स्त्री तथा शूद्रोंको मन्त्रहीन स्नान करना
चाहिये। माघ मासमें जलका यह कहना है कि
जो सूर्योदय होते ही मुझमें स्नान करता है, उसके
ब्रह्महत्या, सुरापान आदि बड़े-से-बड़े पाप भी
हम तत्काल धोकर उसे सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र
कर डालते हैं^२।

माघ-स्नानके व्रत करनेवाले व्रतीको चाहिये
कि वह संन्यासीकी भाँति संयम-नियमसे रहे,
दुष्टोंका साथ नहीं करे। इस प्रकारके नियमोंका
दृढ़तासे पालन करनेसे सूर्य-चन्द्रके समान उत्तम

ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है।

पौष-फाल्गुनके मध्य मकरके सूर्यमें तीस दिन
प्रातः माघ-स्नान करना चाहिये। ये तीस दिन विशेष
पुण्यप्रद हैं। माघके प्रथम दिन ही संकल्पपूर्वक
माघ-स्नानका नियम ग्रहण करना चाहिये। स्नान
करने जाते समय व्रतीको बिना वस्त्र ओढ़े जानेसे
जो कष्ट सहन करना पड़ता है, उससे उसे यात्रामें
पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।
तीर्थमें जाकर स्नानकर मस्तकपर मिट्टी लगाकर
सूर्यको अर्घ्य देकर पितरोंका तर्पण करे। जलसे
बाहर निकलकर इष्टदेवको प्रणामकर शङ्ख-चक्रधारी
पुरुषोत्तम भगवान् श्रीमाधवका पूजन करे। अपनी
सामर्थ्यके अनुसार यदि हो सके तो प्रतिदिन हवन
करे, एक बार भोजन करे, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करे
और भूमिपर शयन करे। असमर्थ होनेपर जितना
नियमका पालन हो सके उतना ही करे, परंतु
प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये। तिलका उबटन,
तिलमिश्रित जलसे स्नान, तिलोंसे पितृतर्पण, तिलका
हवन, तिलका दान और तिलसे बनी हुई सामग्रीका
भोजन करनेसे किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होतारे।
तीर्थमें शीतके निवारण करनेके लिये अग्नि प्रज्वलित
करनी चाहिये। तैल और आँवलेका दान करना
चाहिये। इस प्रकार एक माहतक स्नानकर अन्तमें
वस्त्र, आभूषण, भोजन आदि देकर ब्राह्मणका पूजन
करे और कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, रत्न तथा अनेक
प्रकारके पहननेवाले कपड़े, रजाई, जूता एवं जो
भी शीतनिवारक वस्त्र हैं, उनका दान कर 'माधवः
प्रीयताम्' यह वाक्य कहना चाहिये। इस प्रकार
माघ मासमें स्नान करनेवालेके अगम्यागमन, सुवर्णकी
चोरी आदि गुप्त अथवा प्रकट जितने भी पातक हैं,

१-यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनस्तु सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्रुते ॥

अश्रद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः । हेतुनिष्ठाश्च पञ्चते न तीर्थफलभागिनः ॥ (उत्तरपर्व १२२ । ३-४)

२-माघमासे रटन्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ । ब्रह्माण्डं वा सुरापं वा कं कं तं पुनीमहे ॥ (उत्तरपर्व १२२ । १५)

३-तिलस्नायी तिलोदर्ती तिलभोक्ता तिलोदकी । तिलहेता च दाता च पद्मतिलो नावसीदति ॥ (उत्तरपर्व १२२ । २७)

सभी नष्ट हो जाते हैं। माघ-स्नायी पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, मातामह, वृद्धमातामह आदि इक्कीस कुलोंसहित समस्त पितरों आदिका उद्धार

कर और सभी आनन्दोंको प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको प्राप्त करता है^१।

(अध्याय १२२)

स्नान और तर्पण-विधि

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भावकी ही शुद्धि होती है, अतः शरीरकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नान करनेका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरंतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। (किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।) मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूल मन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूल मन्त्र है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्राङ्गित मन्त्रोंद्वारा भगवती गङ्गाका आवाहन करे—'गङ्गे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक मेरे द्वारा किये गये समस्त पापोंसे मेरा त्राण करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे वायुदेवताने (गिनकर) कहा है। माता जाह्वि! वे सब-के-सब तीर्थ तुम्हारे जलमें स्थित हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगङ्गा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरा,

सुप्रसन्ना, लोक-प्रसादिनी, क्षेम्या, जाह्वी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं^२। जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती हैं।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तकपर डाले, फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित कर अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।

मृत्तिके हर मे सर्व यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

उद्धतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।

नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते॥

(उत्तरपर्व १२३। १२-१३)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, उन सबोंको दूर कर दो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंके समस्त प्राणियोंमें प्राण संचार करनेवाली हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

१-माघ-स्नान-माहात्म्यके नामसे विभिन्न पुराणोंके कई स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। जिनका सारभूत अंश इस अध्यायमें उद्धृत है।

२-विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता। पाहि नस्त्वेनस्त्वस्मादाजन्मरणान्तिकात्॥

तित्त्वः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्। दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्वि॥

नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च। क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया शिवामृता॥

विद्याधरा सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी। क्षेम्या तथा जाह्वी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ (उत्तरपर्व १२३। ५-८)

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे। फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चहर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे। तत्पश्चात् देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराओं, क्रूर सर्प, गरुड पक्षी, वृक्ष, जम्भक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ—यह कहकर उन सबको जलाञ्जलि देइ। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। ‘सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोदु और पञ्चशिख’—ये सभी मेरे दिये जलसे सदा तृप्त हों।’ ऐसी भावना करके जल दे। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षतसहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर रखकर बायें घुटनेको पृथक्कीपर टेककर बैठे, फिर अग्रिष्वात्, बर्हिषद्, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, भौम, सोमप तथा आज्यप-संज्ञक पितरोंका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्र भावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके

निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमिखिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥

(उत्तरपर्व १२३। २५)

जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति-लाभ करें। (ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये।)

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन कर अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यत्पूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्त चन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य दे। अर्घ्य-दानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विष्णुसखाय वै॥
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे॥
नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते सर्वशक्तये॥
जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदधारिणे॥
नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानासि सर्वदा॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १२३। २७—३१)

‘हे भगवान् सूर्य! आप विश्वरूप और भगवान् विष्णुके सखा हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है। आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। सर्वशक्तिमान्

१-देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः। क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरबो जम्भकादयः॥

विद्याधरा जलधारास्तथैवाकाशगमिनः। निराधाराश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये॥

तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया। (उत्तरपर्व १२३। १५—१७)

२-सनकः सनन्दनश्चैव तृतीयश्च सनातनः। कपिलश्चासुरिश्चैव वोदुः पञ्चशिखस्तथा॥

सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा। (उत्तरपर्व १२३। १८—१९)

भगवन्! सर्वरूपधारी आप परमेश्वरको बार-बार नमस्कार है। दिव्य चन्दनसे भूषित और संसारके स्वामी भगवन्! आपको नमस्कार है। कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषण धारण करनेवाले पद्मनाभ! आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सम्पूर्ण लोकोंके ईश और सभी देवोंके द्वारा वन्दित हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सब पाप-पुण्यको भलीभाँति

जानते हैं। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। सर्वदेव! आपको नमस्कार है। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करे। फिर द्विज, गौ तथा सुवर्णका स्पर्श कर अपने घर जाय और वहाँ भगवान्की प्रतिमाका पूजन करे। (अध्याय १२३)

रुद्र-स्नानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप सभी दोषोंको शान्त करनेवाले रुद्र-स्नानके विधानका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! इस सम्बन्धमें महर्षि अगस्त्यके पूछनेपर देवसेनापति भगवान् स्कन्दने जो बताया था, उसे आप सुनें। जो मृतवत्सा (जिसके लड़के अल्प अवस्थामें मर जाते हों), वन्ध्या, दुर्भगा, संतानहीन या केवल कन्या जनती हो, उस स्त्रीको चाहिये कि वह रुद्र-स्नान करे। अष्टमी, चतुर्दशी अथवा रविवारके दिन नदीके तटपर या महानदियोंके संगममें, शिवालयमें, गोष्ठमें अथवा अपने घरमें सुयोग्य ब्राह्मणद्वारा स्नान-विधिका परिज्ञान कर स्नान करे। वह गोबरद्वारा उपलिस स्थानमें एक उत्तम मण्डप बनाकर उसके मध्यमें अष्टदल कमल बनाये। उसके मध्यमें कर्णिकाके ऊपर भगवान् महादेवकी, उनके वाम तथा दक्षिण भागमें क्रमशः पार्वती एवं विनायककी और कमलके अष्टदलोंमें इन्द्रादि दिक्पालोंकी स्थापना करे। तदनन्तर गन्धादि उपचारोंसे उनकी पूजा करे। मण्डपके चारों कोणोंमें कलश स्थापित करे। चारों दिशाओंमें भूत-बलि भी दे। मण्डपके अग्निकोणमें कुण्ड बनाकर नमक, सर्षप,

घी और मधुसे 'मा नस्तोके तनये०' (यजु० १६। १६) इत्यादि वैदिक मन्त्रसे हवन करे। आचार्य, ब्रह्मा एवं ऋत्विजोंके साथ जापका भी वरण करे। एकादश रुद्रपाठ भी कराये। इस प्रकार दूसरे मण्डपका निर्माण कर उस व्रतकर्त्री स्त्रीको मण्डपमें बैठाकर रुद्रपूजक आचार्य उसे स्नान करायें। अर्क-पत्रके दोनोंमें जल लेकर रुद्रैकादशिनीका पाठ कर उस अभिमन्त्रित जलसे स्त्रीका अभिषेक करे। अनन्तर सप्तमृत्तिकामिश्रित जल, रुद्र-कलशके जल एवं इन्द्रादि दिक्पालोंके पूजित कलशोंके अभिमन्त्रित जलसे उसे स्नान कराये। इस प्रकार रुद्र-स्नान-विधि पूर्ण हो जानेपर स्वर्णमयी धेनु प्रत्यक्ष धेनु तथा अन्य सामग्री आचार्यको दान करे और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वस्त्र, दक्षिणा देकर क्षमा-याचना करे। जो स्त्री इस विधिसे स्नान करती है, वह सौभाग्य-सुख प्राप्त करती है और पुत्रवती होती है। उसके शरीरमें रहनेवाले सभी दोष ब्राह्मणोंकी आज्ञासे, रुद्र-स्नान करनेसे दूर हो जाते हैं। पुत्र, लक्ष्मी तथा सुखकी इच्छा करनेवाली नारीको यह व्रत अवश्य करना चाहिये, इससे वह जीवितवत्सा हो जाती है।

(अध्याय १२४)

ग्रहण-स्नानका माहात्म्य और विधान^१

युधिष्ठिरने कहा—द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्णवेदविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जो विधि है, मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस पुरुषकी राशिपर ग्रहणका प्लावन (लगाना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औषधसहित स्नानका जो विधान है, उसे मैं बतला रहा हूँ। ऐसे मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर चार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर गन्ध-माल्य आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औषध आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्ररहित चार कलशोंकी, उनमें समुद्रकी भावना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमृत्तिका—हाथीसार, घुड़साल, वल्मीक (बल्मोट-दियाड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारकी मिट्टी लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगव्य, मोती, गोरोचन, कमल, शङ्ख, पञ्चरत, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, राजदन्त (एक ओषधि-विशेष), कुमुद (कुई), खस, गुग्गुल—यह सब डालकर उन कलशोंपर देवताओंका आवाहन इस प्रकार करे—‘सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जलप्रद तीर्थ यजमानके पापोंको नष्ट करनेके लिये यहाँ पधारें।’ इसके बाद प्रार्थना करे—‘जो देवताओंके स्वामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे वज्रधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीड़ाको दूर करें। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात जिह्वाओंसे युक्त और अतुल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे

उत्पन्न हुई मेरी पीड़ाका विनाश करें। जो समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं तथा महिष जिनका वाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उद्भूत हुई मेरी पीड़ाको मिटायें। जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयाग्निके सदृश भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्वृति देव मेरी ग्रहणजन्य पीड़ाको दूर करें। जो नागपाश धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका वाहन है, वे जलाधीश्वर साक्षात् वरुणदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीड़ाको नष्ट करें। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय वाहन है, वे वायुदेव मेरी चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीड़ाका विनाश करें।’

‘जो (नौ) निधियोंके^२ स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं, वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीड़ाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्घम प्राणी हैं, वे सभी मेरे (चन्द्रजन्य) पापको भस्म कर दें।’ इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर ब्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे।

१—यह अध्याय मत्स्यपुराणके ६८ वें अध्यायमें इसी प्रकार प्राप्त है, लेकिन भविष्यपुराणका पाठ कुछ त्रुटिपूर्ण एवं अशुद्ध है, अतः उसे शुद्ध करनेके लिये मत्स्यपुराणकी सहायता ली गयी है।

२—पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ ही प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च—ये नौ निधिगण हैं।

तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमलदलपर अङ्कित करें, फिर द्रव्ययुक्त उन कलशोंको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माझ़लिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे।

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीड़ा

होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहण-स्नानकी विधि)-को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है : (अध्याय १२५)

मरणासन्न (मृत्युके पूर्व) प्राणीके कर्तव्य तथा ध्यानके चतुर्विध भेद

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! गृहस्थ व्यक्तिको अपने अन्त समयमें क्या करना चाहिये*। कृपाकर इस विधिको आप बतायें। मुझे यह सुननेकी बहुत ही अभिलाषा है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! जब मनुष्यको यह ज्ञात हो जाय कि उसका अन्त समीप आ गया है तो उसे गरुडध्वज भगवान् विष्णुका स्मरण करना चाहिये। स्नान करके पवित्र हो शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण कर अनेक प्रकारके पुष्पादि उपचारोंसे नारायणकी पूजा एवं स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करे। अपनी शक्तिके अनुसार गाय, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदिका दान करे और बन्धु, पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र, धन, धान्य तथा पशु आदिसे चित्तको हटाकर ममत्वका परित्याग कर दे। मित्र, शत्रु, उदासीन अपने और पराये लोगोंके उपकार और अपकारके विषयमें विचार न करे अर्थात् शान्त हो जाय। प्रयत्नपूर्वक

सभी शुभ एवं अशुभ कर्मोंका परित्याग कर इन श्लोकोंका स्मरण करे—‘मैंने समस्त भोगों एवं मित्रोंका परित्याग कर दिया, भोजन भी छोड़ दिया तथा अनुलेपन, माला, आभूषण, गीत, दान, आसन, हवन आदि क्रियाएँ पदार्थ, नित्य-नैमित्तिक और काम्य सभी क्रियाओंका उत्सर्जन कर दिया है। श्राद्धधर्मोंका भी मैंने परित्याग कर दिया है, आश्रमधर्म और वर्णधर्म भी मैंने छोड़ दिये हैं। जबतक मेरे हाथ-पैर चल रहे हैं, तबतक मैं स्वयं अपना कार्य कर लूँगा, मुझसे सभी निर्भय रहें, कोई भी पाप कर्म न करे। आकाश, जल, पृथ्वी, विवर, बिल, पर्वत, पत्थरोंके मध्य, धान्यादि फसलों, वस्त्र, शयन तथा आसनों आदिमें जो कोई प्राणी अवस्थित हैं, वे मुझसे निर्भय होकर सुखी रहें। जगद्गुरु भगवान् विष्णुके अतिरिक्त मेरा कोई बन्धु नहीं। मेरे नीचे-ऊपर, दाहिने-बाँयें, मस्तक, हृदय, बाहुओं,

* इसी तरहकी बातें गरुडपुराण, भागवत १। १९। ३७-३८ आदिमें महाराज परीक्षितद्वारा महर्षि शुकदेवजी आदिसे पूछी गयी हैं तथा मनुष्यके जीवनका कब अन्त हो जाय, यह नहीं कहा जा सकता। अतः सदा ही ध्यानपूर्वक भगवान्का स्मरण-भजन करते रहना चाहिये, यही सबका सारांश है।

नेत्रों तथा कानोंमें मित्ररूपमें भगवान् विष्णु ही विराज रहे हैं* ।'

इस प्रकार सब कुछ छोड़कर सर्वेश भगवान् अच्युतको हृदयमें धारण कर निरन्तर वासुदेवके नामका कीर्तन करता रहे और जब मृत्यु अति समीप आ जाय, तब दक्षिणाग्र कुशा बिछाकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर सिरकर शयन करे तथा जगत्पति भगवान् विष्णुका इस प्रकार चिन्तन करे— विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् । नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ वाराहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । वामनं श्रीधरं कृष्णं नृसिंहमपराजितम् ॥ पद्मनाभमजं श्रीशं दामोदरमधोक्षजम् । सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं विश्वरूपिणम् ॥ चक्रिणं गदिनं शान्तं शङ्खिनं गरुडध्वजम् । किरीटकौस्तुभधरं प्रणामाम्यहमव्ययम् ॥ अहमस्मि जगन्नाथ मयि वासं कुरु द्रुतम् । आवयोरन्तरं मास्तु समीराकाशयोरिव ॥ अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम । नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥ एष पश्यतु मामीशः पश्याम्यहमधोक्षजम् । इत्थं जपेदेकमनाः स्मरन् सर्वेश्वरं हरिम् ॥

(उत्तरपर्व १२६ । १९—२५)

'भगवान् विष्णु, जिष्णु, हृषीकेश, केशव, मधुसूदन, नारायण, नर, शौरि, वासुदेव, जनार्दन, वाराह, यज्ञपुरुष, पुण्डरीकाक्ष, अच्युत, वामन, श्रीधर, कृष्ण, नृसिंह, अपराजित, पद्मनाभ, अज, श्रीश,

दामोदर, अधोक्षज, सर्वेश्वरेश्वर, शुद्ध, अनन्त, विश्वरूपी, चक्री, गदी, शान्त, शङ्खी, गरुडध्वज, किरीटकौस्तुभधर तथा अव्यय परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ । जगन्नाथ! मैं आपका ही हूँ, आप शीघ्र मुझमें निवास करें । वायु एवं आकाशकी तरह मुझमें और आपमें कोई अन्तर न रहे । मैं नीले कमलके समान श्यामवर्ण, कमलनयन भगवान् विष्णु अथवा शौरि या भगवान् श्रीकृष्ण आपको अपने सामने देख रहा हूँ, आप भी मुझे देखें ।'

इन मन्त्रोंको पढ़कर भगवान् विष्णुको प्रणाम करे और उनका दर्शन करे तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्रका निरन्तर जप करता रहे । जो व्यक्ति प्रसन्नमुख, शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए, केयूर, कटक, कुण्डल, श्रीवत्स, पीताम्बर आदिसे विभूषित, नवीन मेघके समान श्यामस्वरूप भगवान् विष्णुका ध्यान कर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो भगवान् अच्युतमें लीन हो जाता है ।

राजा युधिष्ठिरने पुनः पूछा—भगवन्! अन्त समयकी जो यह विधि आपने बतायी, वह स्वस्थचित्त रहनेपर ही सम्भव है, परंतु अन्तसमयमें तरुण और नीरोगी पुरुषोंकी भी चित्तवृत्ति मोहग्रस्त हो जाती है, वृद्ध और रोगियोंकी तो बात ही क्या है । अतिवृद्ध और रोगग्रस्त व्यक्तिके लिये कुशाके आसनपर ध्यान करना तो असम्भव ही है । इसलिये प्रभो! दूसरा भी कोई सुगम उपाय बतानेका कष्ट करें, जिससे साधन निष्फल न हो ।

* परित्यजाम्यहं भोगांस्त्यजामि सुहदोऽखिलान् । भोजनं हि मयोत्सृष्टमुत्सृष्टमनुलेपनम् ॥
स्नाभूषणादिकं गेयं दानमासनमेव च । होमादयः पदार्था ये ये च नित्यक्रमागताः ॥
नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मदयोज्जिताः । त्यक्ताश्चाश्रमिका धर्मा वर्णधर्मस्तथोज्जिताः ॥
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन् कुर्वाणः कर्म चोद्धर्वन् । न पापं कस्यचिन्नाय्याः प्राणिनः सन्तु निर्भयाः ॥
न भूसि प्राणिनो ये च ये जले ये च भूतले । क्षितेर्विवरणा ये च ये च पापाणसमुद्देश्याः ॥
धान्यादिषु च वस्त्रेषु शयनेज्वासनेषु च । ते स्वयं तु विवुध्यन्ते दत्तं ते भ्योऽभयं मया ॥
न मेऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्तवा जगदगुरुम् । मित्रपक्षे च मे विष्णुरथोर्ध्वं तथा पुनः ॥
पार्श्वतो मूर्ध्नि हृदये बाहुभ्यां चैव चक्षुषोः । श्रोत्रादिषु च सर्वेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ॥ (उत्तरपर्व १२६ । १९—१६)

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! यदि और कुछ करना सम्भव न हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि चारों तरफसे चित्तवृत्ति हटाकर गोविन्दका स्मरण करते हुए प्राणका त्याग करना चाहिये, क्योंकि व्यक्ति जिस-जिस भावका स्मरण कर प्राण त्यागता है, उसे वही भाव प्राप्त होता है । अतः सब प्रकारसे निवृत्त होकर निरन्तर वासुदेवका चिन्तन करना चाहिये^१ ।

राजन् ! अब आप भगवान्‌के चिन्तन-ध्यानके स्वरूपोंको सुनें, जिन्हें महर्षि मार्कण्डेयजीने मुझसे कहा था—राज्य, उपभोग, शयन, भोजन, वाहन, मणि, स्त्री, गन्ध, माल्य, वस्त्र, आभूषण आदिमें यदि अत्यन्त मोह रहता है तो यह रागजनित 'आद्य' ध्यान है ।

यदि जलाने, मारने, तड़पाने, किसीके ऊपर प्रहार करनेकी द्वेषपूर्ण वृत्ति हो और दया न आये

तो इसे ही क्रोधजनित 'रौद्र' ध्यान कहा गया है । वेदार्थके चिन्तन, इन्द्रियोंके उपशमन, मोक्षकी चिन्ता, प्राणियोंके कल्याणकी भावना आदि ही धर्मपूर्ण सात्त्विक ('धर्म्य') ध्यान है । समस्त इन्द्रियोंका अपने-अपने विषयोंसे निवृत्त हो जाना, हृदयमें इष्ट-अनिष्ट किसीकी भी चिन्ता नहीं करना और आत्मस्थिर होकर एकमात्र परमेश्वरका चिन्तन करना, परमात्मनिष्ठ हो जाना—यह 'शुक्ल'-ध्यानका स्वरूप है । 'आद्य'-ध्यानसे तिर्यक्-योनि तथा अधोगतिकी प्राप्ति होती है, 'रौद्र'-ध्यानसे नरक प्राप्ति होता है । 'धर्म्य' (सात्त्विक)-ध्यानसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है और 'शुक्ल'-ध्यानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे कल्याणकारी 'शुक्ल'-ध्यानमें ही मन-चित्त सदा लगा रहे ।

(अध्याय १२६)

इष्टापूर्तरैकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन् ! विधिपूर्वक वापी, कूप, तडाग, बावली, वृक्षोद्यान तथा देवमन्दिर आदिका निर्माण करानेवाले तथा इन कार्योंमें सहयोगी—कर्मकार शिल्पी, सूत्रधार आदि सभी पुण्यकर्मा पुरुष अपने इष्टापूर्तधर्मके प्रभावसे सूर्य एवं चन्द्रमाकी प्रभाके समान कान्तिमान् विमानमें बैठकर दिव्यलोकको प्राप्त करते हैं । जलाशय आदिकी खुदाईके समय जो जीव मर जाते हैं, उन्हें भी उत्तम गति प्राप्त होती है । गायके शरीरमें जितने भी रोमकूप हैं, उतने दिव्य वर्षतक

तडाग आदिका निर्माण करनेवाला स्वर्गमें निवास करता है । यदि उसके पितर दुर्गतिको प्राप्त हुए हों तो उनका भी वह उद्धार कर देता है । पितृगण यह गाथा गाते हैं कि देखो ! हमारे कुलमें एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने जलाशयका निर्माणकर प्रतिष्ठा की । जिस तालाबके जलको पीकर गौएँ संतृप्त हो जाती हैं, उस तालाब बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है । तडाग, वापी, देवालय और सघन छायावाले वृक्ष—ये चारों इस संसारसे उद्धार करते हैं ।

१-तिष्ठन् भुजन् स्वपन् गच्छस्तथा धावत्रितस्ततः । उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरस्तम्यो भवेत् ॥

यं यं चापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् । तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्वावभावितः ॥

(उत्तरपर्व १२६ । ३९-४०)

२-भविष्यपुराणमें यह विषय तीन पर्वोंमें तीन बार आया है और वेदोंसे लेकर स्मृतियों तथा अन्य पुराणोंमें भी बार-बार आता है । यह अन्तर्वेदी और बहिर्वेदीके नामसे विख्यात है । इसमें जलाशय, वृक्ष, उद्यान आदि लगानेसे सर्वाधिक पुण्योंका लाभ बताया गया है । यहाँ इसका थोड़ा-सा संक्षेप कर दिया गया है । मात्र सारभूत बातें दी गयी हैं ।

जिस प्रकार पुत्रके देखनेसे माता-पिताके स्वरूपका ज्ञान होता है, उसी प्रकार जलाशय देखने और जल पीनेसे उसके कर्तिके शुभाशुभका ज्ञान होता है। इसलिये न्यायसे धनका उपार्जन कर तडाग आदि बनवाना चाहिये। धूप और गर्मीसे व्याकुल पथिक यदि तडागादिके समीप जलका पान करे और वृक्षोंकी घनी छायामें ठंडी हवाका सेवन करता हुआ विश्राम करे तो तडागादिकी प्रतिष्ठा करनेवाला व्यक्ति अपने मातृकुल और पितृकुलका उद्धार कर स्वयं भी सुख प्राप्त करता है। इष्टापूर्तकर्म करनेवाला पुरुष कृतकृत्य हो जाता है। इस लोकमें जो तडागादि बनवाता है, उसीका जन्म सफल है और उसीकी माता पुत्रिणी कहलाती है। वही अजर है, वही अमर है। जबतक तडाग आदि स्थित हैं और उसकी निर्मल कीर्तिका प्रचार-प्रसार होता रहता है, तबतक वह व्यक्ति स्वर्गवासका सुख प्राप्त करता है। जो व्यक्ति हंस आदि पक्षीको कमल और कुवलय आदि पुष्पोंसे युक्त अपने तडागमें जल पीता हुआ देखता है और जिसके तालाबमें घट, अञ्जलि, मुख तथा चंचु आदिसे अनेक जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी व्यक्तिका जन्म सफल है, उसकी कहाँतक प्रशंसा की जाय। जो तडाग आदि बनाकर उसके किनारे देवालय बनवाता है तथा उसमें देवप्रतिष्ठा करता है, उसके पुण्यका कहाँतक वर्णन किया जाय? देवालयकी ईंट जबतक खण्ड-खण्ड न हो जाय, तबतक देवालय बनानेवाला व्यक्ति स्वर्गमें निवास करता है। कूप ऐसे स्थानपर बनवाना चाहिये, जहाँ बहुत-से जीव जल पी सकें, कूपका जल स्वादिष्ट हो तो कूप बनवानेवालेके सात कुलोंका उद्धार हो जाता है। जिसके बनाये हुए कूपका जल मनुष्य पीते हैं, वह सभी प्रकारका पुण्य प्राप्त कर लेता है, ऐसा मनुष्य सभी प्राणियोंका उपकार करता

है। तडाग बनवाकर उसके तटपर वृक्षोंके बीच उत्तम देवालय बनवानेसे उस व्यक्तिकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त रहती है और बहुत समयतक दिव्य भोग भोगकर वह चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है। जो व्यक्ति वापी, कूप, तडाग, धर्मशाला आदि बनवाकर अन्नका दान करता है और जिसका वचन अति मधुर है, उसका नाम यमराज भी नहीं लेते।

वे वृक्ष धन्य हैं, जो फल, फूल, पत्र, मूल, वल्कल, छाल, लकड़ी और छायाद्वारा सबका उपकार करते हैं। वस्तुओंके चाहनेवालोंको वे कभी निराश नहीं करते। धर्म-अर्थसे रहित बहुतसे पुत्रोंसे तो मार्गमें लगाया गया एक ही वृक्ष श्रेष्ठ है, जिसकी छायामें पथिक विश्राम करते हैं। सघन छायावाले श्रेष्ठ वृक्ष अपनी छाया, पल्लव और छालके द्वारा प्राणियोंको, पुष्पोंके द्वारा देवताओंको और फलोंके द्वारा पितरोंको प्रसन्न करते हैं। पुत्र तो निश्चित नहीं है कि एक वर्षपर भी श्राद्ध करेगा या नहीं, परंतु वृक्ष तो प्रतिदिन अपने फल-मूल, पत्र आदिका दानकर वृक्ष लगानेवालेका श्राद्ध करते हैं। वह फल न तो अग्निहोत्रादि कर्म करनेसे और न ही पुत्र उत्पन्न करनेसे प्राप्त होता है, जो फल मार्गमें छायादार वृक्षके लगानेसे प्राप्त होता है।

छायादार वृक्ष, पुष्प देनेवाले वृक्ष, फल देनेवाले वृक्ष तथा वृक्षवाटिका कुलीन स्त्रीकी भाँति अपने पितृकुल तथा पतिकुल दोनों कुलोंको उसी प्रकार सुख देनेवाले होते हैं, जैसे लगाये गये वृक्ष आदि अपने लगानेवाले तथा रक्षा आदि करनेवाले दोनोंके कुलोंका उद्धार कर देते हैं। जो भी बगीचा आदि लगाता है, उसे अवश्य ही उत्तम लोककी प्राप्ति होती है और वह व्यक्ति नित्य गायत्रीजपका, नित्य दानका और नित्य यज्ञ करनेका फल पाता है। जो पुरुष एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस इमली तथा एक-एक कैथ, बिल्व और

आमलक तथा पाँच आमके वृक्ष लगाता है, वह कभी नरकका मुँह नहीं देखता*। जिसने जलाशय न बनवाया हो और एक भी वृक्ष न लगाया हो, उसने संसारमें जन्म लेकर कौन-सा कार्य किया। वृक्षोंके समान कोई भी परोपकारी नहीं है। वृक्ष धूपमें खड़े रहकर दूसरोंको छाया प्रदान करते हैं तथा फल, पुष्ट आदिसे सबका सत्कार करते हैं। मानवोंकी शुभ गति पुत्रोंके बिना नहीं होती—यह कथन तो उचित ही है, किंतु यदि पुत्र कुपुत्र हो गया तो वह अपने पिताके लिये कलंकस्वरूप तथा नरकका हेतु भी बन जाता है। इसलिये विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि विधिपूर्वक वृक्षारोपण

करके उसका पालन-पोषण करे। इससे संसारमें न तो कलंक होता है और न निन्द्य गति ही प्राप्त होती है, बल्कि कीर्ति, यश एवं अन्तमें शुभ गति प्राप्त होती है।

इसी प्रकार जो व्यक्ति भव्य देव-मन्दिर बनवाकर उसमें देवमूर्तियोंकी प्रतिमाओंको स्थापित करता है, मन्दिरमें अनुलेपन, देवताओंका अभिषेक, दीपदान तथा विविध उपचारोंद्वारा उनकी अर्चा करता अथवा करवाता है, वह इस संसारमें राज्यश्री प्राप्त कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करता है तथा इस लोकमें कीर्ति एवं यशरूपी शरीरसे प्रतिष्ठित रहता है। (अध्याय १२७—१२९)

दीपदानकी महिमाके प्रसंगमें जातिस्मरा रानी ललिताका आख्यान

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! वह कौन-सा व्रत, तप, नियम अथवा दान है, जिसके करनेसे इस लोकमें अत्यन्त तेजोमय शरीरकी प्राप्ति होती है। इसे आप बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! किसी समय पिंगल नामके एक तपस्वी मथुरामें आकर प्रवास कर रहे थे। उन तपस्वीसे देवी जाम्बवतीने भी यही प्रश्न किया था, उस विषयको आप सुनें—पिंगलमुनिने कहा था—‘देवि ! संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण, वैधृति, व्यतिपातयोग, उत्तरायण, दक्षिणायन, विषुव, एकादशी, शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी, तिथिक्षय, सप्तमी तथा अष्टमी—इन पुण्य दिनोंमें स्नान कर, व्रतपरायण स्त्री अथवा पुरुषको अपने आँगनके मध्य घृत-कुम्भ और जलता हुआ दीपक भूमिदेवको दान देना चाहिये। इससे प्रदीप एवं ओजस्वी शरीर प्राप्त होती है।’

राजा युधिष्ठिरने पूछा—मधुसूदन ! भूमिके देवता कौन हैं ? मेरे इस संशयको दूर करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! पूर्वकालमें सत्ययुगके आदिमें त्रिशंकु नामका एक (सूर्यवंशी) राजा था, जो सशरीर स्वर्गको जाना चाहता था। पर महर्षि वसिष्ठने उसे चाण्डाल बना दिया, इससे त्रिशंकु बहुत दुःखी हुआ और उसने विश्वामित्रजीसे समस्त वृत्तान्त कहा। इससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्रने दूसरी सृष्टिकी रचना प्रारम्भ कर दी। उस सृष्टिमें सभी देवताओंके साथ-साथ त्रिशंकुके लिये दूसरा स्वर्ग बनाना प्रारम्भ कर दिया और शृङ्खलक (सिंघाड़), नारियल, कोद्रव, कूष्माण्ड, ऊँट, भेड़ आदिका निर्माण किया एवं नये सप्तर्षि तथा देवताओंकी प्रतिमाका भी निर्माण कर दिया। उस समय इन्द्रने आकर इनकी प्रार्थना की और विश्वामित्रजीसे सृष्टि रोकनेका अनुरोध किया तथा

* अश्वथमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश तिन्तिडीकान्। कपित्थविल्वामलकीत्रयं च पञ्चाम्ररोपी नरकं न पश्येत्॥

दीपदान करनेकी सम्मति दी। जो प्रतिमाएँ इन्होंने बनायी थीं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवताओंका वास हुआ और वे ही इस संसारके प्राणियोंका कल्याण करनेके लिये मर्त्यलोकमें प्रतिमाओंमें मूर्तिमान् रूपमें स्थित हुए एवं नैवेद्यादिको ग्रहण करते हैं तथा अपने भक्तोंपर प्रसन्न होकर वरदान देते हैं, वे ही भूमिदेव कहलाते हैं। राजन्! इसीलिये उनके सम्मुख दीपदान करना चाहिये। भगवान् सूर्यके लिये प्रदत्त दीपकी रक्त वस्त्रसे निर्मित वर्तिका 'पूर्णवर्ति' कहलाती है। इसी प्रकार शिवके लिये निर्मित श्वेत वस्त्रकी वर्तिका 'ईश्वरवर्ति', विष्णुके लिये निर्मित पीत वस्त्रकी वर्तिका 'भोगवर्ति', गौरीके लिये निर्मित कुसुम रंगके वस्त्रकी वर्तिका 'सौभाग्यवर्ति', दुग्धके लिये लाखके रंगके समान रंगवाले वस्त्रकी वर्तिका 'पूर्णवर्तिका' कहलाती है। ऐसे ही ब्रह्माके लिये प्रदत्त वर्तिका 'पद्मवर्ति', नागोंके लिये प्रदत्त वर्तिका 'नागवर्ति' तथा ग्रहोंके लिये प्रदत्त वर्तिका 'ग्रहवर्ति' कहलाती है। इन देवताओंके लिये ऐसे ही वर्तिकायुक्त दीपकका दान करना चाहिये। पहले देवताका पूजन करनेके बाद बड़े पात्रमें घी भरकर दीपदान करना चाहिये। इस विधिसे जो दीपदान करता है, वह सुन्दर तेजस्वी विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता है और वहाँ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। जिस प्रकार दीप प्रकाशित होता है, उसी प्रकार दीपदान करनेवाला व्यक्ति भी प्रकाशित होता है। दीपके शिखाकी भाँति उसकी भी ऊर्ध्वगति होती है। दीपक धृत या तेलके जलाने चाहिये, वसा, मज्जा आदि तरलद्रव्ययुक्तके नहीं। जलते हुए दीपको बुझाना नहीं चाहिये, न ही उस स्थानसे हटाना चाहिये। दीप बुझा देनेवाला काना होता है और दीपको चुरानेवाला अंधा होता है। दीपका बुझाना निन्दनीय कर्म है।

राजन्! आप दीपदानके माहात्म्यमें एक आख्यान सुनें—विदर्भ देशमें चित्ररथ नामका एक राजा रहता था। उस राजाके अनेक पुत्र थे और एक कन्या थी, जिसका नाम था ललिता। वह सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अत्यन्त सुन्दर थी। राजा चित्ररथने धर्मका अनुसरण करनेवाले महाराज काशिराज चारुधर्मके साथ ललिताका विवाह किया। चारुधर्मकी यह प्रधान रानी हुई। वह विष्णु-मन्दिरमें सहस्रों प्रज्वलित दीपक प्रतिदिन जलाया करती थी। विशेषरूपसे आश्विन-कार्तिकमें बड़े समारोहपूर्वक दीपदान करती थी। वह चौराहों, गलियों, मन्दिरों, पीपलके वृक्षके पास, गोशाला, पर्वतशिखर, नदीतटों तथा कुओंपर प्रतिदिन दीपदान करती थी। एक बार उसकी सपनियोंने उससे पूछा—'ललिते! तुम दीपदानका फल हमें भी बतलाओ। तुम्हारी भक्ति देवताओंके पूजन आदिमें न होकर दीपदानमें इतनी अधिक क्यों है?' यह सुनकर ललिताने कहा—'सखियो! तुमलोगोंसे मुझे कोई शिकायत नहीं है, न ही ईर्ष्या, इसलिये मैं तुमलोगोंसे दीपदानका फल कह रही हूँ। ब्रह्माजीने मनुष्योंके उद्घारके लिये साक्षात् पार्वतीजीको मद्रदेशमें श्रेष्ठ देविका नदीके रूपमें पृथ्वीपर अवतरित किया, वह पापोंका नाश करनेवाली है, उसमें एक बार भी स्नान करनेसे मनुष्य शिवजीका गण हो जाता है। उस नदीमें जहाँ भगवान् विष्णुने नृसिंहरूपसे स्वयं स्नान किया था, उस स्थानको नृसिंहतीर्थ कहते हैं। नृसिंहतीर्थमें स्नान करनेमात्रसे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।'

सौवीर नामके एक राजा थे, जिसके पुरोहित थे मैत्रेय। राजाने देविकाके तटपर एक विष्णुमन्दिर बनवाया। उस मन्दिरमें मैत्रेयजी प्रतिदिन पुष्ट, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे पूजन और दीपदान किया

करते थे। वे एक दिन कार्तिककी पूर्णिमाको वहाँ दीपदानका बहुत बड़ा उत्सव मना रहे थे। रात्रिके समय सभी लोगोंको नींद आ गयी। उस मन्दिरमें अपने पूर्वजन्ममें मूषिकारूपमें रहनेवाली मुझे दीपककी घृतवर्तिको खानेकी इच्छा हुई। उसी क्षण मुझे बिल्लीकी आवाज सुनायी दी। मैंने भयभीत होकर दीपककी बत्ती छोड़ दी और छिप गयी, वह दीपक बुझने नहीं पाया। मन्दिरमें पूर्ववत् प्रकाश हो गया। कुछ काल बाद मेरी मृत्यु हो गयी, पुनः मैं विद्युदेशमें चित्ररथ राजाकी राजकन्या हुई और काशिराज चारुधर्माकी मैं पटरानी हुई। सखियो! कार्तिक मासमें विष्णुमन्दिरमें दीपदानका ऐसा सुन्दर फल होता है। चूँकि मैं मूषिका थी, मेरा दीपदानका कोई संकल्प नहीं था, फिर भी

मुझसे अनायास जो मन्दिरमें भयवश दीप प्रज्वलित हुआ अथवा मैं दीपको नष्ट न कर सकी, उस समय बिना परिज्ञानके मुझसे जो दीपदानका पुण्यकर्म हुआ था, उसी पुण्य-कर्मके फलस्वरूप आज मैं श्रेष्ठ महारानीके पदपर स्थित हूँ और मुझे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान है। इसी कारण मैं आज भी निरन्तर दीपदान करती रहती हूँ। मैं दीपदानके फलको भलीभाँति जानती हूँ, इसलिये नित्य देवालयमें दीप जलाती हूँ।' ललिताका यह कथन सुनकर सभी सहेलियाँ भी दीपदान करने लगीं और बहुत समयतक राज्य-सुख भोगकर सभी अपने पतिके साथ विष्णुलोकको चली गयीं। इस प्रकार जो भी पुरुष अथवा स्त्री दीपदान करते हैं, वे उत्तम तेज प्राप्तकर विष्णुलोकको प्राप्त करते हैं। (अध्याय १३०)

वृषोत्सर्गकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! कार्तिक और माघकी पूर्णिमा, चैत्रकी पूर्णिमा तथा तृतीया और वैशाखकी पूर्णिमा एवं द्वादशीमें शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न वृषभको चार गौओंके साथ छोड़नेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। इस वृषोत्सर्गकी विधिको गर्गाचार्यने मुझसे इस प्रकार बतलाया है—सबसे पहले षोडशमातृकाका पूजन कर मातृश्राद्ध तथा फिर आभ्युदयिक श्राद्ध करना चाहिये। फिर एक कलश स्थापित कर उसपर रुद्रका पूजन करके घृतसे हवन करना चाहिये। उस सर्वाङ्गसुन्दर तरुण बछड़ेके वाम भागमें त्रिशूल और दक्षिण भागमें चक्रयुक्त चिह्न अङ्गितकर कुंकुम आदिसे अनुलिप्त करे, गलेमें पुष्पकी माला पहना दे। अनन्तर चार तरुण बछियाओंको भी भूषित कर उनके कानमें कहे कि 'आपके पतिस्वरूप इस पृष्ठ एवं सुन्दर वृषको मैं विसर्जित कर रहा हूँ, आप इसके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसन्न होकर विहार करें।' पुनः

उनको वस्त्रसे आच्छादितकर एवं स्वादिष्ट भोजनसे संतुष्टकर देवालय, गोष्ठ अथवा नदी-संगम आदि स्थानोंमें छोड़ना चाहिये। वे पुरुष धन्य हैं, जो स्वेच्छाचारी, गरजते हुए, ककुञ्जान् तथा अहंकारसे पूर्ण वृष छोड़ते हैं। इस विधिसे जो वृषोत्सर्ग करता है, उसके दस पुस्त पहलेके और दस पुस्त आगेके भी पुरुष सद्गतिको प्राप्त करते हैं। यदि वृष नदीके जलमें प्रवेश करता है और उसके सींगसे या पूँछसे जो जल उछलता है, उस तर्पणरूप जलसे वृषोत्सर्ग करनेवाले व्यक्तिके पितरोंको अक्षयतृती प्राप्त होती है। अपने सींगसे या खुरोंसे यदि वह मिट्टी खोदता है तो वृषोत्सर्ग करनेवालेके पितरोंके लिये वह खोदी भूमि जल भर जानेपर मधुकुल्या बन जाती है। चार हजार हाथ लम्बे-चौड़े तडाग बनानेसे पितरोंको उतनी तृती नहीं होती, जितनी तृती एक वृष छोड़नेसे होती है। मधु और तिलको एक साथ मिलाकर पिण्डदान करनेसे पितरोंको जो

तृसि नहीं होती, वह तृसि एक वृषोत्सर्ग करनेसे प्राप्त होती है। जो व्यक्ति अपने पितरोंके उद्घारके लिये वृष छोड़ता है, वह स्वयं भी स्वर्गलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १३१)

फाल्युन-पूर्णिमोत्सव

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! फाल्युनकी पूर्णिमाको ग्राम-ग्राम तथा नगर-नगरमें उत्सव क्यों मनाया जाता है और गाँवों एवं नगरोंमें होली क्यों जलायी जाती है? क्या कारण है कि बालक उस दिन घर-घर अनाप-शनाप शोर मचाते हैं? अडाडा किसे कहते हैं, उसे शीतोष्ण क्यों कहा जाता है तथा किस देवताका पूजन किया जाता है। आप कृपाकर यह बतानेका कष्ट करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ! सत्ययुगमें रघु नामके एक शूरवीर प्रियवादी सर्वगुणसम्पन्न दानी राजा थे। उन्होंने समस्त पृथ्वीको जीतकर सभी राजाओंको अपने वशमें करके पुत्रकी भाँति प्रजाका लालन-पालन किया। उनके राज्यमें कभी दुर्भिक्ष नहीं हुआ और न किसीकी अकाल मृत्यु हुई। अधर्ममें किसीकी रुचि नहीं थी। पर एक दिन नगरके लोग राजद्वारपर सहसा एकत्र होकर 'त्राहि', 'त्राहि' पुकारने लगे। राजाने इस तरह भयभीत लोगोंसे कारण पूछा। उन लोगोंने कहा कि महाराज! ढोंढा नामकी एक राक्षसी प्रतिदिन हमारे बालकोंको कष्ट देती है और उसपर किसी मन्त्र-तन्त्र, ओषधि आदिका प्रभाव भी नहीं पड़ता, उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं हो पा रहा है। नगरवासियोंका यह वचन सुनकर विस्मित राजाने राज्यपुरोहित महर्षि वसिष्ठमुनिसे उस राक्षसीके विषयमें पूछा। तब उन्होंने राजासे कहा—'राजन्! माली नामका एक दैत्य है, उसीकी एक पुत्री है, जिसका नाम है ढोंढा। उसने बहुत समयतक उग्र तपस्या करके शिवजीको प्रसन्न किया। उन्होंने उससे वरदान माँगनेको कहा।' इसपर ढोंढाने यह

वरदान माँगा कि 'प्रभो! देवता, दैत्य, मनुष्य आदि मुझे न मार सकें तथा अस्त्र-शस्त्र आदिसे भी मेरा वध न हो, साथ ही दिनमें, रात्रिमें, शीतकाल, उष्णकाल तथा वर्षाकालमें, भीतर अथवा बाहर कहीं भी मुझे किसीसे भय न हो।' इसपर भगवान् शंकरने 'तथास्तु' कहकर यह भी कहा कि 'तुम्हें उन्मत्त बालकोंसे भय होगा।' इस प्रकार वर देकर भगवान् शिव अपने धामको चले गये। वही ढोंढा नामकी कामरूपिणी राक्षसी नित्य बालकोंको और प्रजाको पीड़ा देती है। 'अडाडा' मन्त्रका उच्चारण करनेपर वह ढोंढा शान्त हो जाती है। इसलिये उसको अडाडा भी कहते हैं। यही उस राक्षसी ढोंढाका चरित्र है। अब मैं उससे पीछा छुड़ानेका उपाय बता रहा हूँ।

राजन्! आज फाल्युन मासके शुक्ल पक्षकी पूर्णिमा तिथिको सभी लोगोंको निडर होकर क्रीड़ा करनी चाहिये और नाचना, गाना तथा हँसना चाहिये। बालक लकड़ियोंके बने हुए तलवार लेकर वीर सैनिकोंकी भाँति हर्षसे युद्धके लिये उत्सुक हो दौड़ते हुए निकल पड़ें और आनन्द मनायें। सूखी लकड़ी, उपले, सूखी पत्तियाँ आदि अधिक-से-अधिक एक स्थानपर इकट्ठाकर उस ढेरमें रक्षोद्धरण मन्त्रोंसे अग्नि लगाकर उसमें हवनकर हँसकर ताली बजाना चाहिये। उस जलते हुए ढेरकी तीन बार परिक्रमा कर बच्चे, बूढ़े सभी आनन्ददायक विनोदपूर्ण वार्तालाप करें और प्रसन्न रहें। इस प्रकार रक्षामन्त्रोंसे, हवन करनेसे, कोलाहल करनेसे तथा बालकोंद्वारा तलवारके प्रहारके भयसे उस दुष्ट राक्षसीका निवारण हो जाता है।

वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर राजा रघुने सम्पूर्ण राज्यमें लोगोंसे इसी प्रकार उत्सव करनेको कहा और स्वयं भी उसमें सहयोग किया, जिससे वह राक्षसी विनष्ट हो गयी। उसी दिनसे इस लोकमें ढोंडाका उत्सव प्रसिद्ध हुआ और अडाडाकी परम्परा चली। ब्राह्मणोंद्वारा सभी दुष्टों और सभी रोगोंको शान्त करनेवाला वसोर्धारा-होम इस दिन किया जाता है, इसलिये इसको होलिका भी कहा जाता है। सब तिथियोंका सार एवं परम आनन्द देनेवाली यह फाल्गुनकी पूर्णिमा तिथि है। इस दिन रात्रिको बालकोंकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये। गोबरसे लिपे-पुते घरके आँगनमें बहुतसे खड़गहस्त बालक बुलाने चाहिये और घरमें रक्षित बालकोंको काष्ठनिर्मित खड़गसे स्पर्श कराना चाहिये। हँसना, गाना, बजाना, नाचना आदि करके उत्सवके बाद गुड़ और बढ़िया पकवान देकर बालकोंको विसर्जित करना चाहिये। इस विधिसे ढोंडाका दोष अवश्य शान्त हो जाता है।

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! दूसरे दिन चैत्र माससे वसन्त-ऋतुका आगमन होता है, उस दिन क्या करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! होलीके दूसरे दिन प्रतिपदामें प्रातःकाल उठकर आवश्यक

नित्यक्रियासे निवृत्त हो पितरों और देवताओंके लिये तर्पण-पूजन करना चाहिये और सभी दोषोंकी शान्तिके लिये होलिकाकी विभूतिकी वन्दना कर उसे अपने शरीरमें लगाना चाहिये। घरके आँगनको गोबरसे लीपकर उसमें एक चौकोर मण्डल बनाये और उसे रंगीन अक्षतोंसे अलंकृत करे। उसपर एक पीठ रखे। पीठपर सुवर्णसहित पल्लवोंसे समन्वित कलश स्थापित करे। उसी पीठपर श्वेत चन्दन भी स्थापित करना चाहिये। सौभाग्यवती स्त्रीको सुन्दर वस्त्र, आभूषण पहनकर दही, दूध, अक्षत, गन्ध, पुष्प, वसोर्धारा आदिसे उस श्रीखण्डकी पूजा करनी चाहिये। फिर आप्रमञ्चरीसहित उस चन्दनका प्राशन करना चाहिये। इससे आयुकी वृद्धि, आरोग्यकी प्राप्ति तथा समस्त कामनाएँ सफल होती हैं। भोजनके समय पहले दिनका पकवान थोड़ा-सा खाकर इच्छानुसार भोजन करना चाहिये। इस विधिसे जो फाल्गुनोत्सव मनाता है, उसके सभी मनोरथ अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं। आधिव्याधि सभीका विनाश हो जाता है और वह पुत्र, पौत्र, धन-धान्यसे पूर्ण हो जाता है। यह परम पवित्र, विजयदायिनी पूर्णिमा सब विश्रोंको दूर करनेवाली है तथा सब तिथियोंमें उत्तम है।

(अध्याय १३२)

दमनकोत्सव, दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सव आदिका वर्णन

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस संसारमें बहुत-से सुगन्धित पुष्प हैं, परंतु उनको छोड़कर दमनक (दौना) नामक पुष्प देवताओंको क्यों चढ़ाया जाता है तथा दोलोत्सव और रथयात्रोत्सव मनानेकी क्या विधि है, इसका वर्णन करनेकी आप कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—पार्थ ! मन्दराचल पर्वतपर दमनक नामका एक श्रेष्ठ तथा अत्यन्त

सुगन्धित वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके दिव्य गन्धके प्रभावसे देवाङ्गनाएँ विमुग्ध हो गयीं और ऋषि-मुनि भी जप, तप वेदाध्ययन आदिसे च्युत हो गये। इस प्रकार उसके गन्धसे सब लोग उन्मत्त हो गये। सभी शुभ कार्यों एवं मङ्गल-कार्योंमें विश्र उपस्थित हो गया। यह देखकर ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे दमनकसे बोले—‘दमनक ! मैंने तुम्हें संसार (-के दोषों)-के दमन

(शान्त) करनेके लिये उत्पन्न किया है, किंतु तुमने सम्पूर्ण संसारको उद्भेदित कर दिया है, तुम्हारा यह काम ठीक नहीं है। सज्जनोंका कहना है कि अतिशय सर्वत्र वर्ज्य है। इसलिये ऐसा कर्म करना चाहिये, जिससे लोगोंमें उद्गेग न पैदा हो एकका अपकार करनेवाला व्यक्ति अधम कहा जाता है, परंतु जो अनेकोंका अपकार करनेमें प्रवृत्त हो गया हो, उसके लिये क्या कहा जाय? तुमने तो बहुतसे लोगोंको दुःख दिया है, इसलिये मैं तुम्हें शाप देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति तुम्हारे पुष्पको देवकार्य तथा पितृकार्यमें आजसे ग्रहण नहीं करेगा।' ब्रह्माजीद्वारा दिये गये शापको सुनकर दमनकने कहा—'महाराज! मैंने द्वेषवश अथवा क्रोधवश किसीका अपकार नहीं किया है। आपने ही मुझे इतना सुगन्ध दिया है कि उसके प्रभावसे सभी लोग स्वयं उन्मत्त हो जाते हैं। इसमें मेरा क्या दोष है। आपने ही मेरा ऐसा स्वभाव बनाया है। जिसकी जो प्रकृति होती है, उसे वह त्याग नहीं सकता; क्योंकि प्रकृति त्यागनेमें वह असमर्थ होता है।' निरपराध होते हुए भी आपने मुझे शाप दिया है।' दमनककी इस तर्कसंगत बातको सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'दमनक! तुम्हारा कथन ठीक है। मैंने तुम्हें शाप दिया है। उसका मुझे हार्दिक दुःख है। उसकी निवृत्तिके लिये मैं तुझे वरदान देता हूँ कि वसन्त-ऋतुमें तुम सभी देवताओंके मस्तकपर चढ़ोगे। जो व्यक्ति भक्तिभावसे दमनक-पुष्प देवताओंपर चढ़ायेगा, उसे सदा सुख प्राप्त होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी दमनक-चतुर्दशीके नामसे विख्यात होगी और उस दिन व्रत-नियमके पालन करनेसे ब्रतीके सभी पाप नष्ट हो जायेंगे। इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान

हो गये और दमनक भी अपने गन्धसे त्रिभुवनको वासित करता हुआ शिवजीके निवास-स्थान मन्दराचलपर रहने लगा। उसी दिनसे लोकमें दमनक-पूजा प्रसिद्ध हुई।'

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! अब मैं दोलोत्सवका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय नन्दनवनमें दोलोत्सव हुआ। वसन्त-ऋतुमें देवाङ्गनाएँ और देवता मिलकर दोला-क्रीड़ा करने लगे। नन्दनवनमें यह मनोहारी उत्सव देखकर भगवती पार्वतीजीने शंकरजीसे कहा—'भगवन्! इस क्रीड़ाको आप देखें। आप मेरे लिये भी एक दोला बनवाइये, जिसपर मैं आपके साथ बैठकर दोला-क्रीड़ा कर सकूँ।' पार्वतीजीके यह कहनेपर शिवजीने देवताओंको अपने पास बुलाकर दोला बनानेको कहा। देवताओंने शिवजीके कथनानुसार सुन्दर उत्तम इष्टापूर्तमय दो स्तम्भ गाड़कर उसपर सत्यस्वरूप एक लकड़ीका पटरा रखा और वासुकि नागकी रस्सी बनाकर उसके फणोंपर बैठनेके लिये रत्नजटित पीठकी रचना की। उस फणके ऊपर अत्यन्त मृदुल कपास और रेशमी वस्त्र बिछाकर दोलाकी शोभा बढ़ानेके लिये मोतियोंके गुच्छों और फूल-मालाओंसे उसे सजा दिया। इस प्रकार देवताओंने अति उत्तम दोला तैयार कर भगवान् शंकरको आदरपूर्वक प्रदान किया। अनन्तर भगवान् चन्द्रभूषण भगवती पार्वतीके साथ दोलापर बैठ गये। भगवान् शंकरके पार्षद दोला झुलाने लगे तथा जया और विजया दोनों सखियाँ चँवर झुलाने लगीं। उस समय पार्वतीजीने बहुत ही मधुर स्वरमें गीत गाया, जिससे शिवजी आनन्दमग्न हो गये। गन्धर्व गीत गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं और चारण विविध प्रकारके बाजे बजानेमें संलग्न हो गये।

१-या यस्य जन्तोः प्रकृतिः शुभा वा यदि वेतरा। स तस्यामेव रमते दुष्कृते सुकृते तथा ॥ (उत्तरपर्व १३३। १५)

२-अग्नि, मत्स्य और शिवपुराणमें इसका अधिक विस्तारसे वर्णन है।

परंतु शिवजीके दोला-विहारसे सभी पर्वत काँपने लगे, समुद्रमें हलचल मच गया, प्रचण्ड पवन चलने लगा, सारा लोक त्रस्त हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्यको अति व्याकुल देखकर इन्द्रादि सभी देवगणोंने सभीके पापोंका नाश करनेवाले शिवजीके पास आकर प्रणाम किया और प्रार्थना कर कहने लगे—‘नाथ! अब आप दोला-लीलासे निवृत्त हों, क्योंकि त्रैलोक्यको क्षोभ प्राप्त हो रहा है।’ इस प्रकार देवताओंकी प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने दोलासे उत्तरकर कहा कि ‘आजसे वसन्त-ऋतुमें जो व्यक्ति इस दोलोत्सवको करेगा तथा नैवेद्य अर्पित कर तत्तद् देवताओंके मूल मन्त्रोंसे उन्हें दोलापर आरोहण करायेगा, करेगा, आनन्द मनायेगा और स्तुति-पाठ करेगा, वह सभी अभीष्टोंको प्राप्त करेगा।’

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! अब मैं रथयात्राका वर्णन करता हूँ।

एक बार चैत्र मासमें मलयपर देवताओंसे समावृत भगवान् शंकर शान्तभावसे विराजमान थे। इसी समय मृत्युलोकमें इधर-उधर घूमते हुए देवर्षि नारद ब्रह्मलोकसे भगवान् शंकरके पास आये। उन्होंने भगवान्‌को प्रणाम किया और आसनपर बैठ गये। सर्वज्ञ भगवान् शंकरने देवर्षि नारदसे पूछा—‘मुने! आपका आगमन कहाँसे हो रहा है?’ नारद बोले—‘देवदेव! मैं मृत्युलोकसे आ रहा हूँ। वहाँ कामदेवके मित्र वसन्त-ऋतुने सारा संसार अपने वशमें कर लिया है। वहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित मलय पवन बहता है। वसन्त-ऋतुके सहयोगी—कोकिल, आम्रमञ्जरी आदि सभी उसके कार्यमें सहयोग प्रदान कर रहे हैं। नगर-नगर और ग्राम-ग्राममें वसन्त-ऋतु यह घोषणा कर रहा है कि इस संसारका ही नहीं, अपितु तीनों लोकोंका स्वामी एकमात्र कामदेव

है। भगवन्! उसीके शासनमें सभी लोग उन्मत्त-से हो रहे हैं। चैत्र मासका यह विचित्र प्रभाव देखकर मैं आपसे निवेदन करने आया हूँ।’ नारदजीका वचन सुनकर भगवान् शंकर गन्धर्व, अप्सरा, मुनिगण और सभी देवताओंको साथ लेकर मृत्युलोकमें आये और उन्होंने देखा कि जैसा नारदजीने कहा था, वही स्थिति मृत्युलोकमें व्याप्त है। सब लोग उन्मत्त हो गये हैं। आनन्दमें मग्न हैं। शिवजी वसन्तकी शोभा देख ही रहे थे कि उनके साथ जो देवता आदि आये थे, वे भी आनन्दित हो गाने-बजाने लगे। वसन्तके प्रभावसे देवताओंको भी क्षुब्ध देखकर शंकरने यह विचार किया कि यह तो बड़ा अनर्थ हो रहा है। इसके प्रतीकारका कोई-न-कोई उपाय करना ही चाहिये। जो अनर्थ होता हुआ देखकर भी उसके निवारणका उपाय नहीं करता, वह अवश्य ही विपत्तिमें पड़कर दुःखको प्राप्त करता है। अब मुझे इन सबकी उन्मादसे रक्षा करनी चाहिये और स्वामिभक्त वसन्त-ऋतुका भी सम्मान रखना चाहिये। यह विचारकर शिवजीने वसन्त-ऋतुको अपने पास बुलाकर कहा कि ‘वसन्त! तुम केवल चैत्र मासमें अपना प्रभाव प्रकट करो, चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें सभी जीवोंको और विशेष रूपसे देवताओंको सुख देनेवाले हो जाओ।’ अनन्तर देवताओंको स्वस्थचित्त किया और यह भी कहा कि ‘जो व्यक्ति वसन्त-ऋतुमें रथयात्रोत्सव करेगा, वह इस संसारमें दिव्य भोगोंको भोगनेवाला तथा नीरोग होगा।’ इतना कहकर शिवजी सभी देवताओंके साथ अपने लोकको चले गये। वसन्त-ऋतु भी शिवजीके आज्ञानुसार वनमें विहार करता हुआ अन्तर्धान हो गया। उसी दिनसे लोकमें रथयात्रोत्सवका प्रचार-प्रसार हुआ। जो देवताओंकी रथयात्रा करता है, उसके धन,

पशु, पुत्र आदिकी वृद्धि होती है और अन्तमें वह सद्गतिको प्राप्त करता है*।

राजन्! अब आप विशेष तिथियोंका वर्णन सुनें। तृतीयाको गौरी, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको लक्ष्मी अथवा सरस्वती, षष्ठीको स्कन्द, सप्तमीको सूर्य, अष्टमी और चतुर्दशीको शिव, नवमीको चण्डिका, दशमीको वेदव्यास आदि शान्तचित्त ऋषि-महर्षि, एकादशी तथा द्वादशीको भगवान् विष्णु, त्रयोदशीको कामदेव और पूर्णिमाको सभी देवताओंका अर्चन-पूजन करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंकी निर्दिष्ट तिथियोंमें ही दमनकोत्सव, दोलोत्सव और रथयात्रा आदि उत्सव करने चाहिये। इस प्रकार वसन्त-ऋतुमें उत्सव करनेवाला व्यक्ति बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पुनः चक्रवर्ती राजाका पद प्राप्त करता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—राजन्! जब भगवान् शंकरने अपने नेत्रकी ज्वालासे कामदेवको भस्म कर डाला था, उस समय कामदेवकी पत्नियाँ रति और प्रीति दोनों रो-रोकर विलाप करने लगीं। इसपर पार्वतीजीके हृदयमें दया उत्पन्न हो गयी और वे शिवजीसे प्रार्थना करने लगीं—‘महाराज! आप कृपाकर इस कामदेवको जीवनदान दें और शरीर प्रदान कर दें।’ यह सुनकर प्रसन्न हो शिवजीने कहा—‘पार्वती! यद्यपि अब यह मूर्तिमान् रूपमें जीवित नहीं हो सकता, परंतु चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको प्रतिवर्ष एक बार यह मनसे उत्पन्न होकर जीवित होगा। चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको जो भी कामदेवका पूजन करेगा, वह वर्षभर सुखी रहेगा। इतना कहकर शिवजी कैलासपर चले

गये। राजन्! इसकी विधिको सुनें—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी त्रयोदशीको स्नान कर एक अशोकवृक्ष बनाकर उसके नीचे रति, प्रीति और वसन्तसहित कामदेवकी प्रतिमाको सिंदूर और हल्दीसे बनाना चाहिये अथवा सुवर्णकी मूर्ति स्थापित करनी चाहिये। मूर्ति ऐसी होनी चाहिये, जिसकी सेवामें विद्याधरियाँ हाथ जोड़े हों, अप्सराएँ जिसके चारों तरफ खड़ी हों, गन्धर्व नृत्य कर रहे हों। इस प्रकार मध्याह्नके समय गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, ताम्बूल, दीप, अनेक प्रकारके फल, नैवेद्य आदि उपचारोंसे कामदेवकी तथा अपने पतिकी भी पूजा करे। जो इस प्रकार प्रतिवर्ष कामोत्सव करता है, वह सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य, लक्ष्मी आदिको प्राप्त करता है। विष्णु, ब्रह्मा तथा सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह, कामदेव, वसन्त और गन्धर्व, असुर, राक्षस, सुपर्ण, नाग, पर्वत आदि उसपर प्रसन्न हो जाते हैं। उसको कभी शोक नहीं होता। जो स्त्री वसन्त-ऋतुमें रति, प्रीति, वसन्त, मलयानिल आदि परिवारसहित कामदेवका भक्तिपूर्वक पूजन करती है, वह सौभाग्य, रूप, पुत्र और सुखको प्राप्त करती है।’

महाराज! इसी प्रकार ज्येष्ठ मासके प्रतिपद्तिथिसे लेकर पूर्णिमातक भगवती भूतमाताका पूजनोत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके मनोविनोदपूर्ण एवं हास्यपूर्ण गीत, नाटक आदिका आयोजन करना चाहिये। नवमी अथवा एकादशीको दीपक जलाकर अतीव भक्तिपूर्वक भगवतीके समीप ले जाने चाहिये।

इस प्रकार पूर्णिमातक प्रदोषके समय दीपमहोत्सव करना चाहिये और द्वादशीके दिन

* कालक्रमसे इस रथयात्राका प्रचलन कम हो गया, किंतु आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको सर्वत्र जगन्नाथजीकी रथयात्रा निकलती है, विशेषकर पुरीमें।

भूतमाताका विशेष उत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार अनेक प्रकारके उत्सवोंसे भूतमाताका पूजन करनेवाले व्यक्ति सपरिवार प्रसन्न रहते हैं और

उनके घरमें किसी प्रकारके विघ्न उत्पन्न नहीं होते। ये भूतमाता भगवती पार्वतीके अंशसे समुद्भूत हैं।
(अध्याय १३३—१३६)

श्रावणपूर्णिमाको रक्षाबन्धनकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! प्राचीन कालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंद्वारा दानव पराजित हो गये। दुःखी होकर वे दैत्यराज बलिके साथ गुरु शुक्राचार्यजीके पास गये और अपनी पराजयका वृत्तान्त बतलाया। इसपर शुक्राचार्य बोले—‘दैत्यराज! आपको विषाद नहीं करना चाहिये। दैववश कालकी गतिसे जय-पराजय तो होती ही रहती है। इस समय वर्षभरके लिये तुम देवराज इन्द्रके साथ संधि कर लो, क्योंकि इन्द्र-पली शचीने इन्द्रको रक्षा-सूत्र बाँधकर अजेय बना दिया है। उसीके प्रभावसे दानवेन्द्र! तुम इन्द्रसे परास्त हुए हो। एक वर्षतक प्रतीक्षा करो, उसके बाद तुम्हारा कल्याण होगा। अपने गुरु शुक्राचार्यके वचनोंको सुनकर सभी दानव निश्चिन्त हो गये और समयकी प्रतीक्षा करने लगे। राजन्! यह रक्षाबन्धनका विलक्षण प्रभाव है, इससे विजय, सुख, पुत्र, आरोग्य और धन प्राप्त होता है।’

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! किस तिथिमें किस विधिसे रक्षाबन्धन करना चाहिये। इसे बतायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! श्रावण मासकी पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल उठकर शौच इत्यादि नित्य-क्रियासे निवृत होकर श्रुति-स्मृति-विधिसे स्नान कर देवताओं और पितरोंका निर्मल जलसे तर्पण करना चाहिये तथा उपाकर्मविधिसे

वेदोक्त ऋषियोंका तर्पण भी करना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग देवताओंके उद्देश्यसे श्राद्ध करें। तदनन्तर अपराह्न-कालमें रक्षापोटलिका इस प्रकार बनाये—कपास अथवा रेशमके वस्त्रमें अक्षत, गौर सर्षप, सुवर्ण, सरसों, दूर्वा तथा चन्दन आदि पदार्थ रखकर उसे बाँधकर एक पोटलिका बना ले तथा उसे एक ताम्रपात्रमें रख ले और विधिपूर्वक उसको प्रतिष्ठित कर ले। आँगनको गोबरसे लीपकर एक चौकोर मण्डल बनाकर उसके ऊपर पीठ स्थापित करे और उसके ऊपर मन्त्रिसहित राजाको पुरोहितके साथ बैठना चाहिये। उस समय उपस्थित जन प्रसन्न-चित्त रहें। मङ्गल-ध्वनि करें। सर्वप्रथम ब्राह्मण तथा सुवासिनी स्त्रियाँ अर्घ्यादिके द्वारा राजाकी अर्चना करें। अनन्तर पुरोहित उस प्रतिष्ठित रक्षापोटलीको इस मन्त्रका पाठ करते हुए राजाके दाहिने हाथमें बाँधें—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबधामि रक्षे मा चल मा चल॥
(उत्तरर्प १३७। २०)

तत्पश्चात् राजाको चाहिये कि सुन्दर वस्त्र, भोजन और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजाकर उन्हें संतुष्ट करे। यह रक्षाबन्धन चारों वर्णोंको करना चाहिये। जो व्यक्ति इस विधिसे रक्षाबन्धन करता है, वह वर्षभर सुखी रहकर पुत्र-पौत्र और धनसे परिपूर्ण हो जाता है। (अध्याय १३७)

महानवमी (विजयादशमी)-ब्रत

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! महानवमी सब तिथियोंमें श्रेष्ठ है। सभी प्रकारके मङ्गल और भगवतीकी प्रसन्नताके लिये सब लोगोंको और विशेषकर राजाओंको महानवमीका उत्सव अवश्य मनाना चाहिये।

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! इस महानवमी-ब्रतका आरम्भ कबसे हुआ? क्या यशोदाके गर्भसे प्रादुर्भूत होनेके समयसे महानवमी-ब्रतका प्रचलन हुआ अथवा इसके पूर्व सत्ययुग आदिमें भी यह महानवमी-ब्रत था? इसे आप बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! वह परमशक्ति सर्वव्यापिनी, भावगम्या, अनन्ता और आद्या आदि नामसे विश्वविख्यात है। उनका काली, सर्वमङ्गला, माया, कात्यायिनी, दुर्गा, चामुण्डा तथा शंकरप्रिया आदि अनेक नाम-रूपोंसे ध्यान और पूजन किया जाता है।

देव, दानव, राक्षस, गन्धर्व, नाग, यक्ष, किन्नर, नर आदि सभी अष्टमी तथा नवमीको उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। कन्याके सूर्यमें आश्विन मासके शुक्ल पक्षमें अष्टमीको यदि मूल नक्षत्र हो तो उसका नाम महानवमी है। यह महानवमी तिथि तीनों लोकोंमें अत्यन्त दुर्लभ है। आश्विन मासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी और नवमीको जगन्माता भगवती श्रीअम्बिकाका पूजन करनेसे सभी शत्रुओंपर विजय प्राप्त हो जाती है। यह तिथि पुण्य, पवित्रता, धर्म और सुखको देनेवाली है। इस दिन मुण्डमालिनी चामुण्डाका पूजन अवश्य करना चाहिये। सभी कल्पों और मन्वन्तरोंमें देव, दैत्य आदि अनेक प्रकारके उपचारोंसे नवमी तिथिको भगवतीकी पूजा किया करते हैं और तीनों लोकोंमें अवतार लेकर भगवती मर्यादाका पालन करती रहती हैं।

राजन्! यही पराम्बा जगन्माता भगवती यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं और वे कंसके मस्तकपर पैर रखकर आकाशमें चली गयीं और फिर विन्ध्याचलमें स्थापित हुईं, तभीसे यह पूजा प्रवर्तित हुई।

भगवतीका यह उत्सव पहलेसे ही प्रसिद्ध था, परंतु सभी प्राणियोंके उपकारके लिये तथा सभी विघ्न-बाधाओंकी शान्तिके लिये ही मैंने अपनी बहनके रूपमें भगवती विन्ध्यवासिनीदेवीकी महिमाका विशेषरूपसे प्रचार किया। विन्ध्यवासिनी भगवतीके स्थानमें नौ रात्रि, तीन रात्रि, एक रात्रि उपवास या अयाचितब्रत अथवा नक्तब्रत कर अनेक प्रकारके उपचारोंसे भगवतीकी आराधना करनी चाहिये। ग्राम-ग्राम, नगर-नगर और घर-घरमें सभी लोगोंको स्नान कर प्रसन्नचित्त होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री आदि सभीको भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विशेषकर राजाओंको तो यह पूजन अवश्य करना चाहिये।

विजयकी इच्छा रखनेवाले राजाको प्रतिपदासे अष्टमीपर्यन्त लोहाभिहारिक कर्म (अस्त्र-शस्त्र-पूजन) करना चाहिये। सर्वप्रथम पूर्वोत्तर ढालवाली भूमिमें नौ अथवा सात हाथ लम्बा-चौड़ा, पताकाओंसे सुसज्जित एक मण्डप बनाना चाहिये। उसमें अग्निकोणमें तीन मेखला और पीपलके समान योनिसे युक्त एक अति सुन्दर एक हाथके कुण्डकी रचना करनी चाहिये। राजाके चिह्न—छत्र, चामर, सिंहासन, अश्व, ध्वजा, पताका आदि और सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्र मण्डपमें लाकर रखे। उन सबका अधिवासन करे। इसके अनन्तर ब्राह्मणको चाहिये कि वह स्नानकर श्वेत वस्त्र धारणकर मण्डपादिकी पूजा करे और फिर ओंकारपूर्वक राजचिह्नोंके निर्दिष्ट मन्त्रोंद्वारा धृतसे संयुक्त पायससे हवन-कर्म करे। पूर्वकालमें बहुत

ही बलवान्, शक्तिशाली लोह नामका एक दैत्य पैदा हुआ था। उसको देवताओंने मारकर खण्ड-खण्ड कर पृथ्वीपर गिरा दिया। वही दैत्य आज लोहाके रूपमें दिखायी पड़ता है। उसीके अङ्गोंसे ही विभिन्न प्रकारके लोहेकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये उसी समयसे लोहाभिहारिक कर्म राजाओंको विजय प्राप्त करनेमें सहायक सिद्ध हुआ, ऐसा ऋषियोंने बतलाया है। हवनका बचा हुआ शेष पायस हाथी और घोड़ोंको खिलाकर उनको अलंकृत कर माझलिक घोष करते हुए रक्षकोंके साथ समारोहपूर्वक नगरमें घुमाना चाहिये। राजाको भी प्रतिदिन स्नानकर पितरों और देवताओंकी पूजा करनेके बाद राजचिह्नोंकी भी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। इससे राजाको विजय, कीर्ति, आयु, यश तथा बलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार लोहाभिहारिक कर्म करनेके अनन्तर अष्टमीके दिन पूर्वाह्नमें स्नान कर नियमपूर्वक सुवर्ण, चाँदी, पीतल, ताँबा, मृत्तिका, पाषाण, काष्ठ आदिकी दुर्गाकी सुन्दर मूर्ति बनाकर उत्तम सुसज्जित स्थानके बीच सिंहासनके ऊपर स्थापित करे। कुंकुम, चन्दन, सिन्दूर आदिसे उस मूर्तिको चर्चित कर कमल आदि पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य आदिसे अनेक बाजे-गाजेके साथ उनका पूजन करना चाहिये। वन्दीजन स्तुति करें। बहुतसे लोग छत्र-चामर आदि राजचिह्न लेकर चारों ओर खड़े होकर स्थित रहें। दीक्षायुक्त राजा पुरोहितके साथ बिल्वपत्रोंसे भगवतीकी इस मन्त्रसे पूजा करे—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥
अमृतोद्द्ववः श्रीवृक्षो महादेवीप्रियः सदा।
बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि॥
(उत्तरपर्व १३८। ८६-८७)

इस प्रकार पूजनकर उसी दिनसे द्रोणपुष्पी (गूमा)-से पूजा करनी चाहिये। असुरोंके साथ युद्ध करनेसे जो क्षति भगवतीके शरीरको हुई उसकी पूर्ति द्रोणपुष्पीसे ही हुई। इसलिये द्रोणपुष्पी भगवतीको अत्यन्त प्रिय है। फिर शत्रुओंके वधके लिये खड़गको प्रणामकर सुभिक्ष, राज्य और अपने विजयकी प्राप्ति-हेतु भगवतीसे प्रार्थना करनी चाहिये और उनका ध्यान तथा इस स्तुतिका पाठ करना चाहिये—

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते।
बिल्वपत्रकृतामाले दुर्गेऽहं शरणं गतः॥

(उत्तरपर्व १३८। ९३-९४)

इस प्रकार अष्टमीको सब प्रकारसे भगवतीका पूजन कर रात्रिको जागरण करना चाहिये और नृत्यादिक उत्सव कराना चाहिये। प्रसन्नतापूर्वक रात्रिके बीत जानेपर नवमीको प्रातःकाल भगवतीकी बड़े समारोहके साथ विशेष पूजा करनी चाहिये। अपराह्न-समयमें रथके बीच भगवती दुर्गाकी प्रतिमाको स्थापित कर पूरे राज्यभरमें भ्रमण कराना चाहिये। अपनी सेनासहित राजाको भी साथ रहना चाहिये।

सभी प्रकारके विद्रोंकी निवृत्तिके लिये भूतशान्ति करनी चाहिये। जिससे यात्रा निर्विघ्न पूर्ण हो। इस विधिसे जो राजा अथवा सामान्य व्यक्ति भगवतीकी यात्रा करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे छूटकर भगवतीके लोकको प्राप्त कर लेता है और उस व्यक्तिको शत्रु, चोर, ग्रह, विघ्न आदिका भय नहीं होता। भगवतीके भक्त सदा नीरोग, सुखी और निर्भय हो जाते हैं। जो व्यक्ति भगवतीके उत्सव-विधिका श्रवण करता है या पढ़ता है, उसके भी सभी अमङ्गल दूर हो जाते हैं। (अध्याय १३८)

इन्द्रध्वजोत्सवके प्रसंगमें उपरिचर वसुका वृत्तान्त

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें देवासुर-संग्रामके समय ब्रह्मा आदि देवताओंने 'इन्द्रको विजय प्राप्त हो', इसलिये ध्वजयष्टिका निर्माण किया। ध्वजयष्टिको देवताओं, सिद्ध-विद्याधर तथा नाग आदिने मेरु पर्वतपर स्थापित कर सभी उपचारों—पुष्प, धूप तथा दीपादिसे उसकी पूजा की और अनेक प्रकारके आभूषण, छत्र, घण्टा, किंकिणी आदिसे उसे अलंकृत किया। उस ध्वजयष्टिको देखकर दैत्य त्रस्त हो गये और युद्धमें देवताओंने उन्हें पराजितकर स्वर्गका राज्य प्राप्त कर लिया। दैत्य पाताललोकको चले गये। उसी दिनसे देवता उस इन्द्रध्वजिका पूजन और उत्सव करने लगे।

एक समय अपने महान् पुण्य-प्रतापके कारण राजा उपरिचर वसु स्वर्गमें आये। उनका देवताओंने बहुत सम्मान किया। उनसे प्रसन्न होकर इन्द्रने वह ध्वज उन्हें दिया और वर देते हुए कहा कि पृथ्वीमें इस ध्वजकी आप पूजा करें, इससे आपके राज्यके सभी दोष दूर हो जायेंगे और जो भी राजा वर्षा-ऋतुमें (भाद्रपद शुक्ल द्वादशी) श्रवण नक्षत्रमें इसका पूजन करेगा, उसके राज्यमें क्षेम और सुभिक्ष बना रहेगा, किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होगा, प्रजाएँ प्रसन्न एवं नीरोग होंगी, सर्वत्र धार्मिक यज्ञ होंगे। राज्यमें प्रचुर धन-सम्पत्ति होगी। इन्द्रका यह वचन सुनकर राजा उपरिचर वसु इन्द्रध्वजको लेकर अपने नगरमें चले आये और प्रतिवर्ष इन्द्रध्वजकी पूजा कर उत्सव मनाने लगे। इस ध्वजयष्टिको भी प्रत्यक्ष देवी माना गया है।

अब मैं इन्द्रध्वजके उत्सवकी विधि बता रहा हूँ। बीस हाथ लम्बे, सुपुष्ट, उत्तम काष्ठकी एक यष्टि बनाकर उसे सुन्दर रंग-बिरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित करे। उसमें तेरह आभूषण लगवाये। पहला आभूषण

पिटक चौकोर होता है, इसे 'लोकपाल पिटक' कहते हैं, दूसरा आभूषण लाल रंगका वृत्ताकार होता है, इसी प्रकार अन्य देवसम्बन्धी पिटकोंका निर्माण कर तथा यष्टिमें बाँधकर कुशा, पुष्पमाला, घण्टा, चामर आदिसे समन्वित उस ध्वजको स्थापित करे। अनन्तर हवन कराकर गुड़से युक्त मिष्ठान और पायस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। भोजनोपरान्त उन्हें दक्षिणा दे। उस ध्वजको धीरेसे खड़ाकर स्थापित कर दे। नौ दिन या सात दिनतक उत्सव मनाना चाहिये। अनेक प्रकारके नृत्य, गायन, वादन कराते हुए मल्लयुद्ध आदि उत्सव भी कराने चाहिये। वस्त्राभूषण तथा स्वादिष्ट भोजनादिसे सभी लोगोंको संतुष्टकर सम्मानित करना चाहिये। रात्रिको जागरणकर ध्वजकी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिये।

इन्द्रध्वजका पूजन, अर्चन तथा उत्सवादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। यदि एक वर्ष करनेके बाद दूसरे वर्ष किसी व्यवधानके कारण पूजनादि कार्य न हो सके तो पुनः बारह वर्ष बाद ही करना चाहिये। ध्वजके अङ्ग-भङ्ग होनेपर अनेक प्रकारके उपद्रव प्रारम्भ हो जाते हैं। यदि ध्वजपर कौआ बैठ जाय तो दुर्भिक्ष पड़ता है, उलूक बैठे तो राजाकी मृत्यु हो जाती है। कपोत बैठे तो प्रजाका विनाश होता है। इसलिये सावधान होकर उसकी रक्षा करनी चाहिये और भक्तिपूर्वक इन्द्रध्वजका उत्थापन कर पूजन करना चाहिये। यदि प्रमादवश ध्वज गिर पड़े या टूट जाय तो सोने अथवा चाँदीका ध्वज बनाकर उसका उत्थापन और अर्चन कर शान्तिक-पौष्टिक आदि कर्म सम्पन्न कराये। ब्राह्मणको भोजन आदिसे संतुष्ट करना चाहिये। इस विधिसे जो राजा इन्द्रध्वजकी यात्रा एवं पूजा करता है, उसके राज्यमें यथेष्ट वृष्टि होती है। मृत्यु और

अनेक प्रकारके ईति-भीति आदि दुर्योगों, कष्टोंका भय नहीं रहता तथा राजा शत्रुओंको पराजित कर

चिर कालतक राज्यसुख भोगकर अन्त समयमें इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १३९)

दीपमालिकोत्सव

भगवान् श्रीकृष्णने कहा— महाराज ! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने वामनरूप धारणकर दानवराज बलिको छलकर इन्द्रको राज्यका भार सौंप दिया और राजा बलिको पाताललोकमें स्थापित कर दिया। भगवान् ने बलिके यहाँ सदा रहना स्वीकार किया। कार्तिककी अमावास्याको रात्रिमें सारी पृथ्वीपर दैत्योंकी यथेष्ट चेष्टाएँ होती हैं।

युधिष्ठिरने पूछा— भगवन् ! कौमुदीतिथिकी विधिको विशेषरूपसे बतानेकी कृपा करें। उस दिन किस वस्तुका दान किया जाता है। किस देवताकी पूजा की जाती है तथा कौन-सी क्रीड़ा करनी चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— राजन् ! कार्तिक मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको प्रभातके समय नरकके भयको दूर करनेके लिये स्नान अवश्य करना चाहिये। अपामार्ग (चिचड़ा)-के पत्र सिरके ऊपर मन्त्र पढ़ते हुए घुमायें*। इसके बाद धर्मराजके नामों—यम, धर्मराज, मृत्यु, वैवस्वत, अन्तक, काल तथा सर्वभूतक्षयका उच्चारण कर तर्पण करे। देवताओंकी पूजा करनेके बाद नरकसे बचनेके उद्देश्यसे दीप जलाये। प्रदोषके समय शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदिके मन्दिरोंमें, कोष्ठागार, चैत्य, सभामण्डप, नदीतट, महल, तडाग, उद्यान, वापी, मार्ग, हस्तिशाला तथा अश्वशाला आदि स्थानोंमें दीप प्रज्वलित करने चाहिये।

अमावास्याके दिन प्रातःकाल स्नानकर देवता

और पितरोंका भक्तिपूर्वक पूजन-तर्पण आदि करे तथा पार्वण-श्राद्ध करे। अनन्तर ब्राह्मणको दूध, दही, घृत और अनेक प्रकारके स्वादिष्ट भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान करे और उन्हें संतुष्ट करे। अपराह्नकालमें राजाद्वारा अपने राज्यमें यह घोषित कराना चाहिये कि ‘आज इस लोकमें बलिका शासन है। नगरके सभी लोगोंको अपनी सामर्थ्यके अनुसार अपने घरको स्वच्छ—साफ-सुथरा करके नाना प्रकारके रंग-बिरंगे तोरण-पताकाओं, पुष्पमालाओं तथा बंदनवारोंसे सजाना चाहिये। नगरके सभी लोगों अर्थात् नर-नारी, बाल-वृद्ध आदिको चाहिये कि सुन्दर उत्तम वस्त्र पहनकर कुंकुम, चन्दन आदिका लेप लगाकर ताम्बूलका भक्षण करते हुए आनन्दपूर्वक नृत्य-गीतादिकोंका आयोजन करें।’ इस प्रकार अतीव उल्लाससे एवं प्रीतिपूर्वक इस दिन दीपोत्सव मनाना चाहिये। प्रदोषके समय दीपमाला प्रज्वलित कर अनेक प्रकारके दीप-वृक्ष खड़े करने चाहिये। उस समय राक्षस लोकमें विचरण करते हैं। उनके भयको दूर करनेके लिये श्रेष्ठ कन्याओंको दीप-वृक्षोंपर तण्डुल (धानका लावा) फेंकते हुए दीपकोंसे नीराजन करना चाहिये। दीपमालाओंके जलानेसे प्रदोष-वेला दोषरहित हो जाती है और राक्षसादिका भय दूर हो जाता है। इस प्रकार अति शोभासम्पन्न नगरकी शोभा देखनेके उद्देश्यसे राजाको अपने मित्र, मन्त्री आदिके साथ अर्धरात्रिके समय धीरे-धीरे पैदल ही चलना

* मन्त्र इस प्रकार है—

हर पापमार्मा भ्राम्यमाणं पुनः पुनः ।

आपदं किल्बिषं चापि ममापहर सर्वशः । अपामार्ग नमस्तेऽस्तु शरीरं मम शोधय ॥ (उत्तरपर्व १४० । ९)

चाहिये। राजकर्मचारी भी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये रहें। पूरे नगरकी रमणीयता देखकर राजाको यह मानना चाहिये कि राजा बलि मेरे ऊपर आज प्रसन्न हो गये होंगे। फिर राजा अपने महलमें वापस आ जाय।

आधी रात बीत जानेपर जब सब लोग निद्रामें हों, उस समय घरकी स्त्रियोंको चाहिये कि वे सूप बजाते हुए घरभरमें घूमती हुई आँगनतक आयें और इस प्रकार वे दरिद्रा—अलक्ष्मीका अपने घरसे निस्सारण करें। प्रातःकाल होते ही राजाको चाहिये कि वस्त्र, आभूषण आदि देकर ब्राह्मणों, सत्पुरुषोंको संतुष्ट करे और भोजन, ताम्बूल देकर मधुर वचनोंसे पण्डितोंका सत्कार करे तथा सामन्त, सिपाही और सेवक आदिको आभूषण, धन आदि देकर संतुष्ट करे तथा अनेक प्रकारके मल्लक्रीडा आदिका आयोजन करे। राजाको मध्याह्नके अनन्तर नगरके पूर्व दिशामें ऊँचे स्तम्भ अथवा वृक्षोंपर कुश और काशकी बनी मार्गपाली^१ बाँधकर उसकी पूजा करे। फिर हवन करे। अपनी प्रजाको भोजन देकर संतुष्ट करे। उस समय राजाको मार्गपालीकी आरती करनी चाहिये, यह आरती विजय प्रदान करती है। उसके बाद गाय, बैल, हाथी, घोड़ा, राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभी लोगोंको उस मार्गपालीके नीचेसे निकलना चाहिये। मार्गपालीको बाँधनेवाला अपने दोनों कुलोंका उद्घार करता है। इसका लझून करनेवाले वर्षभर सुखी और नीरोग रहते हैं। फिर भूमिपर पाँच रंगोंसे मण्डल लिखकर उसके मध्यमें प्रसन्नमुख, द्विभुज, कुण्डल धारण करनेवाले कूष्माण्ड, बाण तथा मुर आदि दानवोंके साथ

१-मार्गपाली दरवाजेके पास बना हुआ स्वागतद्वार है, जो कुश, काश, तृण आदि और आम तथा अशोकके पत्तेसे अलंकृत कर बनायी जाती है।

२-विष्णुना वसुधा लब्धा प्रीतेन बलये पुनः। उपकारपरो दत्तशासुराणां महोत्सवः॥

ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी पुनः। (उत्तरपर्व १४०। ५९-६०)

सर्वाभरणभूषित रानी विन्ध्यावलीसहित राजा बलिकी मूर्तिकी स्थापना करे और कमल, कुमुद, कह्नार, रक्त कमल आदि पुष्पों तथा गन्ध, दीप, नैवेद्य, अक्षत और दीपकों तथा अनेक उपहारोंसे राजा बलिकी पूजा कर इस प्रकार प्रार्थना करे—

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो।

भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥

(उत्तरपर्व १४०। ५४)

इस प्रकार पूजन कर रात्रिको जागरणपूर्वक महोत्सव करना चाहिये। नगरके लोग अपने-अपने घरमें शव्यामें श्वेत तण्डुल बाँधकर राजा बलिको उसमें स्थापितकर फल-पुष्पादिसे पूजन करें और बलिके उद्देश्यसे दान करें, क्योंकि राजा बलिके लिये जो व्यक्ति दान देता है, उसका दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर बलिसे पृथ्वीको प्राप्त किया और यह कार्तिकी अमावास्या तिथि राजा बलिको प्रदान की, उसी दिनसे यह कौमुदीका उत्सव प्रवृत्त हुआ है^२। यह तिथि सभी उपद्रव, सभी प्रकारके विघ्न, शोक आदिको दूर करनेवाली है। धन, पुष्टि, सुख आदि प्रदान करती है। 'कु' यह पृथ्वीका वाचक शब्द है और 'मुदी' का अर्थ होता है प्रसन्नता। इसलिये पृथ्वीपर सबको हर्ष देनेके कारण इसका नाम कौमुदी पड़ा। जो राजा वर्षभरमें एक दिन राजा बलिका उत्सव करता है, उसके राज्यमें रोग, शत्रु, महामारी और दुर्भिक्षकी वृद्धि होती है। इस कौमुदी तिथिको जो व्यक्ति जिस भावमें रहता है, उसे वर्षभर उसी भावकी प्राप्ति होती है। यदि व्यक्ति उस दिन रुदन कर

रहा हो तो रुदन, हर्षित है तो हर्ष, दुःखी है तो दुःख, सुखी है तो सुख, भोगसे भोग, स्वस्थतासे स्वस्थता तथा दीन रहनेसे दीनताकी प्राप्ति होती है^१। इसलिये इस तिथिको हष्ट और प्रसन्न रहना चाहिये। यह तिथि वैष्णवी भी है, दानवी भी है

और पैत्रिकी भी है। दीपमालाके दिन जो व्यक्ति भक्तिसे राजा बलिका पूजन-अर्चन करता है, वह वर्षभर आनन्दपूर्वक सुखसे व्यतीत करता है और उसके सारे मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं।

(अध्याय १४०)

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मों तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन^२

युधिष्ठिरने कहा— भगवन्! आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप यह बतलानेकी कृपा करें कि सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— राजन्! लक्ष्मीकी कामनावाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। मैं सम्पूर्ण शास्त्रोंका अबलोकन करनेके पश्चात् पुराणों एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रहशान्तिका संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषीद्वारा बतलाये गये शुभ मुहूर्तमें ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहों एवं ग्रहाधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारके ग्रहयज्ञ बतलाये हैं। पहला दस हजार आहुतियोंका अयुतहोम, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका लक्षहोम तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका कोटिहोम होता है। दस हजार आहुतियोंवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधि जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, प्रथम मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद)

हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर-दिशामें स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये।

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं। इन ग्रहोंकी प्रतिमा क्रमशः ताँबा, स्फटिक, रक्त चन्दन, स्वर्ण, चाँदी तथा लोहेसे बनानी चाहिये। श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रकी, दक्षिण-पूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुकी स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, सौर्वर्ण देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः

१-यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यांयुधिष्ठिर । हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि॥

रुदिते रोदिति वर्षं हष्टो वर्षप्रहृष्टि । भुको भोक्ता भवेदवर्षस्वस्थः स्वस्थो भवेदिति ॥ (उत्तरपर्व १४० । ६८-६९)

२-यह पाँच आर्थर्वण कल्पों—नक्षत्र, वैतान, संहिताविधि, अङ्ग्रिस एवं शान्तिकल्पमेंसे प्रथम एवं पाँचवें शान्तिकल्पका समन्वित रूप है और अर्थर्वपरिशिष्ट, याज्ञवल्क्यस्मृति १ । २९५—३०८, वृद्धपाराशर ११, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ८२—८६, नारदपुराण १ । ५१, मत्स्यपुराण, अग्निपुराण २६४—२७४ आदिमें भी प्राप्त है।

प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश, सावित्री, लक्ष्मी तथा उमाको उनके पतिदेवताओंके साथ और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेत वर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीत वर्णका, शनि और राहुको कृष्ण वर्णका तथा केतुको धूम्र वर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर)-का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोज्जियाका, बुधको क्षीरषष्ठिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)-का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजशृंगी नामक लताके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे।

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्रहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आम्रके पल्लवसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभङ्ग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके पल्लव)-से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। राजेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़शाल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम, कुण्ड और गोशालाकी मिट्टी लाकर उसे सर्वैषधिमिश्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' ऐसा

कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। तत्पश्चात् घी, जौ, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिचड़ा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, घी और दही अथवा पायससे युक्त एक सौ आठ या अट्टाईस आहुतियाँ प्रदान करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अङ्गूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतककी मापवाली तथा बरोंह, शाखा और पत्तोंसे रहित समिधाओंकी कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे। अनन्तर प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको 'आ कृष्णो रजसा०' (यजु० ३३। ४३) इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यको आहुति देनी चाहिये। पुनः 'इमं देवा०' (यजु० ९। ४०) इस मन्त्रसे चन्द्रमाको आहुति दे। मंगलके लिये 'अग्निर्धा०' (यजु० १३। १४) इस मन्त्रसे आहुति दे। बुधके लिये 'उद्बुद्ध्यस्व०' (यजु० १५। ५४) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये 'बृहस्पते अति०' (यजु० २६। ३) ये मन्त्र माने गये हैं। शुक्रके लिये 'अन्नात्परि०' (यजु० १९। ७५) और शनैश्चरके लिये 'शं नो देवीरभिष्ट्य०' (यजु० ३६। १२) इस मन्त्रसे आहुति दे। राहुके लिये 'कथा नश्चित्र०' (यजु० २७। ३९) यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये 'केतुं कृष्णवन्०' (यजु० २९। ३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें घी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये, तत्पश्चात् व्याहतियोंका उच्चारण करके घीकी दस आहुतियाँ अग्रिमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तरभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करे।

फिर 'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं०' (ऋ० ४।३।१, कृष्णयजु० तै० सं० १।३।१४।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देनी चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये 'आपो हि ष्टा०' (वाजस० सं० ११।५०) इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकेयके लिये 'स्यो ना०' इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये 'इदं विष्णुर्विं०' (यजु० ५।१५) इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये 'तमीशानम्०' (वाजस० २५।१८) इस मन्त्रसे और इन्द्रके लिये 'इन्द्रमिदेवताय०' इस मन्त्रसे आहुति डाले। इसी प्रकार यमके लिये 'आयं गौः०' (यजु० ३।६) इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये 'ब्रह्मजज्ञानम्०' (यजु० १३।३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। अग्निके लिये 'अग्निं दूतं वृणीमहे०' (ऋक्सं० १।१२।१) यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये 'उदुत्तमं वरुणपाशम्०' (ऋक्सं० १।२४।१५) यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके लिये 'पृथिव्यन्तरिक्षम्०' इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये 'सहस्रशीर्षा पुरुषः०' (वाजस० सं० ३।१।१) यह मन्त्र कहा गया है।

हवन समाप्त हो जानेपर चार ब्राह्मण अभिषेक-मन्त्रोंद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका अभिषेक करें और ऐसा कहें—'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता आपका अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये सभी आपको विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि, ऐश्वर्यशाली यम, निर्वृति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्पालगण—ये सभी आपकी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, मति, बुद्धि, लज्जा, शान्ति, पुष्टि, कान्ति तथा तुष्टि—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्रियाँ हैं,

आकर आपको अभिषिक्त करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक आपको अभिषिक्त करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्रियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र, सभी शस्त्र, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल तथा नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये आपको अभिषिक्त करें।'

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वोषधि एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सपलीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप करे और विस्मयरहित होकर शान्त चित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका, राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेके दानका विधान है। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये या जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। पर सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है।

दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—'कपिले! तुम रोहिणीरूप हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हरे स्वरूप

हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्को आनन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय बीज और अनन्त पुण्यके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीले वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसको दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, कृष्ण (गोविन्द) नामवाली और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह! चूँकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह-कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हरे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग! चूँकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ! चूँकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी कल्याण प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशव तथा शिवकी शश्या कभी शून्य नहीं रहती, बल्कि लक्ष्मी तथा पार्वतीसे सदा सुशोभित रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शश्या जन्म-जन्ममें सुखसे सम्पन्न रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्नादान करनेसे वे देवता मुझे शान्ति प्रदान करें। सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं

कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमिदान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये।

राजन्! अब आप भक्तिपूर्वक ग्रहोंके स्वरूपोंको सुनें—(चित्र-प्रतिमादि विधानोंमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौर वर्ण, श्वेत वस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त हैं तथा उनके आभूषण भी श्वेत वर्णके हैं। धरणीनन्दन मंगलकी चार भुजाएँ हैं। वे अपने चारों हाथोंमें खड्ग, ढाल, गदा तथा वरदमुद्रा धारण किये हैं, उनके शरीरकी कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। पीत चन्दनसे अनुलिप्त हैं। वे दिव्य सोनेके रथपर विराजमान हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी होनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख सिंहके समान भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, कवच, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती है तथा वे नीले रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा)-में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबकी दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्र वर्णके हैं।

उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई अपने हाथके प्रमाणसे एक सौ आठ अङ्गुल (साढ़े चार हाथ) -की होनी चाहिये।

हे पाण्डुनन्दन! यह मैंने आपको नवग्रहोंका स्वरूप बतलाया है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी प्रतिमा बनाकर इनकी पूजा करे। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उस बुद्धिमान्को चाहिये कि उस ग्रहकी यत्पूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे, क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये, क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्दिग्रता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाले यज्ञकी विधि बतला रहा हूँ, सुनिये।

विद्वानोंने सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये लक्ष्मीमका विधान किया है, क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका

प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरकी समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्पूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये।

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड* तैयार कराये। परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्ष्मीमको अयुतहोमसे दसगुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पादित करना चाहिये। लक्ष्मीममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची शेष दो एक-एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई दो अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। राजेन्द्र! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराइमुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें

* 'कल्याण' अग्निपुराणाङ्क ४० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

(सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुड़की भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) ‘गरुड! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके बाहन और नित्य विषरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।’

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धाराकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, सुवा बनवाकर उसे दो खम्भोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे धीकी धारा गिराये। उस समय अग्निसूक्त (ऋ० सं० १। १), विष्णुसूक्त (वाजसं० ५। १—२२), रुद्रसूक्त (वही १६) और इन्दु (सोम)-सूक्त (ऋ० १। ९१) पाठ करना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका गान करना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नान कर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्त्विजोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्त स्वभाववाले दो ही ऋत्त्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फँसना चाहिये।

इसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्त्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। पाण्डवश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शश्या, स्वर्णनिर्मित कड़े, कुण्डल और अँगूठी आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें

नवग्रह-यज्ञसे दसगुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्रका दान करना चाहिये, क्योंकि अन्र-दानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्धिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्रहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन यज्ञ ऋत्त्विज्ज्ञको और दक्षिणारहित यज्ञ यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये, क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है। स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये, क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुदगणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो ही ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दर पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है।

इस प्रकार मनुष्य जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुर मात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो

निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। (अध्याय १४१)

कोटिहोमका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं— महाराज ! प्राचीन कालमें प्रतिष्ठान (पैठण) नामक नगरमें संवरण नामके एक महान् भाग्यशाली राजा थे। वे सभी शास्त्रोंमें निपुण, ब्रह्मतत्त्वके ज्ञाता, पितृभक्त तथा देव-ब्राह्मणके उपासक थे।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र महायोगी सनक राजा संवरणके पास आये। उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने मुनिको आसन देकर प्रणाम किया तथा अर्घ्य, पाद्य आदिसे उनका सत्कार कर अपना राज्य और स्वयंको भी उनके लिये समर्पित किया। मुनिने भी राजाद्वारा किये गये अभिवादन और सत्कारको स्वीकार किया। उसके बाद ब्रह्मर्षि सनकने अनेक राजाओं, महाराजाओंके चरित और इतिहास-पुराण आदिकी कथाएँ उन्हें सुनायीं। राजा कथा सुनकर आत्मविभोर हो उठे। इसी अवसरपर राजा संवरणने जगत्के प्राणियोंके हितकी दृष्टिसे सनकजीसे प्रार्थना करते हुए कहा—‘देवर्षे ! भूकम्प, उपलवृष्टि, ग्रहयुद्ध, अनावृष्टि, राज्योपद्रव आदि उत्पातोंकी शान्तिके लिये कोई उपाय बतानेकी कृपा करें, जिससे कि धन-धान्यकी वृद्धि, आरोग्य, सुख और स्वर्गकी प्राप्ति हो।’ राजा संवरणकी प्रार्थनाको सुनकर सनकजीने कहा—‘राजन् ! सभी कार्योंकी सिद्धि करनेवाले शान्तिप्रद कोटिहोमकी विधि बता रहा हूँ, जिसके करनेसे ब्रह्महत्यादि पातक छूट जाते हैं। सभी उत्पात शान्त हो जाते हैं। साथ ही आरोग्य एवं सुखकी भी प्राप्ति होती है।’ इसका विधान इस प्रकार है—

सबसे पहले शुद्ध मुहूर्त देखकर देवालय, नदीके

तटपर, वनमें अथवा घरमें कोटिहोम करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदवेत्ता ब्राह्मणका वरण कर गन्ध, अक्षत, पुष्प, माला, वस्त्र, आभूषण आदिसे उनका पूजन कर इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

त्वं नो गतिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणः ।
त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम्॥
आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम्।
कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सार्वकामिकम्॥

(उत्तरपर्व १४२ । १७-१८)

‘विप्रश्रेष्ठ ! आप ही हमलोगोंके माता-पिता हैं, आप ही हमारे आश्रय हैं और आप ही गति हैं। आपके अनुग्रहसे हमारे सभी मनोरथ परिपूर्ण हो जायें। आपत्तिसे छुटकारा प्राप्त करनेके लिये तथा सार्वकामिक शान्ति प्राप्त करनेके लिये आप कोटिहोम नामक उत्तम यज्ञ करा दें।’

आचार्यको भी श्वेत वस्त्र आदिसे अलंकृत होकर विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ पुण्याहवाचन करना चाहिये। पूर्व और उत्तरकी ओर ढालयुक्त समतल भूमिपर बने हुए मण्डपको ब्राह्मण सूत्रद्वारा धेर दे। मण्डपका प्रमाण इस प्रकार है—एक सौ हाथ विस्तारका मण्डप उत्तम, पचास हाथका मध्यम तथा पच्चीस हाथका मण्डप निकृष्ट है, किंतु शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार ही मण्डप बनाकर उसके बीचमें आठ हाथ लम्बा-चौड़ा, तीन मेखलासे युक्त, बारह अंगुलके विस्तारयुक्त योनिसहित एक चौरस कुण्ड बनाना चाहिये। कुण्डके पूर्व दिशामें चार हाथ लम्बी-चौड़ी वेदी बनाये, जो एक हाथ ऊँची हो। उसमें सभी देवताओंको स्थापित करे। मण्डपकी भूमिको गोबर-मिट्टीसे अच्छी तरह लीपकर

पञ्चपल्लवोंसे सुसज्जित जलपूर्ण चौदह कलशोंको स्थापित करना चाहिये। मण्डपके ऊपर वितान और तोरण लगाने चाहिये। सब सामग्री एकत्रित कर पुण्याहवाचन, स्वस्तिवाचन, जयशब्दपूर्वक शुद्ध दिनसे पुरोहितको हवन प्रारम्भ करना चाहिये। मण्डपके पूर्वमें ब्रह्मा, मध्यमें विष्णु, पश्चिममें रुद्र, उत्तरमें वसु, ईशानमें ग्रह, अग्निकोणमें मरुत् और शेष दिशाओंमें लोकपालोंकी (वेदियोंपर) स्थापना करे। गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे वैदिक और पौराणिक मन्त्रोंद्वारा सबका अलग-अलग पूजन और प्रार्थना करे।

इसके पश्चात् वेदपाठी ब्राह्मणोंसहित विधानपूर्वक कुण्डका संस्कार करे। कुण्डमें अग्नि प्रज्वलितकर उस अग्निका नाम घृतार्चिष रखे। विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, गृहस्थ, जितेन्द्रिय, स्वकर्मनिष्ठ शुद्ध और ज्ञानशक्तिसम्पन्न एक सौ ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे अथवा जिस संख्यामें उत्तम ब्राह्मण उपलब्ध हों, उनका ही वरण करना चाहिये। इसके बाद पञ्चमुख अग्निका ध्यान करना चाहिये। नामसहित उनकी सात जिह्वाओंकी पूजा करनी चाहिये। धुआँयुक्त अग्निमें हवन करना व्यर्थ होता है। इसलिये प्रज्वलित अग्निमें ही हवन करना चाहिये।

ऋग्वेदी ब्राह्मणोंको पूर्वाभिमुख, यजुर्वेदीको उत्तराभिमुख, सामवेदीको पश्चिमाभिमुख और अथर्वणवेदी ब्राह्मणको दक्षिणाभिमुख बैठकर आघार और आज्यभागकी आहुतियाँ देनी चाहिये। पहले ब्रह्माका स्थापन कर इस कर्मको आरम्भ करना चाहिये। आदिमें 'प्रणव' लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका उच्चारण कर व्याहृतियोंसे हवन करना चाहिये। धी, काला तिल तथा जौ मिलाकर पलाशकी समिधाओंसे कोटिहोम करना चाहिये। एक हजार आहुति पूर्ण होनेपर पूर्णाहुति करनी चाहिये। पुनः उसी प्रकार हवन करना चाहिये। इस विधिसे कोटिहोम

करना चाहिये। इसमें दस हजार बार पूर्णाहुतियाँ दी जाती हैं। इसमें सभी ब्राह्मणों और यजमानको काम, क्रोध आदि दोषोंसे दूर रहना चाहिये।

कोटिहोमकी विधिको सुनकर राजा संवरणने कहा कि महर्षे! इस कोटिहोममें बहुत अधिक समय लगेगा, इतने दिनतक संयमसे रहना बहुत ही कठिन कार्य है। इसलिये कृपाकर आप कोटिहोमकी संक्षिप्त विधि बतानेका कष्ट करें, जिससे कम समयमें यह निर्विघ्न पूर्ण हो जाय।

राजाके इस प्रकारके वचनको सुनकर सनक मुनिने कहा—‘राजन्! कोटिहोम चार प्रकारका होता है—शतमुख, दशमुख, द्विमुख और एकमुख। समयानुसार इन चारोंमेंसे जो भी होम हो सके वही करना चाहिये। एक हाथ प्रमाणवाले उत्तम एक सौ कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर एक-एक ब्राह्मणको अथवा समय कम रहनेपर प्रत्येक कुण्डपर दस-दस ब्राह्मणोंको हवनके लिये नियुक्त करे। एक कुण्डमें अग्निका संस्कार कर उसी अग्निको अन्य कुण्डोंमें भी प्रज्वलित करना चाहिये। इस विधिद्वारा जो हवन किया जाता है, उससे एक ही कोटिहोम होता है, जो शतमुख होम कहलाता है। यदि समयका अभाव न हो तो दस कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर बीस-बीस ब्राह्मण हवनके लिये नियुक्त करने चाहिये। यह दशमुख नामक कोटिहोम है। यदि महीने-दो-महीनेका समय हो तो दो कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर पचास-पचास ब्राह्मणोंको हवनके लिये आमन्त्रित करना चाहिये। यह द्विमुख कोटिहोम है। अधिक-से-अधिक समय हो तो एक कुण्डमें अग्नि-स्थापन कर उत्तम कुलोत्पन्न वेदवेत्ता सदाचारी ब्राह्मणोंसे हवन कराना चाहिये। इस हवनमें ब्राह्मणोंकी संख्याका कोई नियम नहीं और समयकी सीमा भी निश्चित नहीं है। यह एकमुख कोटिहोम स्वेच्छायज्ञ कहलाता है। इस

स्वेच्छायज्ञमें बहुत समय लगता है और बीचमें अनेक प्रकारके विघ्न भी उत्पन्न हो जाते हैं। धन और शरीरकी स्थिरताका कुछ भी भरोसा नहीं है। इसलिये संक्षेपसे ही यज्ञ करना चाहिये।'

यज्ञ सम्पन्न कर अच्छी प्रकारसे महोत्सव मनाना चाहिये। सभी ब्राह्मणोंको कटक, कुण्डल, वस्त्र, दक्षिणा, एक सौ गाय, एक सौ घोड़े और स्वर्ण आदि प्रदान करना चाहिये तथा पुरोहितकी पूजा करनी चाहिये। दीनों, अन्धों तथा कृपणों आदिको भोजन देकर अन्तमें कलशोंके जलसे

अवधृथ स्नान करे और ब्राह्मण यजमानका अभिषेक करे। इस विधिसे जो राजा या व्यक्ति कोटिहोम करता है, वह आरोग्य, पुत्र, राज्यवृद्धि, ऐश्वर्य, धन-धान्य प्राप्तकर सभी प्रकारसे संतुष्ट रहता है तथा उसको ग्रहपीड़ा भी नहीं भोगनी पड़ती। राज्यमें अनावृष्टि, उत्पात, महामारी, दुर्भिक्ष आदि कभी नहीं होते। सभी तरहके पाप और ग्रहोंकी पीड़ाको दूर करनेवाला शान्तिदायक यह कोटिहोम है, इसको करनेवाला व्यक्ति इन्द्रलोकको प्राप्त कर लेता है*। (अध्याय १४२)

महाशान्ति-विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं भगवान् शंकरद्वारा कही गयी महाशान्तिका विधान बतलाता हूँ, यह राजाओंके लिये कल्याणकारी है तथा भयंकर विघ्नोंको दूर करनेवाली है। इस महाशान्तिको राजाके अभिषेक, यात्रा तथा दुःस्वप्रके समय, दुर्निमित्तमें, ग्रहोंकी प्रतिकूलतामें, बिजली और उल्काके गिरनेपर, जन्म-नक्षत्रमें केतुके उदय होनेपर, पृथ्वी-कम्पन और प्रसूतिकालमें, मूलगण्डान्तमें, मिथुन संततिके उत्पत्तिकालमें, राजाके छत्र अथवा ध्वजके अपने स्थानसे पतनके समय, काक, उलूक और कबूतरके घरमें प्रवेश करनेपर, क्रूर ग्रहकी दृष्टि पड़नेपर या जन्मके समय क्रूर ग्रहोंके योग होनेपर, लग्रकुण्डलीमें द्वादश, चतुर्थ और अष्टम स्थानमें बृहस्पति, शनि, सूर्य एवं मंगलके स्थित होनेपर तथा युद्धके समय, वस्त्र, आयुध, मणि, केश, गौ, अश्वके विनाशके समय, रात्रिमें इन्द्रधनुष दिखायी पड़नेपर, घरके तुला-भंगके समय तथा सूर्य और चन्द्र-ग्रहण आदिके

समयमें यह महाशान्ति प्रशस्त मानी गयी है। इसके करनेसे सभी दुर्निमित्त शान्त हो जाते हैं। पाण्डव ! उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा शीलसम्पन्न वैदिक ब्राह्मणोंसे इस महाशान्तिको कराना चाहिये। विशेषरूपसे अथर्ववेद, यजुर्वेद तथा ऋग्वेदके ज्ञाता, पवित्र ज्ञानसम्पन्न, जप-होमपरायण और अनेक कृच्छादि व्रतोंके द्वारा शुद्ध व्यक्ति इसमें प्रशस्त माने गये हैं। प्रथम भगवान्की आराधना करके क्रियाका आरम्भ करना चाहिये।

दस या बारह हाथका एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसके मध्यमें चार हाथकी वेदी बनाये और आग्रेय दिशामें एक हाथ प्रमाणवाला एक सुन्दर कुण्ड बनवाये एवं वह कुण्ड तीन मेखलाओंसे युक्त तथा योनिसे विभूषित होना चाहिये। मण्डपको चन्दन, माला, तोरण आदिसे अलंकृत कर गोबरसे लीपना चाहिये। मण्डपमें वेदीके ऊपर आग्रेयादि कोणोंमें क्रमशः चार और बीचमें पाँचवाँ कलश स्थापित करना चाहिये।

* वर्तमान समयके लिये यह विषय अत्यन्त उपयोगी है। सम्पन्न, धर्मात्मा तथा राजनीतिज्ञोंको इसका आश्रय लेकर विश्व-कल्याण करना चाहिये। आजकल विश्वमें अनेक दैवी और सामाजिक उपद्रव व्याप्त हैं। कोटिहोमपर कोटिरुद्रहोमात्मक-पद्धति आदि अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हैं, किंतु यह प्रकरण भी उपयोगी है।

कलशोंको पञ्चपल्लवों, सर्वोषधि, पञ्चरत्न, रोचना, चन्दन, सप्तमृतिका, धान्य तथा पुण्य तीर्थके जल, नारिकेल आदिसे भलीभाँति स्थापित करना चाहिये। ब्रह्मकूर्च-विधानसे पञ्चगव्यका निर्माण करे। इसके अनन्तर वैदिक मन्त्रोंसे कलशोंको अभिमन्त्रित कर उनका पूजन करे। मध्य कुम्भको रुद्रकुम्भ कहा जाता है।

इसके बाद स्वस्तिवाचन करना चाहिये। अनन्तर अग्निकार्य सम्पन्न करे। 'अग्निं दूतं०' (यजु० २२। १७) इस मन्त्रके द्वारा कुण्डमें अग्नि स्थापित करे। 'हिरण्यगर्भः०' (यजु० १३। ४) इस मन्त्रसे ब्रह्मासनको स्थापित करे। अग्निपूजनके अनन्तर आज्य (घृत)-का संस्कार करे, अनन्तर विधिपूर्वक यज्ञीय द्रव्योंको यथावत् स्थापित करना चाहिये। इसके बाद पुरुषसूक्त (यजु० ३१। १—१६)-का पाठ करते हुए चरुका निर्माण करे। उसके सिद्ध होनेके बाद पृथ्वीपर स्थापित करे। इसके पश्चात् शमीकी अठारह तथा पलाशकी सात समिधाओंको अग्नि प्रज्वलित करनेके लिये कुण्डमें डाले। आघार और आज्य-भाग-संज्ञक हवन करनेके बाद 'जातवेदसे०' (ऋ० १। १९। १) इस ऋचाके द्वारा घीकी सात आहुतियाँ प्रदान करे। पुनः 'जातवेदसे०' इस मन्त्रसे स्थालीपाकद्रव्यका हवन करे। 'तरत् स मन्दी०' (ऋ० ९। ५८। १—४) इस सूक्तसे चार बार हवन करे। इसके बाद 'यमाय सोमं०' (ऋ० १०। १४। १३) इस मन्त्रसे 'स्वाहा' शब्दका प्रयोगकर सात आहुतियाँ दे। तदनन्तर 'इदं विष्णुर्विं०' (यजु० ५। १५) इस मन्त्रसे सात बार आहुति दे। फिर २७ नक्षत्रोंके

लिये २७ आहुतियाँ दे। अनन्तर 'यत्कर्मणा०' इसके द्वारा हवन करनेके बाद स्वष्टकृत् हवन करे। तदनन्तर घृतसहित तिलसे ग्रहहोम करे। इसके बाद प्रायश्चित्त-निमित्तक हवन करके होम-कर्मको समाप्त करे। तदनन्तर श्रेष्ठ द्विज यजमानके दुर्निमित्तकी शान्तिके लिये पाँच कलशोंके जलसे मन्त्रोंके द्वारा यथाक्रम अभिषेक करे। 'सहस्राक्षेण०' (ऋ० १०। १६१। ३) इस मन्त्रसे प्रथम कलशके जलसे, 'शतायुषां०' द्वारा द्वितीय कलशके जलसे, 'सजोषां०' (ऋ० ३। ४७। २) इस मन्त्रसे तृतीय कलशके जलसे, 'विश्वानि देव०' (ऋ० ५। ८२। ५) इस मन्त्रसे चतुर्थ कलशके जलसे तथा 'ऋतमस्तु०' इस मन्त्रसे पञ्चम कलशके जलसे अभिषेक करे। इसके बाद 'नमोऽस्तु सर्वभूतेभ्यः०' इस मन्त्रसे दिशाओंको बलि-नैवेद्य प्रदान करे।

यजमानके स्नान करनेके समय ब्राह्मणगण शान्तिका पाठ करें। चारों ओर शान्ति-जलसे जलकी धारा गिराये। अन्तमें पुण्याहवाचनपूर्वक शान्तिकर्मको सम्पन्न करे। ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, शश्या, आसन एवं दक्षिणा दे। दीन, अनाथ, विशिष्ट श्रोत्रियोंको भी भोजन आदि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे आयुकी वृद्धि और शत्रुपर तत्क्षण विजय प्राप्त होती है तथा पुत्र-लाभ होता है। जैसे शस्त्रोंका प्रहार कवचसे हट जाता है, वैसे ही दैवी विघ्न भी इस शान्तिकर्मसे दूर हो जाते हैं। अहिंसक, इन्द्रियसंयमी, धर्मसे धन अर्जित करनेवाला, दया और दक्षिणासे युक्त व्यक्तिके लिये सभी ग्रह अनुकूल हो जाते हैं*। (अध्याय १४३)

* अहिंसकस्य दान्तस्य धर्मार्जितधनस्य च। दयादक्षिण्ययुक्तस्य सर्वे सानुग्रहा ग्रहाः॥ (उत्तरपर्व १४३। ४५)

विनायक-शान्ति९

महाराज युधिष्ठिरने कहा—देवेश ! अब आप विनायक-शान्तिकी विधि मुझे बतायें, जिसके करनेसे सभी मानव समस्त आपत्तियोंसे मुक्त हो जाते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजेन्द्र ! विनायकके प्रिय श्रेष्ठ शान्तिका मैं वर्णन करता हूँ इसके आचरणसे सभी अरिष्ट नष्ट हो जाते हैं । यह विनायक-शान्ति सम्पूर्ण विघ्नोंको दूर करनेके लिये की जाती है । स्वप्रमें जलमें अवगाहन करना, मुण्डित सिरों तथा गेरुआ वस्त्रको देखना, मस्तकरहित शव, बिना किसी कारणके ही दुःखी होना, कार्यमें असफल हो जाना इत्यादि विनायकद्वारा गृहीत होनेपर ही दिखायी देते हैं । विनायकद्वारा गृहीत हो जानेपर राजपुत्र राज्यको प्राप्त नहीं कर सकता, कुमारी पति नहीं प्राप्त कर सकती, गर्भिणी पुत्रको और श्रोत्रिय आचार्यत्वको प्राप्त नहीं कर पाता । विद्यार्थी पढ़ नहीं पाता, व्यापारी व्यापारमें लाभ नहीं पाता और कृषक कृषिकार्यमें सफल नहीं होता ।

इसलिये इन विघ्नोंको दूर करनेके लिये पुण्य दिनमें स्नपन-कार्य करना चाहिये । पीले सरसोंकी खली, घृत और सुगन्धित कुंकुमका उबटन लगाकर स्नान कर पवित्र हो जाय । ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराये । विधिपूर्वक कलश-स्थापन करे और ब्राह्मण अभिमन्त्रित जलके द्वारा यजमानका अभिषेक करे और इस प्रकार कहे—

सहस्राक्षं शतधारमृषिणा वचनं कृतम् ।
तेन त्वामभिषिङ्गामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥
भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः ।
भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥

यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि ।
ललाटे कर्णयोरक्षणोरापस्तदधन्तु ते सदा ॥

(उत्तरपर्व १४४ । १२—१४)

—मैं तुम्हें अभिषिक्त कर रहा हूँ, पावमानी ऋचाओंकी अधिष्ठातृदेवता तुम्हें पवित्र करें । महाराजा वरुण, भगवान् सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु तथा सप्तर्षिगण अपना-अपना तेज तुममें आधान करें । तुम्हरे केशों, सीमन्त, मस्तक, ललाट, कानों एवं आँखोंमें जो भी दौर्भाग्य है, उसको ये अप् देवता नष्ट करें ।

अनन्तर कुशाको दक्षिण हाथमें ग्रहण कर सरसोंके तेलसे हवन करे । मित, सम्मित, साल, कालकंटक, कूष्माण्ड तथा राजपुत्रके अन्तमें स्वाहा समन्वित कर हवन करे । चतुष्पथपर कुश बिछाकर सूपमें इनके निमित्त बलि-नैवेद्य अर्पण करे । खिले हुए फूल तथा दूर्वासे अर्घ्य दे । मण्डलमें अर्घ्य प्रदानकर विनायककी माता अम्बिकाकी पूजा करे और यह प्रार्थना करे—मातः ! आप मुझे रूप, यश, ऐश्वर्य, पुत्र तथा धन प्रदान करें और मेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करें^२ । अनन्तर सफेद वस्त्र, सफेद माला और श्वेत चन्दन धारणकर ब्राह्मणको भोजन कराये और गुरुको दो वस्त्र प्रदान करे । इस प्रकार ग्रहोंकी और विनायककी विधिपूर्वक पूजा करनेसे सम्पूर्ण कर्मोंके फलकी प्राप्ति होती है और लक्ष्मीकी भी प्राप्ति हो जाती है । भगवान् सूर्य, कर्तिंकेय एवं महागणपतिकी पूजा करके मनुष्य सभी सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है ।

(अध्याय १४४)

१—यह प्रकरण याज्ञवल्क्य आदि प्रायः अधिकांश स्मृतियोंमें और पुराणोंमें भी इसी प्रकार प्राप्त होता है ।

२—रूप देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश देहि मे ॥ (उत्तरपर्व १४४ । २१)

नक्षत्रार्चन-विधि (रोगावलिचक्र)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! एक बार कौशिकमुनि अग्निहोत्र करनेके बाद सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय महर्षि गर्गने उनसे पूछा—‘ब्रह्मन्! बंदीगृहमें निरुद्ध हो अथवा विषम परिस्थितियोंमें अवरुद्ध, दस्यु, शत्रु या हिंस्र पशुओंसे घिरा हो तथा व्याधियोंसे पीड़ित तो ऐसे व्यक्तिकी कैसे मुक्ति हो सकती है। इसे आप मुझे बतलायें।’

कौशिकमुनि बोले—गर्भाधानके समय, जन्म-नक्षत्रमें, मृत्यु-सम्बन्धी ज्ञान होनेपर जिसको रोग-व्याधि उत्पन्न हो जाती है, उसे कष्ट तो होता ही है, उसकी मृत्यु भी सम्भाव्य है। यदि कृत्तिका नक्षत्रमें कोई व्याधि होती है तो वह पीड़ा नौ राततक बनी रहती है। रोहिणीमें तीन राततक, मृगशिरामें पाँच राततक और यदि आर्द्धमें रोग उत्पन्न हो तो वह व्याधि प्राण-वियोगिनी हो जाती है। पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्रमें सात रात, आश्लेषामें नौ रात, मध्यमें बीस दिन, पूर्वाफाल्युनीमें दो मास, उत्तराफाल्युनीमें तीन पक्ष (पैंतालीस दिन), हस्तमें स्वल्पकालिक पीड़ा, चित्रामें आधे मास, स्वातीमें दो मास, विशाखामें बीस दिन, अनुराधामें दस दिन, ज्येष्ठामें आधे मास और मूलमें मृत्यु हो जाती है। पूर्वाषाढ़ामें पंद्रह दिन, उत्तराषाढ़ामें बीस दिन, श्रवणमें दो मास, धनिष्ठामें आधा मास, शतभिषामें दस दिन, पूर्वाभाद्रपदमें नौ दिन, उत्तराभाद्रपदमें पंद्रह दिन, रेवतीमें दस दिन तथा अश्वनीमें एक दिन-रात कष्ट होता है।

मुने! कुछ विशिष्ट नक्षत्रोंमें व्याधि उत्पन्न

होनेपर मनुष्यके प्राणतक भी चले जाते हैं*, इसमें संदेह नहीं। इसकी विशेष जानकारीके लिये ज्योतिषियोंसे भी परामर्श करना चाहिये।

रोगके प्रारम्भिक नक्षत्रका ज्ञान हो जानेपर उस नक्षत्रके अधिदेवताके निमित्त निर्दिष्ट द्रव्योद्धारा हवन करनेसे रोग-व्याधिकी शान्ति हो जाती है। व्याधि नक्षत्रके किस चरणमें उत्पन्न हुई है, इसका ठीक पता लगाकर आपत्तिजनक स्थितियोंमें व्याधिसे मुक्तिके लिये उस नक्षत्रके स्वामीके मन्त्रोंसे अभीष्ट समिधाद्वारा हवन करना चाहिये। अश्वनी नक्षत्रमें क्षीरी (दूधवाले—वट, पीपल, खिरनी आदि) वृक्षोंकी समिधासे अश्वनीकुमारोंके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। भरणीमें ‘यमदैवत यमाय स्वाहा०’ इस मन्त्रसे धी, मधु और तिलसे हवन करना चाहिये। इसी प्रकार कृत्तिकामें भी अग्निके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये। रोहिणीमें प्रजापतिके मन्त्रसे, मृगशिरामें धीसे, पुनर्वसुमें दितिदेवीके लिये दूध और धी-मिश्रित आहुति प्रदान करनी चाहिये। पुष्यमें बृहस्पतिके मन्त्रोंसे धी और दूधद्वारा, आश्लेषाके देवता सर्प हैं, अतः बड़के दूध और धीसे मिश्रित आहुति देनी चाहिये। इसी प्रकार स्वाती, मूल आदि सभी नक्षत्रोंमें धी-मिश्रित आहुति देनी चाहिये।

मुने! ब्रह्माजीने यह बतलाया है कि विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रद्वारा भी प्रायः एक सहस्र (१,०००) घृतकी आहुतियाँ देनेपर सम्पूर्ण ज्वरों एवं व्याधियोंका सद्यः उपशमन हो सकता है। क्योंकि गायत्रीका अर्थ ही है कि गान, हवन, पूजनद्वारा त्राण करनेवाली।

(अध्याय १४५)

* ज्योतिर्निबन्ध आदि ज्यौतिष-ग्रथोंके अनुसार आर्द्धा, आश्लेषा, पू०फा०, स्वाती, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा और पू०भा० में मृत्युका भय होता है या बीमारी स्थिर हो जाती है। अतः इसकी निवृत्तिके लिये तत्त्व नक्षत्र आदिका जप-हवन करना चाहिये।

अपराधशतशमन-ब्रत

महर्षि वसिष्ठजीने राजा इक्ष्वाकुसे कहा—
राजन् ! अब आपको एक ब्रत बतला रहा हूँ,
जिससे महाफलकी प्राप्ति होती है और सैकड़ों
दोष—पापोंका शमन हो जाता है।

राजा इक्ष्वाकुने पूछा—ब्रह्मन् ! मुख्यरूपसे सौ
अपराध या दोष—पाप कौन—कौन हैं और वह ब्रत
कौन—सा है, जिसके अनुष्ठानमात्रसे उनकी शान्ति
हो जाती है। इस ब्रतमें किस देवताकी पूजा होती
है और किस समय यह ब्रत किया जाता है, आप
बतलानेकी कृपा करें।

महर्षि वसिष्ठ बोले—महाबाहो !
अपराधशतशमन-ब्रतको सुनो, जिसका अनुष्ठान
करनेमात्रसे मनुष्यको सभी प्रकारकी कामनाएँ
और मुक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। कृत—अकृत सभी
गुरुतर पाप रुईकी राशिके समान जलकर भस्म
हो जाते हैं। राजन् ! अब आप इन अपराधोंके नाम
और लक्षणको सुनें—अनाश्रमित्व—चारों आश्रमोंसे
बाहर रहकर स्वच्छन्द नास्तिकवृत्ति अपनाना,
अनग्निता—अग्निहोत्र, हवन आदि सभी कार्योंका
परित्याग, ब्रतहीनता—कोई भी सत्य, ब्रह्मचर्य
और एकादशी आदि ब्रतोंका पालन न करना,
अदातुत्व—कभी भी कुछ भी अन्न, धन या
आशीर्वाद आदि न देना, अशौच, निर्दयता, लोभ,
क्षमाशून्यता, जनपीड़ा, प्रपञ्चमें पड़ना, अमङ्गल,
ब्रतभङ्ग, नास्तिकता, वेदनिन्दा, कठोरता, असत्यता,
हिंसा, चोरी, इन्द्रिय—परायणता, मनको वशमें न
रखना, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ, शर्ता, धूर्तता,
कटुभाषण, प्रमाद, स्त्री, पुत्र, माता आदिका
पालन न करना, अपूज्यकी पूजा करना, श्राद्धका
त्याग, जप न करना, बलिवैश्वदेव तथा पञ्चयज्ञका
त्याग, संध्या, तर्पण, हवन आदि नित्यकर्मोंका
परित्याग, अग्निका बुझाना, ऋतुकालके बिना ही

स्त्री—सम्पर्क, पर्व आदिमें स्त्री—सहवास, चुगली,
 दूसरेकी स्त्रीके साथ गमन, वेश्यागमिता, अपात्रको
 दान देना, अल्पदान, अन्त्यजसङ्ग, माता—पिताकी
 सेवा न करना, सबसे झगड़ा करना, पुराण और
 स्मृतियोंका अनादर करना, अभक्ष्य—भक्षण, स्वामि—
 द्रोह, बिना विचारे कार्य करना, कृषि—कार्य
 करना, भार्यासंग्रह, मनपर विजय न प्राप्त करना,
 विद्याकी विस्मृति, शास्त्रका त्याग करना, ऋण
 लेकर वापस न करना, चित्रकर्म करना, सदा
 कामनाओंका दास होना, भार्या, पुत्र एवं कन्या
 आदिका विक्रय करना, पशु—मैथुन, इन्धनार्थ वृक्ष
 काटना, बिलोंमें पानी आदि डालना, तडागादिके
 जलको दूषित करना, विद्याका विक्रय, स्ववृत्तिका
 परित्याग, याचना, कुमित्रता, स्त्री—वध, गो—वध,
 मित्र—वध, भ्रूण—हत्या, पौरोहित्य, दूसरेका अन्न
 और शूद्रके अन्नको ग्रहण करना, शूद्रका अग्निकर्म
 सम्पन्न करना, विधिविहीन कर्मका निष्पादन,
 कुपुत्रता, विद्वान् होनेपर याचना करना, वाचालता,
 प्रतिग्रह लेना, श्रौत—संस्कारहीनता, आर्त व्यक्तिका
 दुःख दूर न करना, ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णचोरी,
 गुरुपत्रीगमन तथा पातकियोंके साथ सम्बन्ध
 स्थापित करना—ये अपराध हैं। अन्य तत्त्ववेत्ताओंने
 भी विविध प्रकारके अपराधोंको कहा है।

अनघ ! भगवान् सत्येशकी पूजा करनेसे तत्क्षण
सभी प्रकारके अपराध नष्ट हो जाते हैं। मनुष्योंद्वारा
ब्रत और पूजन करनेसे भगवान् स्वयं उसके
वशमें हो जाते हैं। ये जगत्पति भगवान् विष्णु
लक्ष्मीके साथ सत्यरूपी ध्वजके ऊपर स्थित
रहते हैं। इनके पूर्वमें वामदेव, दक्षिणमें नृसिंहभगवान्,
पश्चिममें भगवान् कपिल, उत्तरमें वराह तथा
ऊर्ध्वमें अच्युत स्थित रहते हैं। इन्हें ही ब्रह्मपञ्चक
जानना चाहिये। ये ही सत्येश हैं, इन्हींकी सदैव

पूजा करनी चाहिये। ये सत्येशभगवान् पद्म, कौमोदकी गदा, पाञ्चजन्य शङ्ख तथा सुदर्शन चक्र धारण किये रहते हैं। इनके चरणकमलके अग्रभागसे पवित्र गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है। इनकी आठ शक्तियाँ हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—जया, विजया, जयन्ती, पापनाशिनी, उन्मीलनी, वंजुली, त्रिस्पृशा और विवर्धना। वे भगवान् हरि शुक्लाम्बरधारी, सौम्य, प्रसन्नमुख, सभी आभरणोंसे युक्त, शोभायमान और भूक्ति-मुक्तिप्रदाता हैं।

राजन्! उनकी जिस विधिसे प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये, उसे आप सुनें। मार्गशीर्ष आदि बारह मासोंमें द्वादशी, अमावास्या अथवा अष्टमीके दिन शुक्ल या कृष्ण पक्षका विचार किये बिना शुद्ध होकर उपवासपूर्वक व्रत करना चाहिये। शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें जनार्दनकी पूजा करनेका संकल्प लेना चाहिये। इस प्रकार नियम ग्रहण करके दन्तधावनपूर्वक तडाग, पुष्कर अथवा घरपर ही स्नानकर नित्य-नैमित्तिक कर्म करने चाहिये। एक पल सुवर्णके मानसे लक्ष्मीसहित सत्येशकी प्रतिमा बनवाये जो अष्टशक्तियोंसे समन्वित पद्मासनपर स्थित हो। दुग्धसे पूरित कुम्भपर स्थित सुवर्ण-पद्मके ऊपर उस प्रतिमाको स्थापित करे। उस पद्मकी कर्णिकाओंपर देवाधिदेवकी आठ शक्तियोंकी पूजा करे। अनन्तर भगवान् सत्येश (विष्णु) और सत्या (लक्ष्मी)-की विधिवत् विविध पाद्यादि उपचारोंसे पूजा करे। अनन्तर

इस प्रकार प्रार्थना करे—

कृष्ण कृष्ण प्रभो राम राम कृष्ण विभो हरे।
त्राहि मां सर्वदुःखेभ्यो रमया सह माधव॥
पूजा चेयं मया दत्ता पितामह जगद्गुरो।
गृहाण जगदीशान नारायण नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १४६ । ४८-४९)

अनन्तर अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणको दान देकर व्रतका समापन करना चाहिये। इस व्रतको दोनों पक्षोंमें करे और वर्ष पूरा होनेपर उद्यापन करे। ब्राह्मणसे प्रार्थना करे कि हे ब्राह्मण देवता! मेरे सभी पाप दूर हो जायें। ब्राह्मण कहें—‘आपके सभी पाप एवं दुःख दूर हो जायें।’ तदनन्तर ब्राह्मणको वह मूर्ति समर्पित कर समापन करना चाहिये।

राजन्! ब्रह्माजीने कहा है कि इस व्रतको करनेसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है। जो फल सभी वेदोंके अध्ययनसे और सभी तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे प्राप्त होता है, उससे कोटिगुना फल इस व्रतके आचरणसे होता है और व्रतीको इस लोकमें धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, मित्र तथा सुखकी प्राप्ति होती है। व्रतको करनेवाले व्यक्तिको विद्या और आरोग्यकी भी प्राप्ति होती है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई संदेह नहीं है। जो इसको पढ़ता अथवा सुनता है, उसके भी सभी पाप दूर हो जाते हैं।

(अध्याय १४६)

काञ्चनपुरीव्रत-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! एक बार विश्वके उत्पत्ति, पालन और संहारकारक अक्षर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु श्वेतद्वीपमें सुखपूर्वक बैठे हुए थे। उसी समय जगन्माता लक्ष्मीने उनके चरणोंमें पञ्चाङ्ग प्रणाम कर उनसे पूछा—‘भगवन्!

आप भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले हैं। महाभाग! मुझपर भी दया करके आप कोई ऐसा रूप-सौभाग्यदायक सर्वोत्तम व्रत बतलायें, जिसके आचरणसे समस्त तीर्थ आदि पुण्य कर्मोंका फल प्राप्त हो जाय।’

भगवान् विष्णु बोले—देवि! जिस प्रकार आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम, वर्णोंमें ब्राह्मण, नदियोंमें गङ्गा, जलाशयोंमें समुद्र, देवताओंमें विष्णु (मैं) तथा स्त्रियोंमें तुम (लक्ष्मी) श्रेष्ठ हो, उसी प्रकार व्रतोंमें काञ्चनपुरीव्रत उत्तम है। इस व्रतका पहले भगवती पार्वतीने भगवान् शंकरके साथ अनुष्ठान किया था। सीताजीने भी भगवान् श्रीरामके साथ इसी व्रतका पालन कर अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया था। दमयन्तीके वियोगमें राजा नलने भी इस व्रतको किया था। वनवासी पाण्डवोंने भी द्रौपदीके साथ इस व्रतका आचरण किया और सभी कष्टोंसे मुक्त होकर साम्राज्य-लाभ किया। भद्रे! यह व्रत स्वर्ग और मोक्षको प्रदान करनेवाला है। रम्भा, मेनका, इन्द्राणी (शची) सत्यभामा, शाण्डली, अरुन्धती, उर्वशी तथा देवदत्ता आदि श्रेष्ठ स्त्रियोंने इस व्रतका आचरण करके सौभाग्य, सुख और अपने मनोरथ प्राप्त किये थे। पातालमें नागकन्याओंने और गायत्री, सरस्वती एवं सावित्री आदि उत्तम देवियों तथा अन्य नारियोंने सभी कामनाओंकी पूर्तिकी अभिलाषासे इस व्रतका अनुष्ठान किया था। यह व्रत सभी प्रकारके दुःखोंका नाशक, प्रीतिवर्धक तथा व्रतोंमें उत्तम है, इसलिये इस व्रतका मैं वर्णन कर रहा हूँ। इसके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि महापातकोंके करनेवाले, तौल मापमें कमी करनेवाले, कन्या बेचनेवाले, गौ बेचनेवाले, अगम्यागमनमें लिस, मांसभक्षी, जारजपुत्रके यहाँ भोजन करनेवाले, भूमिका हरण करनेवाले आदि पापकर्मी भी पापोंसे निःसंदेह मुक्त हो जाते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है—

देवि! यह काञ्चनपुरी-व्रत किसी महीनेमें शुक्ल या कृष्ण पक्षकी तृतीया, एकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावास्या तथा अष्टमीको उपवासपूर्वक किया जा सकता है। व्रती इस दिन काञ्चनपुरी

बनवाकर दान करे। वह पूर्वाह्नमें नदी आदिके शुद्ध निर्मल जलमें स्नान करे। पहले मन्त्रपूर्वक पवित्र मृत्तिका ग्रहणकर उसे शरीरमें लगाये फिर जलमें गोते लगाये। इस विधिसे स्नान कर शुद्धात्मा व्रती अपने घर आये और उस दिन किसी पाखण्डी, विधर्मी, धूर्त, शठ आदिसे वार्तालाप न करे। अपना हाथ-पैर धोकर पवित्र हो आचमन करे। एक उत्तम जलसे भरा स्वर्णयुक्त शङ्ख लेकर उस जलको द्वादशाक्षरमन्त्रसे अभिमन्त्रितकर 'हरि' इस मन्त्रका जप कर जल पी ले। शमीवृक्षसे चार स्तम्भोंसे युक्त एक वेदी बनाये जो चार हाथ प्रमाणकी हो। वेदीको पुष्पमाला, वितान, दिव्य धूप आदिसे अधिवासित और अलंकृत कर ले। वेदीके मध्यमें एक पद्मकी रचना करे। मण्डलके बीचमें सुन्दर एक भद्रपीठका निर्माण कराये। भद्रपीठके ऊपर सुन्दर आसनपर लक्ष्मीके साथ भगवान् जनार्दनकी स्थापना करे। मण्डलके अग्र भागमें जलपूर्ण कलशकी स्थापना कर उसमें क्षीरसागरकी कल्पना करे। कलशपर चार पल, दो पल अथवा एक पलकी काञ्चनपुरीकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनाकर स्थापित करे। उसके आगे कदली-स्तम्भ और तोरण लगाये। फिर ब्राह्मणोंद्वारा उसकी प्रतिष्ठा कराये।

उस पुरीके मध्यमें विष्णुसहित लक्ष्मीकी सुर्वर्णमय प्रतिमाकी स्थापना करनी चाहिये। पञ्चामृतसे देवेश नारायण तथा लक्ष्मीको स्नान कराकर मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए चन्दन, पुष्प आदि उपचारोंद्वारा उनका पूजन करना चाहिये। इन्द्रादि लोकपालोंकी पूजा भी यथाक्रमसे करनी चाहिये। विष्णुनिवारणके लिये गणपति तथा नवग्रहोंका पूजन कर हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् पायस, सोहाल, फेनी, मोदक आदिका नैवेद्य अर्पित कर देश-कालके अनुसार फल भी अर्पण करना चाहिये। दस

दिशाओंमें दस घृतपूरित दीपक प्रज्वलित करे। पुष्टमाला, चन्दन आदि भी चढ़ाये, साथ ही विष्णुस्तवराज, पुरुषसूक्त आदिका पाठ करे। सोलह सप्ततीक ब्राह्मणोंमें लक्ष्मी-विष्णुकी भावना कर पूजा करे। अन्तमें पूजित सभी पदार्थ उन्हें निवेदित कर प्रार्थना करे कि 'ब्राह्मण देवता! भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' शत्या-दान तथा गो-दान भी करे। जो काञ्चनपुरी आदिकी प्रतिमा पूजित की गयी है, उसे ब्रती देख न सके, इसलिये वस्त्रसे आच्छादितकर अपने नेत्रोंको वस्त्रसे ढककर दीपके साथ मण्डपमें ले आये और आचार्य कहे—'आप सभी कामनाओंको देनेवाली एवं दुःख-दौर्भाग्यको दूर करनेवाली इस रमणीय काञ्चनपुरीका दर्शन करें।'

अनन्तर ब्रती नेत्रके वस्त्रको खोलकर गुरुके सम्मुख पुष्पाङ्गलि देकर उस शुभ पुरीका दर्शन करे। तदनन्तर चाँदी, ताँबे अथवा किसी शङ्खमें पञ्चरत्न, गङ्गाजल, फल, सरसों, अक्षत, रोचना तथा दहीमिश्रित अर्ध्य बनाकर भगवान् विष्णुको प्रदान करे और प्रार्थना करे—'सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् लक्ष्मीनारायण! आप इस सुवर्णपुरीके प्रदान करनेसे मनोवाञ्छित फल पूर्ण करें। नारायण! लक्ष्मीकान्त! जगन्नाथ! आप इस अर्ध्यको ग्रहण करें, आपको नमस्कार है।'

इस प्रकार महातेजस्वी भगवान् विष्णुको अर्घ्य देकर भक्तिपूर्वक देवी लक्ष्मीको भी अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और कहना चाहिये कि 'देवि! आप ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, पार्वती एवं भगवान् कार्तिकेयसे पूजित हैं। धर्मकी कामनासे मेरे द्वारा भी आप पूजित हैं, आप मुझे सौभाग्य, पुत्र, धन, पौत्र प्रदान करें। देवि! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको ग्रहण कर मुझे सुख प्रदान करें।' इस प्रकार ब्रतको पूर्णकर महोत्सव मनाये एवं रात्रिमें जागरण करे। निदारहित होकर जागरण करनेसे सौ यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। प्रातःकाल निर्मल जलसे स्नानकर पितर और देवताओंकी पूजा कर सप्ततीक ब्राह्मणोंको वस्त्र देकर भोजन कराये और यथाशक्ति दक्षिणा प्रदानकर क्षमा-याचना करे। दीन, अन्ध, बधिर, पंगु आदि सबको संतुष्ट करे। अनन्तर पारणा करे। तदनन्तर मधुर पायसयुक्त व्यञ्जनोंसे मित्र और बान्धवोंके साथ भोजन करे। ऐसा करनेसे ब्रती ब्रह्मलोकको प्राप्त कर ब्रह्माके साथ आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। अनन्तर रुद्रलोक, उसके बाद विष्णुलोकको प्राप्त करता है। देवि! काञ्चनपुरी नामक यह ब्रत पूर्वसमयमें तुमने भी किया था, उसी पुण्यके प्रभावसे त्रैलोक्यपूजित मुझे स्वामीके रूपमें तुमने प्राप्त किया है।

(अध्याय १४७)

कन्या-दान एवं ब्राह्मणोंकी परिचर्याका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! जो विवाह करने योग्य कन्याको अलंकृतकर ब्राह्मविधिसे सुयोग्य वरको प्रदान करता है, वह सात पूर्व और सात आगे आनेवाली पीढ़ियोंको तथा अपने कुलके सभी मनुष्योंको भी इस कन्या-दानके पुण्यसे तार देता है, इसमें संदेह नहीं। जो प्राजापत्य-विधिके द्वारा

कन्या-दान करता है, वह दक्षप्रजापतिके लोकको प्राप्त करता है। वह अपना उद्धार कर अपार पुण्य प्राप्त करता है तथा अन्तमें स्वर्गलोक प्राप्त करता है। जो पृथ्वी, गौ, अश्व, गजका दान हीन वर्णको करता है, वह घोर नरकमें पड़ता है। शुल्क लेकर कन्याका दान करनेवाला घोर नरक प्राप्त करता

है और हजारों वर्षोंतक अपवित्र लाला-भक्षण करता हुआ नरकमें जीवन-यापन करता है। इसलिये सर्वर्ण कन्या सर्वर्णको ही प्रदान करनी चाहिये। ब्राह्मणके बालक अथवा किसी अनाथको जो चूड़ाकरण, उपनयन आदि संस्कारोंसे संस्कृत करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। अनाथ कन्याका विवाह करनेवाला स्वर्गमें पूजित होता है^१। पूर्वजोंने कहा है कि जो कन्या-दानके साथ प्रदीप शुद्ध सर्वर्णका दान करता है, वह द्विगुणित कन्या-दानका फल प्राप्त करता है। कन्याकी पूजासे विष्णुकी पूजाके समान पुण्य होता है।

महाराज ! पृथ्वीपर ब्राह्मण ही देवता हैं, स्वर्गमें ब्राह्मण ही देवता हैं। इतना ही नहीं, तीनों लोकोंमें ब्राह्मणसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। ब्राह्मणोंमें यह शक्ति

है कि वे मन्त्र-बलके प्रभावसे देवताको अदेवता और अदेवताको देवता बना देते हैं। इसलिये महाभाग ! ब्राह्मणकी सदा पूजा करनी चाहिये। देवगण ब्राह्मणसे ही पूर्वमें उत्पन्न हुए ऐसा स्मृतियोंका कथन है। सम्पूर्ण जगत् ब्राह्मणसे ही उत्पन्न है। इसलिये ब्राह्मण पूज्यतम हैं। देवगण, पितृगण, ऋषिगण जिसके मुखसे भोजन करते हैं, उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ और कौन हो सकता है ? धर्मज्ञ ! ब्राह्मणोंका कल्याण करनेवाला व्यक्ति स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जब प्रत्यक्ष देवता ब्राह्मण संतुष्ट होकर बोलते हैं तो यह समझना चाहिये कि परोक्षमें देवताओंकी ही यह वाणी है। उसीसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, अतः सदा ब्राह्मणकी सेवा करनी चाहिये। (अध्याय १४८—१५०)

दानकी महिमा और प्रत्यक्ष धेनु-दानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन् ! आपके श्रीमुखसे मैंने पुराणोंके विषयोंको सुना। ब्रतोंको भी मैंने विस्तारपूर्वक सुना, संसारकी असारताको भी मैंने समझा, अब मैं दानके महात्म्यको सुनना चाहता हूँ। दान किस समय, किसको, किस विधिसे देना चाहिये, यह सब बतानेकी कृपा करें। मेरी समझसे दानसे बढ़कर अन्य कोई पुण्य कार्य नहीं है; क्योंकि धनिकोंका धन चोरोंद्वारा चुराया जा सकता है अथवा राजाद्वारा छिनवाया जा सकता है, अतः धन रहनेपर दान अवश्य करना चाहिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! मृत्युके उपरान्त धन आदि वैभव व्यक्तिके साथ नहीं जाते, परंतु ब्राह्मणको दिया गया दान परलोकमें

पाथेय बनकर उसके साथ जाता है। हृष्ट, पुष्ट, बलवान् शरीर पानेसे भी कोई लाभ नहीं है, जबतक कि किसीका उपकार न करे। उपकारहीन जीवन व्यर्थ है। इसलिये एक ग्राससे आधा अथवा उससे भी कम मात्रामें किसी चाहनेवाले व्यक्तिको दान क्यों नहीं दिया जाता ? इच्छानुसार धन कब और किसको प्राप्त हुआ या होगा^२ ? धर्म, अर्थ तथा कामके विषयमें सचेष्ट होकर जिसने प्रयत्न नहीं किया, उसका जीवन लोहारकी धौंकनीकी भाँति व्यर्थ ही चलता है। जिस व्यक्तिने न दान दिया, न हवन किया, तीर्थस्थानोंमें प्राण नहीं त्यागा, सुवर्ण, अन्न-वस्त्र तथा जल आदिसे ब्राह्मणोंका सत्कार नहीं किया, वही व्यक्ति जन्म-जन्ममें अन्न, वस्त्ररहित, रोगसे ग्रसित, हाथमें कपाल

१- द्विजपुत्रमनाथं वा संस्कुर्याद्यक्ष कर्मभिः ।

चूडोपनयनाद्यैश्च सोऽश्वमेधफलं लभेत् । अनाथां कन्यकां दत्त्वा नाकलोके महीयते ॥ (उत्तरपर्व १४८। ७-८)

२-ग्रासादर्थमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ (उत्तरपर्व १५१। ६)

लेकर दर-दर भटकता हुआ याचना करता रहता है। अनेक प्रकारके कष्टोंको सहकर प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जो धन एकत्र किया गया है, उसकी एक ही सुगति है दान। शेष भोग और नाश तो प्रत्यक्ष विपत्तियाँ ही हैं^२। उपभोगसे और दानसे धनका नाश नहीं होता, केवल पूर्व-पुण्यके क्षीण होनेसे ही धनका नाश होता है। मरणोपरान्त धनपर अपना स्वामित्व नहीं रह जाता, इसलिये अपने हाथसे ही सुपात्रको धनका दान कर लेना चाहिये। राजन्! दान देनेके अनेक रूप हैं, इस विषयमें व्यास, वाल्मीकि, मनु आदि महापुरुषोंने पहले ही बतलाया है कि पूर्वजन्ममें किये गये व्रत, दान एवं देवपूजन आदि पुण्यकर्म ही दूसरे जन्ममें फलीभूत होते हैं।

राजा युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भगवान् विष्णु, शिव एवं ब्राह्मणोंकी प्रसन्नताके लिये जो दान जिस विधिसे देना चाहिये आप उस विधिका वर्णन करें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! गौ, भूमि और सरस्वती—ये तीन दान सभी दानोंमें श्रेष्ठ और मुख्य हैं। ये अतिदान कहे गये हैं^२। गायोंके दुहने, पृथ्वीको जोतकर अन्न उपजाने तथा विद्याके पढ़ने-पढ़ानेसे सात कुलोंका उद्धार होता है। अब मैं दान देने योग्य गौके लक्षणों और गोदानकी विधि बता रहा हूँ—महाराज! सुपुष्ट, सुन्दर, सवत्सा, पर्यस्त्वनी और न्यायपूर्वक अर्जित धनसे प्राप्त गौ श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। वृद्धा, रोगिणी, वन्ध्या, अङ्गहीन, मृतवत्सा, दुःशीला और दुग्धरहित तथा अन्यायपूर्वक प्राप्त गौका कभी दान नहीं करना।

चाहिये। राजन्! किसी पुण्य दिनमें स्नानकर पितरोंका तर्पणकर भगवान् शिव और विष्णुका घी और दुग्धसे अभिषेक करनेके बाद सोनेके सींगयुक्त, रौप्य खुरवाली, कांस्यके दोहन-पात्रसहित सवत्सा गौका पुष्ट आदिसे भलीभाँति पूजन करना चाहिये, उसे वस्त्र तथा माला आदिसे अलंकृत कर ले। गौको पूर्व या उत्तराभिमुख खड़ा करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको गौका दान करना चाहिये और प्रार्थनापूर्वक इस प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥

गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ।

(उत्तरपर्व १५१। २९-३०)

गायकी पूँछ पकड़कर, हाथीका सूँड़, घोड़ेका कान तथा दासीके सिरका स्पर्श कर और मृगचर्मकी पूँछ पकड़कर दान करना चाहिये। जब ब्राह्मण गाय लेकर जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे आठ-दस कदमतक जाना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति गोदान करता है, उसे सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं और स्वर्गकी प्राप्ति होती है। सात जन्मोंमें किये गये पापका उसी क्षण नाश हो जाता है। राजन्! यह विधि दक्षप्रजापतिके लिये भगवान् विष्णुने कही है। गोदान करनेवाला चतुर्दश इन्द्रोंके समयतक स्वर्गमें निवास करता है। यह गोदान सभी पापोंको दूर करनेवाला है। इससे बढ़कर और कोई प्रायश्चित्त नहीं है। गोदान ही एक ऐसा दान है, जो जन्म-जन्मान्तरतक फल देता रहता है।'

(अध्याय १५१)

१-आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥ (उत्तरपर्व १५१। ११)

दानं भोगो नाशस्तिक्षो गतयो भवन्ति धनस्य। यो न ददाति न भुद्धके तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ (सुभाषितरबाली)

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥ (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड)

२-त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। (उत्तरपर्व १५१। १८)

तिलधेनु-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं— महाराज ! अब मैं भगवान् वाराहके द्वारा कहे गये तिलधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ। जिससे दाता ब्रह्महत्यादि महापातकों तथा सभी उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है और स्वर्गमें निवास करता है।

पहले पृथ्वीको गोबरसे लीपकर उसपर काला मृगचर्म तथा उसके चारों ओर कुश बिछा ले। तदनन्तर उसपर गायकी आकृतिके रूपमें तिलकी राशि फैला ले अर्थात् तिलमयी धेनु बना ले। सफेद, कृष्ण, भूरे तथा गोमूत्रवर्णके तिलोंसे धेनुकी रचना करनी चाहिये। चार आढकके मानकी गाय और एक द्रोण तिलसे बछड़ेका निर्माण करे। गायके खुरके पास चाँदी, सींगके पास स्वर्ण, जिह्वाके पास शक्कर, मुखके पास गुड़, गलकम्बलके पास कम्बल, पैरके स्थानमें ईख, पीठके स्थानपर ताँबा और नेत्रोंके लिये मुक्ता रखनी चाहिये। इसी प्रकार कानके स्थानपर पीपलके पत्ते, दाँतोंके स्थानपर फल, पूँछके स्थानपर माला और स्तनोंके स्थानपर मक्खन रखे। सिरके स्थानपर सफेद वस्त्र, रोमोंके स्थानपर सफेद सरसों रख दे। सुन्दर फलों तथा मणि-मुक्ताओंसे उस तिलमयी कल्पित धेनुको सुसज्जित करे। कांस्यकी दोहनी भी समीपमें रख दे। किसी पुण्य पर्वके दिन उस धेनुका पूजन इत्यादि कर ब्राह्मणको दान कर दे और इस मन्त्रको पढ़ते हुए प्रार्थनापूर्वक प्रदक्षिणा करे—

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या वै देवेष्ववस्थिता ।

धेनुरूपेण सा देवी मम यापं व्यपोहतु ॥

(उत्तरपर्व १५२।१५)

दक्षिणासहित गाय ब्राह्मणको दे दे। इस विधिसे जो तिलधेनुका दान करता है, वह व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।

जो व्यक्ति इस दानका अनुमोदन कर प्रसन्नचित्त होकर प्रशंसा करते हैं तथा विधिपूर्वक जो ब्राह्मण दान ग्रहण करते हैं, वे भी ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। प्रशान्त, सुशील, वेदव्रतपरायण ब्राह्मणके लिये तिलधेनुका दान करनेवाले व्यक्तिको अपने कृत-अकृतका शोक नहीं करना पड़ता। तिलधेनु-दान करनेवाले व्यक्तिको तीन दिन अथवा एक दिन तिलका ही भोजन करना चाहिये। दान करनेसे मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं और उसके अंदर पवित्रता आ जाती है। तिलका भक्षण करना चान्द्रायणव्रतसे अधिक श्रेष्ठ माना गया है। बाल्य, युवा अथवा वृद्धावस्थामें मन, वचन तथा कर्मसे जो पाप हुआ हो अथवा अभक्ष्य-भक्षण, अगम्यागमन, अपेयपान इत्यादि जो पातक, महापातक और उपपातक किये गये हों, वे सब तिलधेनुके दानसे दूर हो जाते हैं। पवित्र गङ्गा आदि नदियोंमें थूकने तथा नग्न स्नान करनेसे जो पाप होता है, वह भी नष्ट हो जाता है। तिलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति यमलोकके मार्गकी भयंकर यातनाओंका अतिक्रमण कर सुवर्णके विमानमें बैठकर उत्तम लोकमें चला जाता है। राजन् ! नैमिषारण्यमें कथा-प्रसंगके समय मुनियोंने यह विधि सुनायी और नारदजीने मुझे इस विधिका उपदेश किया, वही तिलधेनु-दानकी विधि मैंने आपसे कही है। तिलधेनुका दान करना पवित्र, पुण्य और माङ्गल्यप्रद तथा कीर्तिवर्धक है। श्राद्धके समय ब्राह्मणोंको इस माहात्म्यका श्रवण करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। गौ, घर, शय्या और कन्या एक व्यक्तिको ही देनी चाहिये, क्योंकि विभाजनसे दोनोंको अधोगतिकी प्राप्ति होती है और विक्रय करनेसे सात कुल दुर्गतिको प्राप्त करते हैं। इस दानके प्रभावसे दान करनेवाला

उत्तम विमानमें बैठकर साक्षात् विष्णुभगवान्‌के समीप पहुँच जाता है। माघ अथवा कार्तिककी पूर्णिमा, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, अयन-संक्रान्ति, विषुव-

योग, व्यतीपात-योग, वैशाख अथवा मार्गशीर्षकी पूर्णिमा और गजच्छाया-योगमें तिलधेनुका दान प्रशस्त माना गया है। (अध्याय १५२)

जलधेनु-दानके प्रसंगमें महर्षि मुद्गलका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं जलधेनु-दानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे देवाधिदेव भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उत्तम जलसे पूर्ण एक कलश स्थापित करे, उसमें पञ्चरत्न, धान्य, दूर्वा, पञ्चपल्लव, कुष्ठसंज्ञक ओषधि, खश, जटामांसी, मुरा, प्रियंगु और आँवला छोड़े। फिर उसे दो श्वेत वस्त्रों, यज्ञोपवीत और पुष्पमालाओंसे अलंकृत करे। कुशके आसनपर कलशको रखकर उसके आस-पास जूता, छाता आदि तथा चारों दिशाओंमें चाँदीके चार पात्रोंमें तिल, दही, धूत और मधु भरकर रखे। कलशमें सवत्सा धेनुकी कल्पना कर उसे गोमयसे उपलिस कर दे। पूँछके स्थानपर माला लटका दे। समीपमें दोहनपात्र भी रख ले। इसके बाद सब उपचारोंसे भगवान् विष्णुकी यथाशक्ति पूजा कर उस कलशमें जलधेनुकी अभिमन्त्रणा करे और इस प्रकार कहे—

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः ।
सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण साऽस्तु मे ॥

(उत्तरपर्व १५३।८)

‘जो गौमाता भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें लक्ष्मीके रूपमें निवास करती हैं और अग्निदेवकी पती स्वाहा तथा चन्द्रमा, सूर्य एवं इन्द्रकी शक्ति-रूपमें प्रतिष्ठित हैं वे मेरे लिये इस जलरूपी कलशमें अधिष्ठित हों।’

इस मन्त्रसे कलशमें धेनुको प्रतिष्ठितकर वत्स-समन्वित उस जलधेनुका तथा जलशायी भगवान् अच्युत गोविन्दका भलीभाँति पूजन करे। तदनन्तर वीतराग और शान्तचित्त होकर भगवान् विष्णुकी

प्रसन्नताके लिये उस कलशस्थित जलधेनुका ब्राह्मणको दान कर दे और इस प्रकार कहे—
शेषपर्यङ्गशयनः श्रीमाञ्छाङ्गविभूषितः ।
जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः ॥

(उत्तरपर्व १५३।११)

‘शेषनागरूपी शश्यापर शयन करनेवाले, शाङ्गधनुषसे विभूषित, जलशायी, जगद्योनि, श्रीसम्पन्न भगवान् केशव! आप (इस दानरूपी कर्मसे) मुझपर प्रसन्न हों।’

दान करनेके बाद उस दिन गोव्रत करना चाहिये। इस विधिसे जलधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति सभी प्रकारके आनन्दको प्राप्त करता है तथा उसे सार्वकालिक अतुल शान्ति प्राप्त होती है एवं सभी मनोरथोंकी सिद्धि हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

राजन्! इस विषयमें एक आख्यान सुना जाता है जो इस प्रकार है—किसी समय जातिस्मर महात्मा मुद्गल-ऋषि भ्रमण करते हुए यमलोकमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि पापी जीव अनेक प्रकारके कुम्भीपाक आदि दारूण नरकमें कष्ट भोग रहे हैं और यमराजके अति भयंकर दूत उन्हें अनेक प्रकारके दुःख दे रहे हैं। मुद्गलमुनिको देखकर नरकके जीवोंकी पीड़ा शान्त हो गयी और उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा वे सुखका अनुभव करने लगे। जीवोंको सुखी देखकर मुनिको बहुत आश्र्य हुआ, उसपर उन्होंने यमराजसे इसका कारण पूछा। यमराजने कहा—‘मुने! आपको देखकर नरकके जीवोंको जो प्रसन्नता हुई है, उसका

कारण यह है कि आपने तीन जन्मोंमें विधिवत् जलधेनुका दान किया है, उसीके प्रभावसे आपका दर्शन सबको आह्वादित कर रहा है। जो आपका दर्शन करेंगे, आपका ध्यान करेंगे, आपकी चर्चा सुनेंगे अथवा आप जिन्हें देखेंगे, स्मरण करेंगे उनको भी सुख-शान्ति और आनन्द होगा। जलधेनुका दान करनेवालेको हजारों जन्मोंतक कोई क्लेश नहीं होता। इससे अधिक प्रसन्नतादायक अन्य कोई कर्म नहीं है। मुने! अब आप मेरे द्वारा अर्घ्य, पाद्य आदि स्वीकार कर अपने धामको जाइये। जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्णका आश्रय ग्रहण किया है, वे मेरे द्वारा नियमन करने योग्य नहीं हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णका पूजन-ब्रत करता है, नित्य उनका ध्यान करता है, उनके कृष्ण, अच्युत, अनन्त, वासुदेव आदि नामोंका निरन्तर उच्चारण करता है, वह इस लोकमें नहीं आता। जो 'अच्युतः प्रीयताम्' ऐसा कहकर दान देता है, वह मेरे लोकमें नहीं आता। वे भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं और हम सभी उनके आज्ञाकारी हैं। मैं लोकोंका संयमन करता हूँ और मेरा संयमन भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं*। यमराजका यह वचन सुनकर अग्नि, शस्त्र आदिसे पीड़ित सब नरकके जीव भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनके पवित्र नामोंका स्मरण करने लगे। भगवान् विष्णुका स्मरण करते ही उस पुण्यकर्मके प्रभावसे नरककी अग्नि शीतल हो गयी। यमराजके सभी अस्त्र-शस्त्र प्रभावशून्य हो गये, अन्धकार दूर हो

गया। सर्वत्र प्रकाश छा गया। यमदूत मूर्छ्छत हो गये। शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु बहने लगी। मधुर ध्वनियाँ होने लगीं। पूय और रुधिरकी नदियोंमें उत्तम गङ्गाजल प्रवाहित होने लगा। सभी जीव दुःखसे छूटकर उत्तम वस्त्र, आभूषण, माला आदिसे विभूषित हो गये तथा तीनों पापोंसे मुक्त हो गये। यह अद्भुत दृश्य देखकर धर्मराज उन निष्पाप नारकीय जीवोंका पाद्यादिसे अर्चन करने लगे और इसे भगवान् विष्णुकी महिमा समझकर उनको बार-बार प्रणाम करने लगे।

यमराज इस प्रकार स्तुति कर ही रहे थे कि उनके देखते-ही-देखते नरकके सभी जीव दिव्य विमानोंमें बैठकर स्वर्गमें चले गये। मुद्गल-ऋषि भी यह सब चरित्र देखकर अपने धाममें चले आये और भगवान् विष्णुका प्रभाव तथा जलधेनु-दानके माहात्म्यका बार-बार स्मरण करते हुए कहने लगे—

अहो! भगवान् विष्णुकी माया बड़ी विचित्र और कठिन है, जिससे मोहित होकर प्राणी परमेश्वरको नहीं पहचान पाता। इसी कारण जीव कीट, जँड़, पतङ्ग, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी आदि योनियोंमें भ्रमण करते हैं और अपनी मुक्तिके लिये प्रयत्न नहीं करते। यह आश्र्वय है कि मायासे मोहित व्यक्ति अपना हित नहीं पहचान पाता। विष्णुभगवान्‌की माया यद्यपि बड़ी ही विचित्र है, परंतु भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करनेपर व्यक्ति उस मायाको दूर कर लेता है। जो व्यक्ति मानव-

* कृष्णस्तु पूजितो यैसु ये कृष्णार्थमुपोषिताः । यैश्च नित्यं स्मृतः कृष्णो न ते मद्विषयोपगाः ॥

नमः कृष्णाच्युतानन्त वासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भावभावितैर्विप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥

दानं ददद्विष्ट्यैरुक्तमच्युतः प्रीयतामिति । श्रद्धापुरःसरैविप्र न ते मद्विषयोपगाः ॥

स एव नाथः सर्वस्य तत्रियोगकरा वयम् । जनसंयमनश्चाहमस्मत्संयमनो हरिः ॥

(उत्तरपर्व १५३ । ३०—३३)

ऐसे ही 'हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः, प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः' आदि प्रायः पंद्रह श्लोक विष्णुपुराणके यमगीतामें हैं, जो प्रायः प्रतिदिन पठनीय हैं।

जन्म पाकर भी भगवान्‌की आराधना नहीं करता, उसका मनुष्यके रूपमें जन्म लेना ही व्यर्थ है। ऐसा कौन अभागा व्यक्ति होगा, जो भगवान्‌की आराधना नहीं करेगा, जबकि भक्तिपूर्वक थोड़ी-सी भी आराधना की जाय तो भगवान्‌ विष्णु इस लोक तथा परलोकमें उसका कल्याण कर देते हैं। भगवान्‌को धन, वस्त्र, आभूषण आदि कुछ भी नहीं चाहिये। उन्हें तो मात्र हृदयकी भक्ति एवं शुद्ध प्रेम चाहिये^१। इसलिये जीव! तुम भगवान्‌से दूर क्यों रहते हो! हजारों जन्मोंके बाद इस कर्मभूमिमें दुर्लभ मानव-रूपमें जन्म लेकर जो व्यक्ति श्रीविष्णुकी आराधना और जलधेनुका दान

नहीं करता, उस व्यक्तिका यह जन्म ही व्यर्थ है। वह व्यक्ति मायाके जालमें पड़ा रहता है। मुद्गल-ऋषिने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर कहा कि 'मनुष्यो! मैं पुकार-पुकारकर कहता हूँ कि आपलोगोंको दोनों लोकोंमें कल्याण प्राप्त करनेके लिये श्रीविष्णुभगवान्‌की आराधना और जलधेनुका दान करना चाहिये। नरककी यातना अति दुःखदायिनी है, इसे मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है। विचार करनेपर यह सत्य ही मालूम पड़ता है कि उस दुःखसे बचनेके लिये भगवान्‌ विष्णुमें अपने मनको लगाना चाहिये, यही श्रेयस्कर उपाय है^२।' (अध्याय १५३)

घृतधेनुदान-विधि

भगवान्‌ श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं घृतधेनुदान और घृतधेनु-निर्माणकी विधि बता रहा हूँ, इसे आप प्रेमपूर्वक सुनें। गायके घीसे भरे हुए कलशोंको गायकी आकृतिमें बनाकर उन्हें गन्ध, पुष्प आदिसे अलंकृत कर श्वेत वस्त्रसे भलीभाँति पूजन करे और दोहन-स्थानपर कांस्यकी दोहनी रख दे। पैरोंकी जगहपर ईखके डंडे, खुरकी जगहपर चाँदी, आँखके स्थानपर सोना, सींगोंके स्थानपर अगरुकाष्ठ, दोनों बगलमें सप्तधान्य, गलकम्बलके स्थानपर ऊनी वस्त्र, नासिकाके स्थानपर तुरुष्कदेशीय कपूर, स्तनोंके स्थानपर फल, जिह्वाके स्थानपर शर्करा, मुखके स्थानपर दूधमिश्रित गुड़, पूँछकी जगहपर रेशमी वस्त्र तथा रोओंकी जगहपर सफेद (गौर) सरसों और पीठकी जगहपर ताम्रपात्र स्थापित करे। इस प्रकार से घृतधेनुकी रचना करे। इसी प्रकार

घृतधेनुके पास ही घृतधेनु-वत्सकी भी कल्पना करे। तदनन्तर विधिपूर्वक घृतधेनुकी प्रतिष्ठा कर भलीभाँति पूजन करे और इस प्रकार कहे—
आज्ञं तेजः समुद्दिष्टमाज्ञं पापहरं परम्।
आज्ञं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम्॥
त्वं चैवाज्यमयी देवि कल्पितासि मया किल।
सर्वपापापनोदाय सुखाय भव भामिनि॥

(उत्तरपर्व १५४। ८-९)

'घृतको तेजोवर्धक तथा पापापहारी बतलाया गया है। देवताओंका आहार घृत ही है, सभी कुछ घृतमें ही प्रतिष्ठित है, इसलिये घृतमयी देवि! तुम मेरे द्वारा घृतकुण्डोंमें कल्पित की गयी हो, मेरे पापोंको नष्टकर मुझे आनन्द प्रदान करो।'

ऐसा कहकर दक्षिणासहित घृतधेनुका दान ब्राह्मणको दे दे और कहे कि ब्राह्मणदेवता! मेरा उपकार करनेके लिये आप इस आज्यमयी धेनुको

१—यो न वित्तद्विभवैर्व वासोभिर्भूषणैः। तुष्टते हृदयेनैव कस्तमीशं न पूजयेत्॥ (उत्तरपर्व १५३। ६५)

२—महर्षि मुद्गलप्रोक्त मुद्गलपुराण सभी उपपुराणोंमें बड़ा है और इनकी धर्मनिष्ठा एवं भक्तिकी विशिष्ट कथा महाभारतके सङ्कुप्रस्थीय मुद्गलोपाख्यानमें भी अतीव आकर्षक है। धर्मकी उपेक्षाके कारण मुद्गलपुराण अब प्रायः लुप्त-सा हो रहा है। ऐसे ही गणेशपुराण भी लुप्त-सा हो रहा है। समर्थ व्यक्तियोंको इन दोनोंको प्रकाशित करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

ग्रहण करें। उस दिन घृतका ही आहार करना चाहिये। इसी विधिसे नवनीत (मक्खन)-धेनुका भी दान करना चाहिये। घृतधेनुका दान करनेवाला व्यक्ति उस लोकमें निवास करता है, जहाँ घी और दूधकी नदियाँ बहती हैं। वह व्यक्ति अपने सात पीढ़ीके लोगोंका भी उद्धार कर देता है। ये

फल तो सकाम दान देनेवाले व्यक्तियोंके हैं, किंतु जो व्यक्ति निष्कामभावसे घृतधेनुका दान करता है, वह निष्कल्प छोकर परम पदको प्राप्त करता है। घृत सर्वदेवमय है, इसलिये घृतके दानसे सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

(अध्याय १५४)

लवणधेनुदान-विधि

राजा युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप इस प्रकारके दानकी विधिका वर्णन करें, जिसे करनेसे सभी दानोंका फल प्राप्त हो जाय एवं सभी पापोंका नाश हो जाय और सभी मनोरथ सिद्ध हो जाय तथा व्यक्ति शुद्ध हो जाय।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! सभी दानोंमें लवणधेनुका दान उत्तम है। इससे ब्रह्मत्या, गोहत्या, पितृहत्या, गुरुपतीगमन, विश्वासघात, कूरता आदि अनेक प्रकारके पापोंका आचरण करनेवाला व्यक्ति मुक्त हो जाता है। वह धन, धान्य, पुत्र, पौत्र एवं सुख प्राप्त कर दीर्घायु होकर इस संसारके सुखको भोगकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त कर लेता है। अब मैं इस लवणधेनुदानकी विधिको बता रहा हूँ—

भूमिको गोबरसे लीपकर उसके ऊपर कुश बिछा दे तथा उसके ऊपर मेषका चर्म बिछा दे। उसपर पूर्व दिशाकी ओर मुँह करके बैठे। चाहे कोई मनुष्य धनी हो या गरीब प्रायः एक आढ़क अर्थात् चार सेर लवण रखकर उसमें धेनुकी कल्पना करनी चाहिये। सुवर्णमण्डित चन्दनकाष्ठके सींग, चाँदीके खुर, ईखके पैर, फलोंके स्तन, शर्कराकी जिहा, चन्दनकी नासिका, सीपके कान, मोतियोंकी आँखोंकी कल्पना कर उसके कपोलमें सकुपिण्ड, मुखमें जौ, दोनों पाश्चोंमें तिल और गेहूँ—इस प्रकार

सप्तधान्य उस लवणधेनुके अङ्गोंमें स्थापित करे। इसी प्रकार ताम्रसे पीठ, गुडपिण्डसे अपान-देश, कम्बलसे पूँछका, अंगूरसे चार स्तनोंका, मधुर फलों एवं मधुसे योनिदेशकी रचना करनी चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त सामग्रियोंसे लवणधेनुकी रचनाकर सेरभर नमकके मानसे उसके वत्सकी कल्पना करे। धेनु तथा बछड़ेको वस्त्र-आभूषण आदिसे अलंकृत करे। तदनन्तर स्वयं स्नान कर देवताओं और ब्राह्मणकी पूजा करे। स्त्री-पुत्रके साथ गायकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रको पढ़कर नमस्कार करे—

लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः।
सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १५५। १८)

‘लवणमें सभी रस निहित हैं। सभी देवताओंका निवास लवणमें रहता है, इसलिये सर्वदेवमयी लवणधेनु! आपको मेरा नमस्कार है।’

अनन्तर दक्षिणाके साथ वह धेनु ब्राह्मणको समर्पित कर दे। राजन्! लवणधेनुका दान करनेसे सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा और सभी यज्ञों तथा दानोंका भी फल प्राप्त हो जाता है। इस विधिसे जो व्यक्ति रसमयी लवणधेनुका दान करता है, उसे सौभाग्य, सुख, आरोग्य, सम्पत्ति, धन-धान्यकी प्राप्ति होती है तथा वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। (अध्याय १५५)

सुवर्णधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं सुवर्णधेनुदानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्ति मिल जाती है। पचास पल (प्रायः तीन किलो), पचीस पल अथवा जितनी भी सामर्थ्य हो उस मानमें शुद्ध सुवर्णसे रत्नजटित सुन्दर कपिला सुवर्णधेनुकी रचना करनी चाहिये। उसके चतुर्थांशसे उसका वत्स बनाये। गलेमें चाँदीकी घंटी लगाये, रेशमी वस्त्र ओढ़ाये, इसी प्रकार हीरेके दाँत, वैदूर्यका गलकम्बल, ताँबेके सींग, मोतीकी आँखें और मूँगेकी जीभ बनाये। कृष्णमृगचर्मके ऊपर एक प्रस्थ गुड़ रखकर उसके ऊपर सुवर्णधेनुको स्थापित करे। अनेक प्रकारके फलयुक्त आठ कलश, अठारह प्रकारके धान्य, छाता, जूता, आसन, भोजन-सामग्री, ताँबेका दोहनपात्र, दीपक, लवण, शर्करा आदि स्थापित करे। तदनन्तर स्त्रान कर सुवर्णधेनुकी प्रदक्षिणा कर उसकी भलीभाँति पूजा करे। पूजनके अनन्तर प्रार्थनापूर्वक उस सुवर्णधेनुको दक्षिणा तथा सभी उपस्करोंके साथ ब्राह्मणको दान करे।

राजन्! गौके जिस अङ्गमें जो देवता, मनु एवं तीर्थ निवास करते हैं वे इस प्रकार हैं*—नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा, जिह्वामें सरस्वती, दाँतोंमें मरुदूण, कानोंमें अश्विनीकुमार, सींगके अग्रभागमें रुद्र और ब्रह्मा, ककुदमें गन्धर्व और अप्सराएँ, कुक्षिमें चारों समुद्र, योनिमें गङ्गा, रोमकूपोंमें ऋषिगण, अपानदेशमें पृथ्वी, आँतोंमें नाग, अस्थियोंमें पर्वत, पैरोंमें चतुर्विध पुरुषार्थ, हुंकारमें चारों वेद, कण्ठमें रुद्र, पृष्ठभागमें मेरु और समस्त शरीरमें भगवान् विष्णु निवास करते हैं। इस प्रकार यह सुवर्णधेनु सर्वदेवमयी और परम पवित्र है।

जो व्यक्ति सुवर्णधेनुका दान करता है, वह मानो सभी प्रकारके दान कर लेता है। इस कर्मभूमिमें यह दान बहुत दुर्लभ है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक काञ्चनधेनुका दान करना चाहिये। इससे संसारसे उद्धार हो जाता है और कीर्ति तथा शान्तिकी प्राप्ति होती है एवं उसके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और अन्तमें उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है।

(अध्याय १५६)

रत्नधेनुदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं गोलोक प्राप्त करनेवाले अत्युत्तम रत्नधेनुदानकी विधि बता रहा हूँ। किसी पुण्य दिनमें भूमिको पवित्र गोबरसे लीपकर उसमें धेनुकी कल्पना करे। पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर उसपर एक द्रोण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक

संकल्पसहित रत्नमयी धेनु स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्यासी पद्मरागमणि तथा चरणोंमें पुष्पराग स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक, उसकी दोनों आँखोंमें सौ मोती, दोनों भौंहोंपर सौ मूँगा और दोनों कानोंकी जगह दो सींगे लगाये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये।

* नेत्रोः सूर्यशशिनौ जिह्वायां तु सरस्वती । दन्तेषु मरुतो देवाः कर्णयोश्च तथाश्विनौ ॥

शृङ्गाग्रां सदा चास्या देवौ रुद्रपितामहौ । गन्धर्वाप्सरसंघैव ककुदेशं प्रतिष्ठिताः ।

कुक्षौ समुद्राश्वत्वारो योनौ त्रिपथगामिनौ ॥

ऋणयो रोमकूपेषु अपाने वसुधा स्थिता । अन्त्रेषु नागा विज्ञेयाः पर्वताश्वस्थिषु स्थिताः ॥

धर्मकामार्थमोक्षास्तु पादेषु परिसंस्थिताः । हुंकारे च चतुर्वेदाः कण्ठे रुद्राः प्रतिष्ठिताः ॥

पृष्ठभागे स्थितो मेरुर्विष्णुः सर्वशरीराः । एवं सर्वमयी देवी पावनी विश्वरूपिणी ॥ (उत्तरपर्व १५६। १६—२०)

सिरकी जगह सौ हीरोंको स्थापित करना चाहिये । कण्ठ और नेत्र-पलकोंमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्वस्थानोंमें सौ वैदूर्य (बिल्लौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगन्धिक (माणिक-लाल) मणि रखना चाहिये । खुरोंको स्वर्णमय, पूँछको मुक्ता (मोतियों)-की लड़ियोंसे युक्तकर तथा दोनों नाकोंकी सूर्यकान्त एवं चन्द्रकान्त मणियोंसे रचनात्मक कर्पूर और चन्दनसे चर्चित करें^१ । रोमोंको केसर और नाभिको चाँदीसे बनवाये । गुदामें सौ लाल मणियोंको लगाना चाहिये । अन्य रत्नोंको संधिभागोंपर लगाना चाहिये । जीभको शक्करसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको घीसे बनाना चाहिये । दही-दूध प्रत्यक्ष ही रखे । पूँछके अग्रभागपर चमर तथा स्तनोंके पास ताँबेकी दोहनी रखनी चाहिये ।

इसी प्रकार गौके चतुर्थांशसे बछड़ा बनाना

चाहिये । इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे । उस समय गुड़धेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—‘देवि ! चूँकि रुद्र, इन्द्र, चन्द्रमा, ब्रह्मा, तथा विष्णु—ये सभी तुम्हें देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हरे ही शरीरमें व्यास है, अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा शीघ्र ही उद्धार करो ।’ इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद गौकी पूजा तथा परिक्रमा कर भक्तिपूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम करके उस रत्नधेनुका दान ब्राह्मणको दक्षिणाके साथ करे, अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे । इस प्रकार सम्पूर्ण विधियोंको जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह शिवलोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम)-को प्राप्त करता है तथा पुनः बहुत समयके बाद इस पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है और उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । (अध्याय १५७)

उभयमुखी धेनु-दानका माहात्म्य

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो ! उभयमुखी अर्थात् प्रसवके समयमें गौका दान किस प्रकार करना चाहिये और उसके दानका क्या फल है । इसे आप बतायें ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज ! उभयमुखी गौ-दानका संयोग बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है । जबतक बछड़ेके पैर प्रसवके समय भीतर हों और केवल सिर बाहर दिखलायी दे, उस समय वह गौ मानो साक्षात् सप्तसूत्रीपवती पृथ्वी है^२ । ऐसी उभयमुखी गौके दानके फलका वर्णन शक्य नहीं । यज्ञ और दान करनेसे जो फल प्राप्त नहीं होता, वह फल

केवल उभयमुखी धेनुके दानसे ही प्राप्त हो जाता है और दाताका उद्धार हो जाता है । सींगोंको स्वर्णसे, खुरोंको चाँदीसे तथा पूँछको मोतीकी मालाओंसे अलंकृतकर जो उभयमुखी धेनुका दान करता है, वह गौ और बछड़ेके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही हजार वर्षतक स्वर्गमें पूजित होता है तथा अपने पितरोंका उद्धार कर देता है । जो व्यक्ति सुवर्णसहित उभयमुखी धेनुका दान करता है, उसके लिये गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाता है । दुर्बल, अङ्गहीन गौ और दक्षिणासे रहित दान नहीं करना चाहिये ।

(अध्याय १५८)

१-इतने बहुमूल्य रत्नोंका दान करनेके उल्लेखसे लोभ, धूर्तता या असम्भावनाकी कल्पनाकर चकित नहीं होना चाहिये, क्योंकि पूर्ण धर्माचरण, देवाराधन और ईमानदारी तथा परस्पर उपकारकी भावनासे भारत ऐसा ही समृद्ध था कि कोई वस्तु दाम लेकर नहीं बेची जाती थी । इस बातको ‘कल्याण’ के ‘हिन्दू संस्कृति-अङ्क’ से लेकर १९६८ के कई साधारण अङ्कोंमें बार-बार प्रमाणोंद्वारा सिद्ध किया गया है ।

२-अन्य पुराणोंमें भी इसका महत्व आया है और इसकी परिक्रमासे सप्तसूत्रीपवती पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्य बतलाया गया है ।

गोसहस्रदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—जनार्दन! आप गोसहस्रदानका विधान बतायें। यह किस समय किस विधिसे किया जाता है।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रजेश्वर! गौएँ सम्पूर्ण संसारमें पवित्र हैं और गौएँ ही उत्तम आश्रयस्थान हैं। संसारकी आजीविकाके लिये ब्रह्माजीने इनकी सृष्टि की है। तीनों लोकोंके हितकी कामनासे गौकी सृष्टि प्रथम की गयी है। इनके मूत्र और पुरीषसे देवमन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं औरोंके लिये तो कहना ही क्या^१! गौएँ काम्य यज्ञोंकी मूलाधार हैं, इनमें सभी देवताओंका निवास है। गोमयमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास है। ब्राह्मण और गौ—दोनों एक ही कुलके दो रूप हैं। एकमें मन्त्र अधिष्ठित हैं और एकमें हविष्य-पदार्थ। इन्हीं गौओंके पुत्रोंके द्वारा सारे संसार और देवताओंका भरण-पोषण होता है। राजन्! आप ऐसी विशिष्ट गुणमयी गौके दानका विधान सुनें। एकमात्र सर्वगुण तथा सर्वलक्षणसम्पन्न गौका दान करनेपर समस्त कुटुम्ब तर जाता है, फिर यदि अधिक गौएँ दानमें दी जायें तो उनके माहात्म्यके विषयमें क्या कहा जाय?

प्राचीन कालमें महाराज नहुष और महामति ययातिने भी सहस्रों गौओंका दान किया था, जिसके प्रभावसे वे ब्रह्म-स्थानको प्राप्त हो गये। पुत्रकी कामनासे देवी अदितिने भी गङ्गाजीके तटपर अपार गोदान किया था, जिसके फलस्वरूप उन्होंने तीनों लोकोंके स्वामी नारायण (भगवान् वामन—उपेन्द्र) -को पुत्ररूपमें प्राप्त किया।

राजन्! ऐसा सुना जाता है कि पितृगण इस प्रकारकी गाथा गाते हैं—क्या मेरे कुलमें ऐसा

कोई पुण्यात्मा पुत्र होगा, जो सहस्रों गौओंका दान करेगा, जिसके पुण्यकर्मसे हम सब परमसिद्धिको प्राप्त कर सकेंगे अथवा हमारे कुलमें सहस्रों गोदान करनेवाली कोई दुहिता (कन्या) होगी, जो अपने पुण्य-कर्मके आधारपर मेरे लिये मोक्षकी सीढ़ी तैयार कर देगी^२।

राजन्! अब मैं शास्त्रोक्त सार्वकामिक गोसहस्रदानरूप यज्ञकी विधि बता रहा हूँ। दाता किसी तीर्थस्थान अथवा गोष्ठ या अपने घरपर ही दस अथवा बारह हाथका लम्बा-चौड़ा एक सुन्दर मण्डप बनवाये। उसमें तोरण लगाये जायें। उसके चारों दिशाओंमें चार दरवाजे लगाये जायें। मण्डपके मध्यमें चार हाथकी एक सुन्दर बेदी बनाये। इस बेदीके पूर्वोत्तर-दिशा (ईशानकोण)-में एक हाथके प्रमाणकी ग्रहवेदीका निर्माण करे। ग्रहयज्ञके विधानसे उसपर क्रमसे ग्रहोंकी स्थापना करे। सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्रकी अर्चना करनी चाहिये। यज्ञके लिये ऋत्विजोंका वरण, पुनः बेदीके पूर्वोत्तर-भागमें एक शिव-कुण्डका निर्माण कर द्वार-प्रदेशमें पल्लवोंसे सुशोभित दो-दो कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये और उनमें पञ्चरत्न डाल देना चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। तुलापुरुषदानके समान इसमें भी लोकपालोंके निमित्त बलि-नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। सहस्रों गौओंमेंसे सवत्सा दस गौओंको अलग कर उन्हें वस्त्र और माला आदिसे खूब अलंकृत कर ले। इन दसों गौओंके मध्य जाकर विधिपूर्वक सबकी पूजा करे। इनके गलेमें सोनेकी घंटी, ताँबेके दोहनपात्र, खुरोंमें चाँदी और मस्तकको सुवर्ण-तिलकसे अलंकृतकर सींगोंमें भी सोना लगा दे।

१-यासां मूत्रपुरीषेण देवतायतनान्यपि । शुचीनि समजायन्त किं भूतमधिकं ततः ॥ (उत्तरपर्व १५९।३)

२-दुहिता वा कुले काचिद् गोसहस्रप्रदायिनी । सोपानः सुगतिर्दत्तो भविष्यति न संशयः ॥ (उत्तरपर्व १५९।१४)

गोमाताके चतुर्दिक् चमर डुलाना चाहिये। इसी प्रसंगमें मुनियोंने सुवर्णमय नन्दिकेश्वर (वृषभ)-को लवणके ऊपर रखकर अथवा प्रत्यक्ष वृषभके भी दानका विधान बतलाया है। इस प्रकार दस-दस गौके क्रमसे गोसहस्र या गोशत दान करना चाहिये। यदि संख्यामें सम्पूर्ण गौएँ उपलब्ध न हो सकें तो दस गौओंकी पूजा कर शेष गौओंकी परिकल्पना कर उनका दान करना चाहिये।

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गीत एवं माझलिक शब्दोंके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वोषधिमिश्रित जलसे स्नान कराया हुआ यजमान अञ्जलिमें पुष्ट लेकर इस प्रकार उच्चारण करे—‘विश्वमूर्तिस्वरूप विश्वमाताओंको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणीरूप गौओंको बारम्बार प्रणाम है। गौओंके अङ्गोंमें इक्कीसों भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूपारै माताएँ मेरी रक्षा करें। गौएँ मेरे अग्रभागमें रहें, गौएँ मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएँ नित्य मेरे चारों ओर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँँ। चूँकि तुम्हीं वृषरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो।’ इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियोंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरको गुरुको दान कर

दे तथा उन दसों गौओंमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गौ प्रत्येक ऋत्विज्को समर्पित कर दे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतोंको नहीं देनी चाहिये, क्योंकि वह दोषप्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक गौएँ देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने।

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्य-ब्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घंटियोंसे सुशोभित सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ होकर सभी लोकपालोंके लोकोंमें देवताओंद्वारा पूजित होता है। इस गोसहस्रदानसे पुरुष अपने इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। गोदानमें गौ, पात्र, काल एवं विधिका विशेषरूपसे विचार करना चाहिये। (अध्याय १५९)

वृषभदानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जनार्दन! आपकी हृदयमें एक कौतूहल है। तीनों लोकोंमें यह प्रसिद्ध अमृतमयी वाणीसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, मेरे है कि गौओंका स्वामी—गोपति (वृषभ)

१-भविष्यपुराणमें बार-बार गौओंकी अपार महिमा और गोसहस्रदान आदिकी विधिका निर्देश यही सूचित करता है कि भारत गो-भक्त देश था और यहाँ दूध-दहीकी सचमुच नदियाँ बहती थीं। कृष्णके व्रजमें गो-चारणकी कथा और वहाँकी अद्भुत गो-सम्पत्तिकी कथा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज जो भारत कंगाल-सा बन गया है तथा रबदान, सुवर्णशृङ्गी सहस्र गोदान आदिकी बातें कल्पना-सी लगती होंगी, वह सब शास्त्रोंकी उपेक्षा और गो-भक्ति-शून्यताका ही परिणाम है।

२-बाजसनेऽपि । ४१ आदिमें बार-बार रोहिणीरूपा गौओंको कामधेनु एवं सुरभिरूपा कहा गया है। रोहिणी गौ प्रायः लाल वर्णकी होती है।

३-गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे सर्वतः सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥ (उत्तरपर्व १५९ । ३३)

गोविन्दस्वरूप है, अतः प्रभो! ऐसे महनीय वृषभदानका फल बतानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! सुनिये, यह वृषभदान पवित्रोंमें पवित्रतम और दानोंमें सबसे उत्तम दान है। एक स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट वृषभके दानका फल दस धेनुओंके दानसे अधिक है। हृष्ट-पुष्ट, युवा, सुन्दर, सुशील, रूपवान् और ककुदमान् एक ही शुभ लक्षणसम्पन्न वृषके दानसे उस दान करनेवाले व्यक्तिके सभी कुलोंका उद्घार हो जाता है। पुण्यपर्वके दिन वृषभकी पूँछमें चाँदी लगाकर तथा भलीभाँति उसे अलंकृत कर दे, तदनन्तर दक्षिणाके साथ उस वृषका दान ब्राह्मणको देकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

धर्मस्त्वं वृषस्त्वेण जगदानन्दकारकः ।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन ॥

(उत्तरपर्व १६० । ९)

इस विधिसे वृषभदान करनेवाले व्यक्तिके सात जन्म पहलेके किये गये समस्त पाप इसके

प्रभावसे उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं और अन्तमें वह व्यक्ति वृषभयुक्त कामचारी दिव्य विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें चला जाता है। महीपते! उस वृषके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने हजार वर्षतक वह गोलोकमें पूजित होता है, इसके बाद गोलोकसे अवतीर्ण होकर इस लोकमें उत्तम कुलीन ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वह व्यक्ति यज्ञ करनेवाला, महान् तेजस्वी और सभी ब्राह्मणोंद्वारा पूजित होता है। महाराज! आपने जो यह पूछा कि यह उत्तम वृषदान किसे करना चाहिये, उसके विषयमें मैं बतला रहा हूँ। जो ब्राह्मण शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, वेदवेत्ता, अहिंसक और प्रतिग्रहसे डरनेवाला, मनुष्योंका उद्घार करनेमें समर्थ तथा गृहस्थ हो। उसे दृढ़, पुष्ट, बलवान्, भारवहन करनेमें समर्थ और सब गुणोंसे युक्त उत्तम वृष प्रदान करना चाहिये। इस प्रकारसे एक वृषभका दान दस धेनुदानसे भी अधिक फलप्रद है। (अध्याय १६०)

कपिलादानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—जगत्पते! अब आप कपिलादानका माहात्म्य बतलानेकी कृपा करें, जो समस्त पापोंका नाश करनेवाला एवं दानोंमें परम पुण्यप्रद है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महामते! इस सम्बन्धमें प्राचीन कालमें विनताश्वने भगवान् वाराह एवं धरणीदेवीके जिस संवादको मुझे बताया था उसे आप सुनें। धरणीदेवीके पूछनेपर भगवान् वाराहने कहा कि 'भद्रे! कपिला गौके दान करनेसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा यह परम पवित्र है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सम्पूर्ण तेजोंका सार एकत्र कर यज्ञोंमें अग्निहोत्रकी सम्पन्नताके लिये कपिला गौकी रचना की थी। कपिला गौ पवित्रोंको

पवित्र करनेवाली, मङ्गलोंका मङ्गल तथा परम पूज्यमयी है। तप इसीका रूप है, व्रतोंमें यह उत्तम व्रत, दानोंमें उत्तम दान तथा निधियोंमें यह अक्षय निधि है। पृथ्वीमें गुप रूपसे या प्रकट रूपसे जितने पवित्र तीर्थ हैं एवं सम्पूर्ण लोकोंमें द्विजातियोंद्वारा सायंकाल और प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि हवनकी जो भी क्रियाएँ हैं, वे सभी कपिला गायके धृत, क्षीर तथा दहीसे होती हैं। भामिनि! कपिलाके सिर और ग्रीवामें सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर उसके गले एवं मस्तकके गिरे हुए जलको श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता है, वह पवित्र हो जाता है और उसी क्षण उसके पाप भस्म हो जाते हैं।

प्रातःकाल उठकर जिसने कपिला गौकी प्रदक्षिणा की, उसने मानो सम्पूर्ण पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर ली। वसुन्धरे! कपिला गौकी एक प्रदक्षिणा करनेपर भी दस जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। पवित्र ब्रतके आचरण करनेवाले पुरुषको कपिला गौके मूत्रसे स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानो गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका। भक्तिपूर्वक एक बार कपिलाके गोमूत्रसे स्नान करनेपर मनुष्यके जीवनभरके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। एक हजार गौके दानका फल एक कपिला गौके दानके समान है। गौओंकी यत्पूर्वक रक्षा करनी चाहिये। गौके दूध-दही, घृत, गोमूत्र, गोमय आदिको अपवित्र नहीं करना चाहिये। गौओंके शरीरको खुजलाना और उनकी सेवा करना परम श्रेष्ठ धर्म माना गया है। गौके भय एवं रोगकी स्थितिमें उसकी भलीभाँति सेवा करनी चाहिये। जो गौओंके चरनेके लिये हरी-भरी गोचरभूमिका दान करता है, वह दिव्य स्वर्गवासका फल प्राप्त करता है। साक्षात् ब्रह्माजीने कपिला गौके दस भेद बतलाये हैं। इस कपिला गौका जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको दान करता है, वह अप्सराओंसे अलंकृत दिव्य विमानपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्ग जाता है। सोनेके समान रंगवाली कपिला पहली श्रेणीकी है और गौर पिङ्गलवर्णवाली दूसरी श्रेणीकी। तीसरी लाल-पीले नेत्रवाली, चौथी अग्निके समान नेत्रवाली, पाँचवीं जुहूके समान वर्णवाली, छठी घीके समान पिङ्गलवर्णवाली, सातवीं उजली-पीली, आठवीं दुर्घटवर्णके समान पीली, नवीं पाटलवर्णवाली तथा दसवीं पीले पूँछवाली*। ये सभी कपिलाएँ संसार-सागरसे उद्धार कर देती हैं, इसमें संशय नहीं। जो शूद्र होकर कपिलाका

दान लेता है और उसका दूध पीता है, वह पतित होकर चण्डाल हो जाता है और अन्तमें नरकमें जाता है। इसलिये किसी ब्राह्मणेतरको कपिलाका दान नहीं लेना चाहिये। श्रोत्रिय, धनहीन, सदाचारी तथा अग्निहोत्री ब्राह्मणको एक कपिला गौका दान करनेसे दाता सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि दान देनेके लिये जल्दी ही प्रसव करनेवाली धेनुका पालन करे। जिस समय वह कपिला धेनु आधा प्रसव करनेकी स्थितिमें हो जाय, उसी समय उसे ब्राह्मणको दान कर देना चाहिये। जब उत्पन्न होनेवाले बछड़ेका मुख योनिके बाहर दीखने लगे और शेष अङ्ग अभी भीतर ही रहें अर्थात् अभी पूरे गर्भका उसने मोचन (बाहर) नहीं किया, तबतक वह धेनु सम्पूर्ण पृथ्वीके समान मानी जाती है। वसुन्धरे! ऐसी गायका दान करनेवाले पुरुष ब्रह्मवादियोंसे सुपूजित होकर ब्रह्मलोकमें उतने करोड़ वर्षोंतक निवास करते हैं, जितनी कि धेनु और बछड़ेके रोमोंकी संख्याएँ होती हैं। सोनेसे सोंग तथा चाँदीसे खुरको सम्पन्न करके कपिला गौका दान करते समय उस धेनुका पुच्छ ब्राह्मणके हाथपर रख दे। हाथपर जल लेकर शुद्ध वाणीमें ब्राह्मणसे संकल्प पढ़वावे। जो पुरुष इस प्रकार (उभयमुखी गौका) दान करता है, उसने मानो समुद्रसे घिरी तथा पर्वतों, वनों एवं रानोंसे परिपूर्ण समूची पृथ्वीका दान कर दिया—इसमें कोई संशय नहीं। ऐसा मनुष्य इस दानसे निश्चय ही पृथ्वीदानके तुल्य फलका भागी होता है। वह अपने पितरोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाता है। ब्राह्मणका धन छीननेवाला, गोघाती अथवा गर्भपात करनेवाला, दूसरोंको ठगनेवाला, वेदनिन्दक, नास्तिक, ब्राह्मणोंका

* कपिलाके भेदों एवं उनकी अपार महिमाका वर्णन महाभारतके वैष्णवधर्मपर्वमें हुआ है, जो आश्वमेधिकपर्वका अन्तिम भाग है। पाणिनि-व्याकरण (५। २। ९७)-के गणपाठके अनुसार कपि अर्थात् बन्दरके समान वर्णवाली गायको कपिला कहते हैं।

निन्दक और सत्कर्ममें दोषदृष्टि रखनेवाला महान् पापी समझा जाता है। किंतु ऐसा घोर पापी भी बहुतसे सुवर्णोंसे युक्त उभयमुखी कपिलाके दानसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। दाताको चाहिये कि उस दिन खीरका भोजन करे अथवा दूधके ही सहारे रहे।

जो इस प्रकार उभयमुखी कपिला गौका दान करता है, वह सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त कर लेता है। जो व्यक्ति प्रातःकाल उठकर समाहितचित्तसे तीन बार भक्तिपूर्वक इस कल्प—‘गोदान-विधान’ को पढ़ता है, उसके वर्षभरके

किये हुए पाप उसी क्षण इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वायुके झोंकेसे धूलके समूह। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर इस परम पावन प्रसङ्गका पाठ करता है, उस बुद्धिमान् पुरुषके अन्तरमें दिव्य संस्कार भर जाते हैं और पितर उसकी वस्तुओंको बड़े प्रेमसे ग्रहण करते हैं। जो अमावास्याको ब्राह्मणोंके सम्मुख इसका पाठ करता है, उसके पितर सौ वर्षके लिये तृप्त हो जाते हैं। जो पुरुष मन लगाकर निरन्तर इसका श्रवण करता है, उसके सौ वर्षोंके पाप नष्ट हो जाते हैं।

(अध्याय १६१)

महिषी एवं मेषी-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं पापनाशक, पुण्यप्रद तथा आयु और सुखप्रदायक महिषीके दानकी विधि बता रहा हूँ। सूर्य-चन्द्रग्रहण, कार्तिक-पूर्णिमा, अयनसंक्रान्ति, शुक्ल पक्षकी चतुर्दशी आदि पर्व-दिनोंमें अथवा जब भी सामर्थ्य हो, उसी समय सांसारिक दुःखकी निवृत्तिके लिये महिषी-दान करना चाहिये। शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अलंकृत महिषी उत्तम विद्वान् ब्राह्मणको देनी चाहिये। दान देनेके समय इस मन्त्रको पढ़ना चाहिये—

इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा।
महिषीदानमाहात्म्यात् सास्तु मे सर्वकामदा॥
धर्मराजस्य साहाय्ये यस्य पुत्रः प्रतिष्ठितः।
महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम॥

(उत्तरपर्व १६२। ९-१०)

‘जो इन्द्रादि लोकपालोंकी कल्याणकारिणी राजमहिषी है और धर्मराजकी सहायता करनेके लिये जिसका पुत्र (महिष) उनका वाहन बना हुआ है तथा जो महिषासुरकी जननी है, वह मेरे लिये वरदायिनी हो। इस महिषी-दानसे मेरी

सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जायँ।’

प्रदक्षिणाके पश्चात् पृष्ठभागसे महिषीका दान करना चाहिये। वस्त्र, आभूषण और दक्षिणाके साथ महिषी ब्राह्मणको देकर विसर्जन करना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति महिषीका दान करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें वाञ्छित फल प्राप्त करता है।

महाराज! इसी प्रकार मेषी-दान भी सभी पापोंको दूर करनेवाला है। एक सुवर्णमयी मेषीकी प्रतिमा बनाकर उसे उत्तम भूषण, रेशमी वस्त्र, चन्दन, पुष्पमाला आदिसे अलंकृतकर अथवा प्रत्यक्ष मेषीको अलंकृतकर उसका दान करना चाहिये। ग्रहण, विषुवयोग, अयनसंक्रान्ति आदि पवित्र दिनोंमें, दुःखप्र देखनेपर, अमावास्यामें अथवा जब भी श्रद्धा हो तब इसका दान करना चाहिये। दानके समय शिव-पार्वती, ब्रह्मा-गायत्री, लक्ष्मी-नारायण तथा रति-कामदेवकी पूजा करनी चाहिये, साथ ही लोकपालों और ग्रहोंकी भी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर हवन करना चाहिये। ब्राह्मणकी पूजा करनी चाहिये। पूजनके बाद

मेषीकी प्रतिमाको तिलके कलशापर स्थापित कर उसके सामने नमक रखकर विधिपूर्वक पूजन करे और गृहस्थ ब्राह्मणको उसका दान कर दे। इस दानके प्रभावसे निःसंतानको पुत्र और निर्धनको

धन प्राप्त हो जाता है। जो व्यक्ति इस दानकी विधिको सुनता है, वह भी अहोरात्रमें किये गये पापोंसे छूट जाता है।

(अध्याय १६२-१६३)

भूमिदानकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले भूमिदानकी विधि बतला रहा हूँ। जो अग्निहोत्री दरिद्र-कुटुम्बी तथा वैदिक ब्राह्मणको दक्षिणासहित भूमिका दान करता है, वह बहुत समयतक ऐश्वर्यका भोग कर अन्तमें दिव्य विमानमें बैठकर विष्णुलोकको जाता है। जबतक उसके द्वारा प्रदत्त भूमिपर अंकुर उपजते रहते हैं, तबतक भूमिदाता विष्णुलोकमें पूजित होता है। भूमिदानके अतिरिक्त और कोई भी दान विशिष्ट नहीं माना गया है। पुरुषर्षभ ! अन्य दान कालक्रमसे क्षीण हो जाते हैं, परंतु भूमिदानका पुण्य क्षीण नहीं होता। जो व्यक्ति सस्यसम्पन्न भूमिका दान करता है, वह जबतक भगवान् सूर्य रहेंगे, तबतक सूर्यलोकमें पूजित होता रहेगा। धन-धान्य, सुवर्ण, रत्न, आभूषण आदि सब दान करनेका फल भूमिदान करनेवाला प्राप्त कर लेता है। जिसने भूमिदान किया, उसने मानो समुद्र, नदी, पर्वत, सम-विषम स्थल, गन्ध, रस, क्षीरयुक्त ओषधि, पुष्प, फल, कमल, उत्पल आदि सब कुछ दान कर दिया। दक्षिणासे युक्त अग्निष्ठोम आदि यज्ञ करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य भूमिदान करनेसे प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर पुनः उससे वापस नहीं लेना चाहिये। सस्यसम्पन्न भूमिका दान करनेवाले व्यक्तिके पितर प्रलयपर्यन्त संतुष्ट रहते हैं। अपनी आजीविकाके निमित्त जो पाप पुरुषसे होता है,

वे सारे पाप गोचर्म-मात्र* भूमिके दान करनेसे दूर हो जाते हैं। एक हजार स्वर्णमुद्राके दानसे जो फल बतलाया गया है, वही फल गोचर्म-प्रमाणमें भूमिका दान देनेसे प्राप्त हो जाता है। नरोत्तम ! हजारों कपिला गौओंके दान करनेके समान पुण्य गोचर्म-मात्र भूमि देनेसे प्राप्त होता है। सगर आदि अनेक राजाओंने भूमिका उपयोग किया है, परंतु अपने-अपने आधिपत्यमें जिसने भी भूमिका दान किया, सभीको उसका फल प्राप्त हुआ। यमदूत, मृत्युदण्ड, असिपत्रवन, वरुणके घोर पाश और रौरवादि अनेक नरक तथा उनकी दारुण यातनाएँ भूमिदान करनेवालेके समीप नहीं आतीं। चित्रगुप्त, मृत्यु, काल, यम आदि सब भूमिदाताकी पूजा करते हैं। राजन् ! भगवान् रुद्र, प्रजापति, इन्द्रादि देवता और असुरगण भूमिका दान करनेवालेकी पूजा करते हैं, स्वयं मैं भी उसकी अतीव प्रसन्नतासे पूजा करता हूँ। जिस भाँति माता अपनी संतानका और गौ जैसे अपने वत्सका दूध आदिके द्वारा पालन करती है, उसी प्रकार रसमयी भूमि भी भूमि देनेवालेकी रक्षा और पालन-पोषण करती है। जिस प्रकार जलके सेचनसे बीज अंकुरित होते हैं, उसी प्रकार भूमिदानसे सब मनोरथ अंकुरित होकर सफल सिद्ध होते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होते ही उनके प्रकाशसे अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार भूमिके दानसे सभी प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं।

* मध्यमस्य मनुष्यस्य व्यासेन परिसंख्यया । त्रिंशद्वांश गोचर्म दत्त्वा स्वर्णे महीयते ॥ (उत्तरपर्व १६४ । २१)

भूमिको दान देकर वापस लेनेवालेको यमदूत वारुणपाशोंसे बाँधकर पूय तथा शोणितसे भरे कुण्डोंमें डालते हैं। अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरे व्यक्तिके द्वारा दी गयी भूमिका जो व्यक्ति अपहरण करता है, वह प्रलयपर्यन्त नरकाग्रिमें जलता रहता है। दानमें प्राप्त भूमिके हरण हो जानेपर दुःखित व्यक्तिके रोने-कलपनेसे जितने अश्रुबिन्दु गिरते हैं, उतने हजार वर्षतक भूमिका

हरण करनेवाला नरकमें कष्ट भोगता है। ब्राह्मणको भूमिदान देकर जो व्यक्ति पुनः उस भूमिका हरण करता है, उसे उल्टा लटका कर कुम्भीपाक नरकमें पकाया जाता है। दिव्य हजार वर्षके बाद वह व्यक्ति कुम्भीपाकसे निकलकर इस भूमिपर जन्म लेता है और सात जन्मतक अनेक प्रकारके कष्टोंको भोगता रहता है। इसलिये भूमिका हरण नहीं करना चाहिये। (अध्याय १६४)

सुवर्णरचित् भूदानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! भूमिका दान तो क्षत्रिय ही कर सकते हैं, क्योंकि क्षत्रिय ही भूमिका उपार्जन करनेमें, उसका दान करनेमें और उसके पालन करनेमें समर्थ होते हैं तथा लोगोंसे न तो भूमिका दान हो सकता है, न ही उसका पालन ही हो सकता है। अतः आप कोई ऐसा उपाय बताइये जो भूमिदानके समकक्ष हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! यदि भूमिका दान सम्भव न हो तो सुवर्णके द्वारा भूमण्डलकी आकृति बनाकर और नदी-पर्वतोंको रेखाङ्कित कर उसे ही दान कर देना चाहिये। इससे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त हो जाता है। अब मैं इसकी विधि बता रहा हूँ।

सूर्य-चन्द्र-ग्रहण, जन्मनक्षत्र, विषुवयोग, युगादि तिथियों तथा अयनसंक्रान्ति आदि पुण्य समयोंमें पापक्षय और यशकी प्राप्तिके लिये इस दानको करना चाहिये। अन्य भी प्रशस्त समयोंमें जब धन एकत्र हो जाय, इस दानको किया जा सकता है। एक सौ पलसे लेकर कम-से-कम पाँच पलतक अर्थात् अपनी सामर्थ्यके अनुसार सुवर्णकी जम्बूद्वीपके आकारमें पृथ्वीकी प्रतिमा बनानी चाहिये। जिसके मध्यमें मेरु पर्वत तथा यथास्थान अन्य पर्वत अङ्कित हों। वह पृथ्वी सस्यसम्पन्न तथा लोकपालोंसे

रक्षित, ब्रह्मा, शंकर आदि देवताओंसे सुशोभित और सभी रत्न आदि आभूषणोंसे अलंकृत हो। बाईस हाथ लम्बा-चौड़ा तोरणयुक्त चार द्वारोंवाला एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसमें चार हाथकी वेदी बनानी चाहिये। ईशानकोणमें वेदीपर देवताओंका स्थापन करे और अग्निकोणमें कुण्ड बनाये। पताका-तोरण आदिसे मण्डपको सजा ले। अनन्तर पञ्चलोकपाल और नवग्रहोंका षोडशोपचार पूजन करनेके बाद ब्राह्मणोंसे हवन कराना चाहिये। ब्राह्मणवर्ग वेदध्वनि करते हुए तथा मङ्गलघोषपूर्वक भेरी, शङ्ख इत्यादि वाद्योंकी ध्वनिके साथ उस सुवर्णमयी पृथ्वीकी प्रतिमाको मण्डपमें लाकर तिल बिछी हुई वेदीपर स्थापित करे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नों, लवणादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये। उसे रेशमी चँदोवा, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनद्वारा अलंकृत करना चाहिये। इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सारा कार्य सम्पन्न कर स्वयं श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला धारणकर, श्वेत वर्णके आभूषणोंसे विभूषित हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः ।
धात्री त्वमसि भूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥
वसु धारयसे यस्मात् सर्वसौख्यप्रदायकम् ।
वसुन्धरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम् ॥
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद्यस्मादन्तं तवाचले ।
अनन्तायै नमस्तुभ्यं पाहि संसारकर्दमात् ॥
त्वमेव लक्ष्मीगांविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता ।
गायत्री ब्रह्मणः पाश्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता ।
विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात् ततो विश्वम्भरा मता ॥
धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही ।
एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात् ॥

(उत्तरपर्व १६५ । २१—२६)

‘वसुन्धरे ! चूँकि तुम्हीं सभी देवताओं और सम्पूर्ण जीवनिकायकी भवनभूता तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो । तुम्हें नमस्कार है । चूँकि तुम सभी प्रकारके सुखप्रदाता वसुओंको धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा नाम वसुन्धरा है, तुम संसार-भयसे मेरी रक्षा करो । अचले ! चूँकि ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये

तुम अनन्ता हो, तुम्हें प्रणाम है । तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो । तुम्हीं विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, चन्द्रमामें ज्योत्स्ना, रविमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्धि और मुनियोंमें मेधारूपमें स्थित हो । चूँकि तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विश्वम्भरा कही जाती हो । धृति, क्षिति, क्षमा, क्षोणी, पृथिवी, वसुधा तथा मही—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं । देवि ! तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो ।’

इस प्रकार उच्चारणकर पृथ्वीकी मूर्ति ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे । उस पृथ्वीका आधा अथवा चौथाई भाग गुरुको समर्पित करे । जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्याणमयी पृथ्वीकी सुवर्णमूर्तिका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैष्णव पदको प्राप्त होता है तथा क्षुद्र घंटिकाओं (घुँघरू)–से सुशोभित एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और पुण्य क्षीण होनेपर इस संसारमें आकर वह धार्मिक चक्रवर्ती राजा होता है ।

(अध्याय १६५)

हलपंक्तिदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सर्वपापनाशक तथा सर्वसौख्यप्रद हलपंक्ति-दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिससे सभी प्रकारके दानोंका फल प्राप्त हो जाता है । एक हलके लिये चार बैलोंकी आवश्यकता होती है और दस हलोंकी एक पंक्ति होती है । साखूकी लकड़ीसे दस हल बनवाकर उन्हें सुवर्ण-पट्ट और रत्नोंसे मढ़कर अलंकृत कर ले । वस्त्र, स्वर्ण, पुष्प तथा चन्दन आदिसे मणिडत तरुण, सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, उत्तम वृष उन हलोंमें जोतने चाहिये । बैलोंके कन्धोंपर जुआ भी रखे, साथमें

कील लगा हुआ अंकुश आदि उपकरण भी रहने चाहिये । पर्वकालमें हलपंक्तिके साथ सस्यसम्पत्ति बड़ा ग्राम, छोटा ग्राम अथवा सौ निवर्तन (सौ बीघा) अथवा पचास निवर्तन भूमि देनी चाहिये । इसका दान विशेषरूपसे कार्तिकी, वैशाखी, अयनसंक्रान्ति, जन्मनक्षत्र, ग्रहण, विषुवयोगमें करे । वेदवेत्ता, सदाचारी, सम्पूर्णाङ्ग अलंकृत दस ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे । दस हाथ प्रमाणवाला एक मण्डप बनाकर उसमें पूर्व दिशामें एक हाथ प्रमाणवाले दो अथवा एक कुण्ड बनवाये । निमन्त्रित ब्राह्मणोंसे पलाशकी समिधा, घी, काला

तिल और खीरसे व्याहतियों, पर्जन्यसूक्त, आदित्यसूक्त और रुद्रमन्त्रोंसे हवन कराये। तदनन्तर यजमान स्नानकर शुक्ल वस्त्र आदिसे अलंकृत हो सप्तधान्यके ऊपर हलपंक्तिको स्थापित करे और उसमें बैलोंको जोते। उस समय विविध प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंको बजाना चाहिये और ब्राह्मणवर्ग वेद-पाठ करें। यजमान दानके समय पुष्पाङ्गलि ग्रहण कर इन मन्त्रोंको पढ़े—

यस्माद् देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा ।
वृषस्कन्धे संनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेऽस्तु मे ॥
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्थमें चास्तु दृढा सदा ॥

(उत्तरपर्व १६६ । १६-१७)

‘चौंकि बैलके कन्धोपर स्थित हलमें सभी देवगण सदा स्थित रहते हैं, अतः भगवान् शंकरमें मेरी भक्ति हो। अन्य समस्त दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाके भी तुल्य नहीं हैं, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।’ इसके बाद भूमि और हल उन ब्राह्मणोंको

दे दे। इस प्रकार जो व्यक्ति हलपंक्तिका दान करता है, वह अपने इकीस कुलोंसहित स्वर्ग जाता है। सात जन्मतक उस व्यक्तिको निर्धनता, दुर्भाग्य, व्याधि आदि दुःख नहीं भोगने पड़ते और वह पृथ्वीका अधिपति होता है। युधिष्ठिर! दान करते समय जो भक्तिपूर्वक इस दानकर्मका दर्शन करता है, वह भी जन्मभर किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है। इस दानको महाराज दिलीप, ययाति, शिबि, निमि तथा भरत आदि सभी श्रेष्ठ राजर्षियोंने किया, जिसके प्रभावसे वे राजा आज भी स्वर्गका सुख भोग रहे हैं। इसलिये भक्तिपूर्वक सभी स्त्री-पुरुषोंको यह दान करना चाहिये। यदि दस हलपंक्तिका दान करनेमें समर्थ न हो तो पाँच, चार अथवा एक ही हलका दान करे। हलपंक्तिका दान करनेवाले हलसे जितनी मिट्टी उठती है और बैलोंके शरीरमें जितने भी रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्षतक शिवलोकमें निवासकर अन्तमें पृथ्वीपर श्रेष्ठ राजा होते हैं। (अध्याय १६६)

आपाकदानके प्रसंगमें राजा हव्यवाहनकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! कृपाकर आप ऐसा कोई दान बतायें, जिससे मनुष्य धन, पुत्र और सौभाग्यसे सम्पन्न हो सके।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं इस सम्बन्धमें एक इतिहास कह रहा हूँ आप श्रद्धापूर्वक सुनिये। किसी समय चन्द्रवंशमें हव्यवाहन नामक एक राजा हुआ था। उसके राज्यमें न कोई उपद्रव होता था और न कोई उसका शत्रु ही था। सभी नीरोग रहते थे। वह बड़ा प्रतापी, स्वस्थ, बली और शत्रुओंपर विजय प्राप्त करनेवाला था। परंतु पूर्वजन्मके अशुभ कर्मके प्रभावसे उसके पास कोई ऐसा मन्त्री नहीं था जो राज्यको सुचारुरूपसे चला सके तथा उसे कोई पुत्र, मित्र या सहायक

बन्धु-बान्धव भी न था। उसे कभी समयसे भोजन आदि भी नहीं मिल पाता था। इस कारण वह राजा सदा चिन्तित रहता था।

एक बार उसके यहाँ पिप्लादमुनि पधारे। राजाकी पटरानी शुभावतीने मुनिकी श्रद्धापूर्वक पाद्य, अर्घ्य आदिसे पूजा की और आसनपर उन्हें बैठाकर निवेदन किया—‘मुनीश्वर! यह निष्कण्टक राज्य तो हमें मिला है, परंतु मन्त्री, मित्र, पुत्र आदि हमें क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसका कारण बतानेकी कृपा करें।’ राजीका वचन सुनकर पिप्लादमुनिने कहा—‘देवि! पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंके फल ही अगले जन्ममें प्राप्त होते हैं, यह कर्मभूमि है, अतः तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जिस

पदार्थका पूर्वजन्ममें मनुष्यने सम्पादन नहीं किया है, उसे शत्रु, मित्र, बान्धव, राजा आदि कोई भी नहीं दे सकते। पूर्वजन्ममें तुमने राज्यका दान किया था, वह तुम्हें प्राप्त हो गया, परंतु तुमलोगोंने मित्र, भृत्य आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं रखा, अतः इस जन्ममें ये सब कैसे प्राप्त होंगे ?'

इसपर रानी शुभावती बोली—महाराज ! पूर्वजन्ममें जो हुआ वह तो बीत गया, अब इस समय आप ऐसा कोई व्रत, दान, उपवास, मन्त्र अथवा सिद्धयोग बतानेकी कृपा करें, जिससे मुझे पुत्र, धन, मित्र, भृत्य इत्यादि प्राप्त हो सकें। रानीका वचन सुनकर पिप्लादमुनि बोले—‘भद्रे ! एक आपाक नामका महादान है, जो सभी सम्पत्तियोंका प्रदायक है। श्रद्धापूर्वक कोई भी आपाकका दान करता है तो उसे महान् लाभ होता है। इसलिये तुम श्रद्धासे आपाकदान करो।’ मुनिके कथनानुसार रानी शुभावतीने आपाकदान किया। फलतः उसे पुत्र, मित्र, धन और भृत्य प्राप्त हो गये।

भगवान् श्रीकृष्णने पुनः कहा—महाराज ! अब मैं उस आपाकदानकी विधि बता रहा हूँ, आप श्रद्धापूर्वक सुनें। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि ग्रह और ताराबलका विचार कर शुभ मुहूर्तमें अगर, चन्दन, धूप, पुष्प, वस्त्र, आभूषण तथा नैवेद्य आदिसे भार्गव (कुम्हार)–का ऐसा सम्मान करे, जिससे वह संतुष्ट हो और उससे निवेदन करे कि महाभाग ! आप विश्वकर्मास्वरूप हैं। आप मेरे लिये सुन्दर छोटे-बड़े मिट्टीके घड़े, स्थाली, कसोरे, कलश आदि पात्रोंका निर्माण करें। भार्गव भी उन पात्रोंको बनाये। तदनन्तर विधिपूर्वक एक आँवाँ—भट्टी लगाये। अनन्तर उन एक हजार मिट्टीके पात्रोंको आँवेंमें स्थापित कर सायंकालके समय उसमें अग्नि प्रज्वलित करे

और रात्रिको जागरणकर वाद्य, गीत, नृत्य आदिकी व्यवस्था कर उत्सव मनाये। सुप्रभात होते ही यजमान आँवेंकी अग्निको शान्तकर पात्रोंको बाहर निकाल ले। अनन्तर स्नानकर श्वेत वस्त्र पहनकर उनमेंसे सोलह पात्रोंको सामने स्थापित करे। रक्त वस्त्रसे उन्हें आच्छादितकर पुष्पमालाओंसे उनका अर्चन करे और ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन आदि कराकर भार्गवका भी पूजन करे। ये पात्र माणिक्य, सोने, चाँदी अथवा मिट्टीतकके हो सकते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियोंकी पूजा कर भाण्डोंकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये और इन मन्त्रोंको पढ़ते हुए उन पात्रोंका दान करना चाहिये—

आपाक ब्रह्मरूपोऽसि भाण्डानीमानि जन्तवः ।
प्रदानात् ते प्रजापुष्टिः स्वर्गश्चास्तु ममाक्षयः ॥
भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल ।
भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपतिष्ठन्तु तानि मे ॥

(उत्तरपर्व १६७। ३२-३३)

‘आपाक (आँवाँ) ! आप ब्रह्मरूप हैं और ये सभी भाण्ड प्राणीरूप हैं। आपके दान करनेसे मुझे प्रजाओंसे पुष्टि प्राप्त हो, अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो। मैंने जितने पात्र निर्माण कराये हैं, ये सभी सत्पात्रके रूपमें मेरे समक्ष प्रस्तुत रहें।’

जिसकी इच्छा जिस पात्रको लेनेकी हो उसे वह स्वयं ही ले ले, रोके नहीं। इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री इस आपाकदानको करते हैं, उससे तीन जन्मतक विश्वकर्मा संतुष्ट रहते हैं और पुत्र, मित्र, भृत्य, घर आदि सभी पदार्थ मिल जाते हैं। जो स्त्री इस दानको भक्तिपूर्वक करती है, वह सौभाग्यशाली पतिके साथ पुत्र-पौत्रादि सभी पदार्थोंको प्राप्त कर लेती है और अन्तमें अपने पतिसहित स्वर्गको जाती है। नरेश्वर ! यह आपाकदान भूमिदानके समान ही है।

(अध्याय १६७)

गृहदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आप सभी शास्त्रोंके मर्मज हैं, अतः आप गृहदानकी विधि और महिमा बतलानेकी कृपा करें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज!
 गार्हस्थ्यधर्मसे बढ़कर कोई धर्म नहीं और असत्यसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं और गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। धन, धान्य, स्त्री, पुत्र, हाथी, घोड़ा, गौ, भृत्य आदिसे परिपूर्ण घर स्वर्गसे भी अधिक सुख देनेवाला है। जिस प्रकार सभी प्राणी माताके आश्रयसे जीवित रहते हैं, उसी प्रकार सभी आश्रम भी गृहस्थ-आश्रमपर ही आधृत हैं। अपने घर रात्रिको पैर फैलाकर सोनेमें जो सुख है, वह सुख स्वर्गमें भी नहीं। अपने घरमें शाकका भोजन करना भी उत्तम सुख है, इसलिये महाराज! सुन्दर घर बनवाकर ब्राह्मणको देना चाहिये। जो व्यक्ति शैव, वैष्णव, योगी, दीन, अनाथ, अध्यागत आदिके लिये गृह, धर्मशाला बनाता है, उस व्यक्तिको सभी व्रत और सभी प्रकारके दान करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पक्के ईंटसे सुदृढ़, ऊँचा, शुभ्रवर्ण, जाली, झरोखा, स्तम्भ, कपाट आदिसे युक्त, जलाशय और पुष्प-वाटिकासे भूषित, उत्तम आँगनसे सुशोभित सुन्दर घर बनाना चाहिये। गृह कछुएकी पीठके समान ऊँचा एवं बरामदोंसे सुसज्जित होना चाहिये। उसे कई मंजिलों तथा गलियों आदिसे समन्वित होना चाहिये। लोहा, सोना, चाँदी, ताँबा, लकड़ी, मृत्तिका आदिके पात्र, वस्त्र, चर्म, वल्कल, तृण, पाषाण-पात्र, रत, आभूषण, गाय, भैंस, घोड़ा, बैल, सभी प्रकारके धान्य, घी, तेल, गुड़, तिल, चावल, ईख, मूँग, गेहूँ, सरसों, मटर, अरहर, चना, उड़द, नमक, खजूर, द्राक्षा, जीरा, धनिया, चूल्हा, चक्की, छलनी,

ऊखल, मूसल, सूप, हाँड़ी, मथानी, झाडू तथा जलकुम्भ आदि ये सब गृहस्थके उपकरण हैं, इनको घरमें स्थापित करनेके बाद शुभ मुहूर्तमें कुलीन एवं शीलसम्पन्न, वेदशास्त्रके जाननेवाले, गृहस्थधर्मका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय सपत्नीक ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्र, गन्ध, आभूषण, पुष्पमाला आदिसे उनका पूजन कर शान्तिकर्मके लिये उनको नियुक्त करना चाहिये। घरके आँगनमें एक मेखलासहित कुण्डका निर्माण करवाना चाहिये। ब्राह्मणोंद्वारा तुष्टि-पुष्टि प्रदान करनेवाला ग्रहयाग करे। ब्राह्मण रक्षोन्नसूक्त पढ़नेके बाद वास्तु-पूजा कर सभी दिशाओंमें भूतबलि दे। इसके बाद यजमान पुण्य पवित्र घोषके साथ ब्राह्मणोंको दानके निमित्त बनाये गये उन घरोंमें प्रवेश कराये और वहाँ शव्याओंपर उन सपत्नीक ब्राह्मणोंको बिठलाये। जिस घरको पूर्वमें ही जिस ब्राह्मणके लिये नियत किया गया है उसे 'इदं गृहं गृहाण' 'इस गृहको ग्रहण करें' ऐसा कहकर प्रदान करे। ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहें और 'कोऽदात्०' (यजु० ७। ४८) इस मन्त्रका पाठ करें। यदि सामर्थ्य हो तो एक-एक घर ब्राह्मणोंको दे अथवा एक ही घर बनवाकर एक सत्पात्र ब्राह्मणको देना चाहिये। राजन्! शीत, वायु और धूपसे रक्षा करनेवाली तृणमयी कुटी ब्राह्मणोंको देनेपर भी जब सभी कामनाओंकी पूर्ति हो जाती है और स्वर्ग प्राप्त होता है तो फिर उत्तम घर दान देनेके फलका वर्णन कहाँतक किया जा सकता है! गाय, भूमि, सुवर्ण आदिके दान और अनेक प्रकारके यम-नियमोंका पालन गृहदानके सोलहवें भागकी भी बराबरी नहीं कर सकते। जो व्यक्ति सभी सामग्रियोंसहित सुदृढ़ और सुन्दर घर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त करता है। (अध्याय १६८)

अन्नदानकी महिमा के प्रसंगमें राजा श्वेत और एक वैश्यकी कथा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! किसी समय मुनियोंने अन्नदानका जो माहात्म्य कहा था, उसे मैं कह रहा हूँ, आप एकाग्रचित्त होकर सुनें। अनघ ! आप अन्नदान करें, जिससे तत्काल संतुष्टि प्राप्त होती है। वनमें श्रीरामचन्द्रजीने दुःखी होकर लक्ष्मणसे कहा था—‘लक्ष्मण ! सम्पूर्ण पृथ्वी अन्नसे परिपूर्ण है, फिर भी हमलोगोंको अन्न नहीं मिल रहा है, इससे यही जान पड़ता है कि हमलोगोंने पूर्वजन्मोंमें ब्राह्मणोंको कभी अन्नका भोजन नहीं कराया*।’ मनुष्य जिस कर्मरूपी बीजको बोता है, जैसा कर्म करता है, वह उसीका फल पाता है। संसारमें यह ठीक ही कहा जाता है कि बिना दिये कुछ नहीं मिलता। भोजनयोग्य जिस अन्नका दान किया जाता है, वह अन्नदान परम श्रेयस्कर है। भारत ! भोज्य पदार्थोंमें बहुतसे पदार्थ हैं, किंतु अन्नका दान सब दानोंसे श्रेष्ठ दान है। सत्यसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं, संतोषसे बड़ा कोई सुख नहीं और अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। स्थान, अनुलेपन और वस्त्रालंकारोंसे मनुष्योंको वैसी तृप्ति नहीं होती, जैसी भोजनसे होती है। इस विषयमें एक इतिहास है—

राजन् ! बहुत पहले एक श्वेत नामके चक्रवर्ती राजा हुए हैं, उन्होंने अनेक यज्ञ किये और अनेक युद्धोंमें विजय प्राप्त की। अनेक प्रकारका दान दिये और धर्मपूर्वक राज्यपर शासन किया। राजाने अनेक प्रकारके उत्तम भोग भोगकर अन्तमें राज्यका परित्याग कर वनमें जाकर तपस्या की। अन्तमें वे दिव्य विमानमें आरूढ होकर स्वर्ग गये। वहाँ विद्याधर, किंनर आदिके साथ विहार करने लगे। अप्सराएँ उनकी सेवामें रहती थीं। गन्धर्व

उन्हें गीत सुनाकर रिझाते, इन्द्र भी उनका बड़ा सम्मान करते थे। राजाको दिव्य वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला आदि पहननेको तो मिलता था, परंतु भोजनके समय विमानमें बैठकर भूलोकमें आकर अपने पूर्वशरीरके मांसको प्रतिदिन खाना पड़ता था। प्रतिदिन मांसका भोजन करनेके बाद भी पूर्वजन्मके कर्मके कारण उस पूर्वशरीरका मांस घटता नहीं था। इस प्रकार प्रतिदिन मांस-भक्षणसे व्याकुल होकर राजाने ब्रह्माजीसे कहा—‘ब्रह्मन् ! आपके अनुग्रहसे मुझे स्वर्गका सुख प्राप्त हुआ है, सभी देवता मेरा आदर करते हैं। सभी सामग्री उपभोगके लिये प्राप्त होती रहती है, परंतु सभी भोगोंके रहते हुए भी यह पापिनी क्षुधा कभी शान्त नहीं होती, मुझे सदा सताती रहती है। इसी कारण मुझे अपने पूर्वशरीरके मांसको प्रतिदिन खानेके लिये भूलोकमें जाना पड़ता है और इसमें मुझे बड़ी धृणा होती है। मैंने कौन-सा ऐसा पाप किया है, जिससे मुझे उत्तम भोजन नहीं मिलता। आप कृपाकर ऐसा कोई उपाय बतायें, जिससे मेरा यह दुःख दूर हो जाय।’

ब्रह्माजी बोले—राजन् ! आपने अनेक प्रकारके दान दिये हैं, बहुत-से यज्ञ किये हैं और गुरुजनोंको भी संतुष्ट किया है, परंतु ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन नहीं कराया। अन्नदान न करनेसे ही आज आपकी यह दशा हो रही है। अन्नसे बढ़कर कोई संजीवनी नहीं। अन्नको ही अमृत जानना चाहिये। इसलिये अब आप पृथ्वीपर जाकर वेदशास्त्र जाननेवाले कुलीन ब्राह्मणोंको भोजन करायें। उससे आपका यह दुःख दूर हो जायगा।

* पृथिव्यामन्नपूर्णायां वयमनस्य काङ्क्षिणः। सौमित्रे नूनमस्माभिर्भ्राह्मणमुखे हुतम्॥ (उत्तरपर्व १६९।४)

ब्रह्माजीका वचन सुनकर राजा श्वेतने पृथ्वीपर आकर महर्षि अगस्त्यजीको परमभक्तिसे भोजन कराया और अपने गलेकी दिव्य एकावली (माला*)—को दक्षिणाके रूपमें समर्पित किया। अगस्त्यजीको भोजन कराते ही राजा श्वेत संतुष्ट हो गये और सभी देवता वहाँ आकर अतीव आदरपूर्वक राजाको विमानमें बैठाकर स्वर्गलोक चले गये। श्रीरामचन्द्रजीने जब रावणका वध कर दिया, तब वह एकावली अगस्त्यजीने श्रीरामचन्द्रजीको दे दी। यह अन्नदानका ही माहात्म्य है।

मेरा वचन सत्य है कि प्राणियोंके लिये अन्नसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं है। अन्न जीवोंका प्राण है। अन्न ही तेज, बल और सुख है। इसलिये अन्नदाता प्राणदाता है। भूखा व्यक्ति जिस दूसरे व्यक्तिके घर आशा करके जाता है और वहाँसे संतुष्ट होकर आता है तो भोजन देनेवाला व्यक्ति धन्य हो जाता है, उसके समान पुण्यकर्मा और कौन होगा? दीक्षा-प्राप्त स्नातक, कपिला गौ, याज्ञिक, राजा, भिक्षु तथा महोदधि—ये सब दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। इसलिये घरपर आये भूखे व्यक्तिको जो भोजन न दे सके उसका गृहस्थाश्रम व्यर्थ है। अन्नके बिना कोई अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। मनुष्योंका दुष्कृत अर्थात् किया हुआ दूषित कर्म अन्नमें प्रविष्ट हो जाता है, इसलिये जो ऐसे व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अन्न देनेवालेके दुष्कृतका ही भक्षण करता है। इसके विपरीत अमृतमय पवित्र परान्नका भोजन करनेवाले व्यक्तिका एक महीनेका किया हुआ पुण्य अन्नदाताको प्राप्त हो जाता है। जिस अन्नके दानका इतना महत्त्व है, उसका दान क्यों नहीं करते? (अर्थात् थोड़ा-बहुत अवश्य करो, करना चाहिये।) जो व्यक्ति ब्राह्मण, अतिथि आदिको भोजन आदि कराने तथा

भिक्षा देनेके पूर्व ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह केवल पाप ही भक्षण करता है। जिस व्यक्तिने दस हजार या एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया है, उसने मानो ब्रह्मलोकमें अपना स्थान बना लिया।

प्राचीन कालमें वाराणसीमें देवता और ब्राह्मणोंका पूजक धनेश्वर नामका एक वैश्य रहता था। उसकी दूकानमें एक स्थानपर एक सर्पिणीने अण्डा दिया और वह उस अण्डेको छोड़कर कहीं अन्यत्र चली गयी। वैश्यने अण्डेको देखा और उसपर दयाकर उसकी रक्षा करने लगा। कुछ समय बाद अण्डेको फोड़कर कृष्ण सर्पका बच्चा बाहर निकला। उस सर्पके बच्चेको वैश्य प्रतिदिन दूध पिलाता था। वह सर्प भी वैश्यके पैरोंपर लोटता, उसके अङ्गोंको चाटता और पूरे घरमें निर्भय हो घूमता रहता। वैश्य भी भलीभाँति सर्पकी रक्षा करता। थोड़े ही समयमें वह भयंकर सर्प हो गया। किसी समयकी बात है, वह धनेश्वर गङ्गा-स्नान करनेके लिये गया था और उसका पुत्र दूकानपर बैठकर सामान बेच रहा था। उसी समय वह सर्प उस लड़केके पैरोंके बीचसे निकला, जिससे वह लड़का डर गया और उसने सर्पको डंडेसे मारा। चोट लगते ही सर्प उछलकर वैश्यपुत्रके सिरपर बैठ गया और क्रोधित होकर कहने लगा—‘मूर्ख! मैं तुम्हारे पिताकी शरणमें हूँ और तुम्हारे पिताने ही मेरा पालन-पोषण किया है, इसलिये मैं तुम्हारा भी भला ही चाहता था, परंतु तुमने मुझे अकारण ही प्रताड़ित किया है, इसलिये अब मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूँगा।’ सर्पके इस प्रकार कहनेके साथ ही वैश्यके घरमें दुःखी हो सब रोने लगे।

उसी समय अच्युत, गोविन्द, अनन्त आदि भगवान्‌के पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ स्नानकर वह धनेश्वर भी घर आ गया। पुत्रकी

* महाराज श्वेतकी कथा कई स्थानोंपर है, किंतु वाल्मीकीय रामायण उत्तरकाण्डके ७७ तथा ७८ सर्गोंमें बड़ी रम्य शैली और मधुर पदावलियोंमें वर्णित हुई है। वहाँ एकावली मालाकी जगह केयूर आदि दिव्य आभूषणकी बात निर्दिष्ट है।

वैसी स्थिति देखकर उसने सर्पसे कहा—‘पत्रग ! तुम मेरे पुत्रके मस्तकपर फण फैलाये क्यों बैठे हो ? यह ठीक ही कहा गया है कि मूर्ख मित्र और हीन जातिमें उत्पन्न प्राणीके साथ सम्बन्ध करना अपने हाथसे जलता हुआ अंगारा उठाना है१ ।’ वणिक्की बात सुनकर साँपने कहा—‘धनेश्वर ! तुम्हारे पुत्रने मुझे निरपराध ही मारा है, इसलिये तुम्हारे सामने ही मैं इसका प्राण ले रहा हूँ, जिससे अन्य कोई भी व्यक्ति ऐसा काम न करे।’ यह सुनकर धनेश्वरने कहा—‘सर्प ! जो उपकार, भक्ति तथा स्नेह आदिको भूलकर अपने रास्तेसे भटक जाय अर्थात् अपने कर्तव्यमार्गको छोड़ दे, उसे कौन रोक सकता है, परंतु क्षणमात्र तुम इस बालकको छोड़ दो, दंश न करो, जिससे मैं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर अपना और्ध्वदैहिक कर्म अपने हाथसे कर सकूँ, क्योंकि बादमें मेरे पास कोई पुत्र नहीं रहेगा।’ सर्पने इस बातको स्वीकार कर लिया।

तदनन्तर वैश्यने वेदवेत्ता और जितेन्द्रिय एक हजार ब्राह्मणों तथा संन्यासियों आदिको घी, पायससहित मधुर स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजनसे संतुष्ट हो ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—

वणिक्पुत्र चिरं जीव नश्यन्तु तव शत्रवः ।

अभीष्टफलसंसिद्धरस्तु ते ब्राह्मणाज्ञया ॥

(उत्तरपर्व १६९ । ६३)

‘वणिक्पुत्र ! ब्राह्मणोंकी आज्ञासे तुम चिरंजीवी होओ, तुम्हारे सभी शत्रु नष्ट हो जायें और तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय।’

ऐसा कहकर ब्राह्मणोंने अक्षत और पुष्प वैश्यपुत्रके

मस्तकपर छोड़े। ब्राह्मणोंके वाग्वज्रसे ताड़ित होकर वह सर्प मस्तकसे गिरा और मर गया। सर्पको मरा हुआ देखकर धनेश्वरको बड़ा दुःख हुआ और वह सोचने लगा कि मैंने इस सर्पको पुत्रकी भाँति पाला था और आज यह मेरे ही दोषसे मर गया। यह बड़ा ही अनुचित हुआ। उपकार करनेवालेमें जो साधुता रखता है, उसकी साधुतामें कौन-सी विशेषता रहती है ? अर्थात् वह प्रशंसाके योग्य नहीं है, किंतु जो अपकारियोंमें साधुता रखता है, उसकी साधुता ही सराहनीय है२।

इस प्रकार अनेक प्रकारसे पश्चात्ताप करते हुए दुःखी होकर वैश्यने न तो उस दिन भोजन किया, न ही रात्रिमें सो सका। प्रातःकाल होते ही गङ्गामें स्नान कर देवता-पितरोंका पूजन-तर्पण आदि कर घर आया और पुनः एक हजार ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके उत्तम व्यञ्जनोंका भोजन कराकर संतुष्ट किया। इसपर ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर कहा—‘धनेश्वर ! हमलोग तुमसे बहुत ही संतुष्ट हैं, इसलिये तुम वर माँगो। यह सुनकर उसने वर माँगा कि ‘यह मृत सर्प पुनः जीवित हो जाय।’ वैश्यके यह कहनेपर ब्राह्मणोंने अभिमन्त्रित जल सर्पके ऊपर छिड़का। जलके छीटे पड़ते ही वह सर्प जीवित हो गया। यह देखकर धनेश्वर बड़ा ही प्रसन्न हुआ और नगरके लोग धनेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।’

महाराज ! यह सहस्र-ब्राह्मण-भोजन (अन्नदान)-का संक्षेपसे मैंने माहात्म्य वर्णन किया। जो व्यक्ति ब्राह्मणोंको और अभ्यागतोंको अन्न देता है, वह बहुत दिनतक संसार-सुखको भोगकर विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। (अध्याय १६९)

१-मूर्ख मित्र सम्बन्ध हीनजातिजनो हि यः । यः करोत्यबुधोऽङ्गारान् स स्वहस्तेन कर्षति ॥ (उत्तरपर्व १६९ । ५६)

२-उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः । अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्विष्ट्वते ॥ (उत्तरपर्व १६९ । ६७)

स्थालीदानकी महिमामें द्रौपदीके पूर्वजन्मकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! आपके द्वारा अन्रदानके माहात्म्यको सुनकर मुझे भी एक बात स्मरण आ रही है। जिसे मैंने अपनी आँखोंसे देखा है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ। जिस समय दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदिने द्यूतक्रीडामें छलसे हमारे राज्यको छीन लिया और हमलोग द्रौपदीके साथ वल्कल वस्त्र तथा मृगचर्म धारण कर वनको जा रहे थे, उस समय नगरके लोग और सदाचारी ब्राह्मण स्नेहसे हमारे साथ चलने लगे। उन्हें देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ और मैं यह सोचने लगा कि जो व्यक्ति ब्राह्मण, मित्र, भूत्य आदिका पोषण करता है, उसीका जीवन सफल है। अपना पेट तो मनुष्य, जीव, जन्तु, पशु, पक्षी सभी भर लेते हैं। अभ्यागत सुहृद्वर्ग और कुटुम्बको छोड़कर जो व्यक्ति केवल अपना ही पेट भरता है, वह जीवित होते हुए भी मरे हुएके समान है। यही सोचकर मैंने उन ब्राह्मणोंसे कहा कि आपलोग त्रिकालज्ञ और ज्ञान-विज्ञानमें पारंगत हैं और मेरे स्नेहके वशीभूत होकर ही आये हैं। अब कोई ऐसा उपाय बतानेकी कृपा कीजिये जिससे कि भाई, बन्धु, मित्र, भूत्यसहित आपलोगोंके लिये भी भोजन आदिका प्रबन्ध हो सके, क्योंकि इस निर्जन वनमें हमें बारह वर्ष बिताना है। मेरे इस प्रकारके वचनको सुनकर मैत्रेयमुनिने मुझसे कहा कि कौन्तेय! एक प्राचीन वृत्तान्त मैंने दिव्य दृष्टिसे देखा है, जिसे मैं कह रहा हूँ आप ध्यानसे सुनें।

किसी समय एक तपोवनमें कोई दुर्भगा, दरिद्रा, ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी निवास कर रही थी। वह इस दशामें भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंका पूजन

किया करती। उसकी शम-दमसे परिपूर्ण श्रद्धाको देखकर एक दिन ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उससे कहा—‘सुब्रते! हमलोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम कोई वर माँगो।’ तब ब्राह्मणीने कहा—‘महाराज! किसी व्रत अथवा दानकी ऐसी विधि बतानेकी कृपा कीजिये, जिसके करनेसे मैं पतिकी प्रिय, पुत्रवती, सौभाग्यवती, धनाढ्य तथा लोकमें प्रशंसाके योग्य हो जाऊँ।’

ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर वसिष्ठजीने कहा कि बाह्यणि! मैं तुम्हें सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले स्थालीदानकी विधि बता रहा हूँ। पाँच सौ पल, दो सौ पचास पल अथवा एक सौ पचीस पल ताँबेका पात्र बनाये या सामर्थ्य न हो तो मिट्टीकी उत्तम हाँड़ी बना ले। वह गहरी और सुदृढ़ हो। उसे मूँग तथा चावलसे बने पदार्थसे भरकर चन्दनसे चर्चित कर एक मण्डलके मध्यमें स्थापित कर ले तथा उसके समीप सब प्रकार शाक, जलपात्र, घीका पात्र रखे और पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र आदिसे उसका पूजन करे और इस प्रकार उस पात्रकी प्रार्थना करे—

ज्वलज्वलनपार्श्वस्थैस्तण्डुलैः सजलैरपि ।
न भवेद्दोज्यसंसिद्धिर्भूतानां पिठरीं विना ॥
त्वंसिद्धिः सिद्धिकामानां त्वं पुष्टिः पुष्टिमिच्छताम् ।
अतस्त्वां प्रणामाम्याशु सत्यं कुरु वचो मम ॥
ज्ञातिबन्धुसुहृद्वर्गे विप्रे प्रेष्यजने तथा ।
अभुक्तवति नाश्रीयात् तथा भव वरप्रदा ॥

(उत्तरपर्व १७०। २२—२४)

इसका भाव यह है कि समीप ही प्रज्वलित अग्नि हो, चावल हो तथा जल भी हो, किंतु यदि स्थाली (बटलोई) न हो तो भोजन नहीं पकाया

जा सकता। स्थाली! तुम सिद्धि चाहनेवालोंके लिये सिद्धि तथा पुष्टि चाहनेवालोंके लिये पुष्टिस्वरूप हो। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मेरी बातको सत्य करो। मेरे ज्ञातिवर्ग, सुहृद्वर्ग, बन्धुवर्ग तथा भृत्यवर्ग आदि जबतक भोजन न कर लें, तबतक तुममें-से भोजन घटे नहीं—ऐसा वर प्रदान करो।

यह मन्त्र पढ़कर वह पात्र द्विष्ट्रेष्टको दान कर दे। यह दान रविवार, संक्रान्ति, चतुर्दशी, अष्टमी, एकादशी अथवा तृतीयाको करना चाहिये। वसिष्ठजीका यह उपदेश मानकर वह ब्राह्मणी नित्य ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित स्थालीपात्र देने लगी। पार्थ! उसी पुण्यके प्रभावसे जन्मान्तरमें वही ब्राह्मणी द्वौपदीरूपमें तुम्हारी भार्या हुई है और दान देनेमें द्वौपदीका हाथ कभी शून्य नहीं रहेगा; क्योंकि यह द्वौपदी, सती, शची, स्वाहा, सावित्री, भू, अरुन्धती तथा लक्ष्मीके रूपमें जहाँ

रह रही हो, वहाँ फिर कौन-सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है। इतना कहकर मैत्रेयमुनिने कहा कि महाराज युधिष्ठिर! यह द्वौपदी अपनी स्थालीसे अन्न दे तो सम्पूर्ण जगत्को तृप्त कर सकती है, फिर इन थोड़े-से ब्राह्मणोंके भोजन आदिके विषयमें आप क्यों चिन्तित होते हैं?

मैत्रेयजीका ऐसा वचन सुनकर भगवन्! हमलोगोंने भी वैसा ही किया और सभी परिजनोंके साथ ब्राह्मणोंको नित्य भोजन कराने लगे। प्रभो! अन्नदानके प्रसंगसे यह स्थालीदानकी विधि मैंने कही, इसलिये आप मेरी धृष्टताको क्षमा करें। जो व्यक्ति सुन्दर ताम्रकी स्थाली बनाकर चावलोंसे उसे भरकर पर्व-दिनमें इस विधिसे ब्राह्मणको देता है, उसके घर सुहृद्, सम्बन्धी, बान्धव, मित्र, भृत्य और अतिथि नित्य भोजन करें तो भी भोजनकी कमी नहीं होती। (अध्याय १७०)

दासीदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं भक्ति और स्नेहसे दासीदानकी विधि बता रहा हूँ। चारों आश्रमोंमें गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ है। इसमें गृह ही मुख्य है, गृहमें भी गृहिणीकी प्रधानता है। वह स्त्री भी यदि शील तथा विनय आदिसे सम्पन्न और सदाचारिणी हो तो फिर क्या कहना? जिस घरमें स्त्रियोंका आदर-सत्कार होता है, वहाँ देवगण आनन्दमग्न होकर निवास करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वह घर नष्ट हो जाता है। अपमानित नारी जिस घरको शाप देती है, वह घर मानो कृत्याके द्वारा शीघ्र ही पराभवको प्राप्त हो जाता है*। सदाचारिणी श्रेष्ठ

स्त्रीको कोई पुण्यवान् ही प्राप्त करता है। जिस घरमें सुवर्ण, श्रेष्ठ दासी, अन्न, बालक और दही, दूध आदि गव्य पदार्थ न हों, उस घरको साक्षात् नरक ही जानना चाहिये। अधिपतिके बिना गाँव, दासीके बिना घर और घीके बिना भोजन—ये तीनों व्यर्थ हैं। जिस घरमें दासियाँ सत्कृत होती हों, वहाँ साक्षात् कमलहस्ता लक्ष्मीका वास होता है। जिस घरमें शौच, आचार, व्यवहार शुद्ध हो, दास-दासियोंका भलीभाँति पोषण होता हो, उस घरमें लक्ष्मी निवास करती है। जिसकी बुद्धि धर्ममें लगी हुई है, उसका चित्त कभी आकुल नहीं होता। जिस घरमें भार्या गृहस्थ-व्यवहारमें

* जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनश्यत्याशु तद् गृहम् ॥

जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव सद्यो यान्ति पराभवम् ॥ (उत्तरपर्व १७१ । ४-५)

कुशल हो, दासियाँ अपने-अपने काममें तत्पर हों और सेवक सदा उद्यमी हों, उस घरमें धर्म, अर्थ एवं कामका निवास होता है। वेदोंमें कहा गया है कि जो स्वयंको प्रिय हों, उन पदार्थोंका

दान देना चाहिये। इस बातका विचारकर पर्वकाल, सौम्यग्रहयुक्त स्थिर नक्षत्रोंमें श्रेष्ठ दासीका ब्राह्मणको दान करना चाहिये। दासी-दान करनेवाला अप्सरालोकमें निवास करता है। (अध्याय १७१)

प्रपा (पौँसला) और अग्नीष्टिका (अँगीठी)-दानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—देवकीनन्दन ! अब आप प्रपा (पौँसला)-दानके माहात्म्यको बतलायें। किस समय और किस विधिसे यह दान होता है ? उसके दानका क्या फल है, आप इन सबका वर्णन कीजिये ।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! चैत्र मासके आरम्भमें ब्राह्मणद्वारा उत्तम मुहूर्तकी जानकारी कर नगरके मध्यमें, रास्तेके किनारे, देवालयमें, चैत्य (पीपल या गाँवके किसी प्रसिद्ध)-वृक्षके नीचे अथवा निर्जल स्थानमें या वनमें घनी और शीतल छायायुक्त एक सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये। मण्डपके बीचमें गीले वस्त्रसे ढककर शीतल जलसे भरे हुए बड़े-बड़े मटके रखने चाहिये। जलपात्र भी रखे। सुशील और गृहस्थ ब्राह्मणको नियुक्त करे, जो निरन्तर थके-प्यासे लोगोंको जल पिलाता रहे। उस ब्राह्मणके निर्वाहयोग्य जीविकाकी व्यवस्थाकर द्रव्य, अन्न आदि जो भी वह चाहे उसे देना चाहिये। इस प्रकार उत्तम मुहूर्तमें प्रपा बनाकर यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर इस मन्त्रको पढ़कर प्रपाका दान करना चाहिये—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता ॥

अस्याः प्रदानात् पितरस्तुप्यन्तु च पितामहाः ।

(उत्तरपर्व १७२। ९-१०)

‘इस प्रपाको मैंने सम्पूर्ण प्राणियोंकि लिये बनवाया है, इसके दान करनेसे मेरे पितर तृप्त हो जायँ।’

उस दिनसे लेकर चार मासतक निरन्तर जल

पिलाना चाहिये और यथाशक्ति अन्न भी देना चाहिये। सुगन्ध, शीतल, उत्तम सुस्वादु जल उत्तम पात्रमें रखकर सबको पिलाना चाहिये और यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी नित्य कराना चाहिये।

इस विधिसे जो व्यक्ति ग्रीष्म-ऋतुमें जलदान करता है, वह सभी तीर्थों और सभी दानोंका फल प्राप्त कर लेता है तथा देवताओंद्वारा पूजित होता है। वह पूर्णचन्द्रके समान दिव्य कुम्भाकार विमानमें बैठकर स्वर्गमें जाता है, बीस करोड़ वर्षपर्यन्त वहाँ सुख भोगता है और यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि सब उसकी सेवामें तत्पर रहते हैं। पुनः भूमिपर जन्म लेकर चारों वेदोंका मर्मज्ञ ब्राह्मण होता है और उत्तम कर्मोंके अनुष्ठानसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। प्रपादान करनेका सामर्थ्य न हो तो ग्रीष्मकालमें शीतल जलसे पूर्ण धर्मघट प्रतिदिन ब्राह्मणोंके घर देना चाहिये और प्रतिमास उसका उद्यापन करना चाहिये। अनेक प्रकारके पक्वान्न और वस्त्र, दक्षिणादिसे युक्त उस धर्मघटका दान करना चाहिये। वह घट ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकरस्वरूप कहा गया है। इस रूपमें उस घटकी इस प्रकार प्रार्थना करे—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ।

अस्य प्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः ॥

(उत्तरपर्व १७२। २१)

इस मन्त्रको पढ़कर ब्राह्मणको जलपूर्ण घट देना चाहिये। इस विधिसे जो धर्मघटका दान करता है, वह प्रपादानका फल प्राप्त कर लेता है। यदि

धर्मघट भी न दे सके तो उसे चाहिये कि ग्रीष्ममें चार मास नित्य पीपल वृक्षका सेवन करे और 'अश्वत्थरूपी भगवान् प्रीयतां मे जनार्दनः' ऐसा कहकर प्रदक्षिणापूर्वक अश्वत्थको नमस्कार करना चाहिये। अश्वत्थ-सेचनसे सभी पाप दूर हो जाते हैं और उसे प्रपादानका फल प्राप्त हो जाता है।

भगवन्! इसी प्रकार शीतकालमें दयालु व्यक्तिको अग्नीष्टिका अर्थात् अँगीठीका दान करना चाहिये।

मार्गशीर्ष मासके आरम्भमें उत्तम मुहूर्त देखकर देवालय, मठ, घर अथवा बड़े चौराहेपर सायं-प्रातः बहुत-सा सूखा काष्ठ एकत्रकर अग्नि प्रज्वलित कर व्याहृतियोंसे हवन करना चाहिये। इस प्रकार शीतकालमें दोनों समय अग्नि जलानी

चाहिये। जिससे दीन, अनाथ, वस्त्रहीन वहाँ अग्निका सेवनकर लाभ प्राप्त कर सकें। यदि कोई भूखा हो तो उसको भोजन भी देना चाहिये। आग तापते समय परस्पर भगवच्चर्चा आदि करते रहना चाहिये। इससे महान् पुण्य होता है। यदि स्वेच्छासे कोई राजचर्चा तथा जनचर्चा आदि परोपकारकी बातें करे तो रोकना नहीं चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति अग्नीष्टिकाका दान करता है, वह सूर्यके समान दिव्य विमानमें बैठकर ब्रह्मलोक जाता है। वहाँ वह छाछठ हजार वर्षतक सुख भोगकर पुनः यहाँ जन्म लेता है और चतुर्वेदवेत्ता, याज्ञिक, नीरोग, धनवान् और तेजस्वी ब्राह्मण होता है। (अध्याय १७२-१७३)

विद्यादानकी महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—**भगवन्!** अनेक प्रकारके गोदान और भूमिदानकी विधि एवं माहात्म्य आदि सुननेके बाद अब मैं विद्यादानकी महिमा सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! जिस प्रकार विद्याका दान करना चाहिये तथा उससे जो फल प्राप्त होता है, उसका मैं वर्णन कर रहा हूँ—

शुभ मुहूर्तमें स्वस्तिक, फूलमालासे भूषित एक चौकोर मण्डल बनाकर उसके मध्यमें पुस्तकको स्थापित कर ग-थ, अक्षत, पुष्प आदिसे उसका पूजन करे। लेखकका पूजनकर सुवर्णकी लेखनी और चाँदीका मसिपात्र (दावात) बनाकर लेखकको देना चाहिये। लेखकको सुशील और अप्रमत्त होना चाहिये। अनन्तर लेखक पुस्तक लिखना आरम्भ करे। उसे एकाग्रचित्त होकर मात्रा, अनुस्वार, संयुक्त अक्षरोंको साफ-साफ और पदोंको अलग-अलग लिखना चाहिये। अक्षर गोल-गोल सुन्दर,

एक समान और शीषरिखायुक्त हों। इस विधिसे शिवभक्तिपरक या विष्णुभक्तिपरक पुराण, आगम, धर्मशास्त्र आदि लिखवाकर अन्तमें वस्त्र और आभूषण आदिसे लेखकका पूजन करनेके बाद उस पुस्तकको दो वस्त्रोंसे आवेष्टित कर दक्षिणासहित व्युत्पन्नमति, प्रियंवद और उत्तम वाचक ब्राह्मणको अथवा सबके कल्याणके लिये मठ, मन्दिर या सामान्य गृह आदिमें स्थापित करे*। इस विधिसे जो व्यक्ति पुस्तकदान करता है, वह यज्ञ और तीर्थयात्रा करनेसे भी कोटिगुना अधिक फल प्राप्त करता है। एक हजार कपिला गायका विधिपूर्वक दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह एक पुस्तकके दान करनेसे हो जाता है। फिर पुराण, रामायण और महाभारत, गीता आदि पवित्र ग्रन्थोंके दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

प्रातःकाल उठकर जो अपने शिष्योंको वेदादि

* वस्त्रयुग्मेन संवीतं पुस्तकं प्रतिपादयेत्। सामान्यं सर्वलोकानां स्थापयेदथ वा मठे॥ (उत्तरपर्व १७४। ११)

शास्त्रों तथा नृत्य, गीत-कलाओंको पढ़ाता है, उसके समान पुण्यात्मा कौन है? जो पढ़ानेवालेको वृत्ति देकर विद्यार्थियोंको पढ़ावाता है, उसने कौन-सा दान नहीं किया? विद्यार्थियोंको भोजन, वस्त्र, धिक्षा एवं पुस्तक आदि देनेसे मनुष्योंके सभी मनोरथ निःसंदेह सिद्ध होते हैं। वह विवेकवान्, दीर्घजीवी होता है तथा धर्म, अर्थ, काम आदि सब कुछ प्राप्त कर लेता है। राजन्! जो भी व्यक्ति शास्त्रविद्या, शस्त्रविद्या, चौंसठ कलाएँ, ज्ञान-विज्ञान आदिको सीखना चाहता है, उसकी यथाशक्ति सहायता करनी चाहिये और उसके उपकारके लिये सदा तत्पर रहना चाहिये^१; क्योंकि उससे पारमार्थिक लाभ होता है। हजार वाजपेय-यज्ञ करनेसे जो

फल प्राप्त होता है, वही फल सद्विद्यादानसे प्राप्त हो जाता है। शिव, विष्णु, अथवा सूर्यके मन्दिरोंमें जो व्यक्ति प्रतिदिन पुराण आदिके वाचनकी व्यवस्था करवाता है, वह प्रतिदिन गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्रके दानका फल प्राप्त करता है। विद्याहीन व्यक्ति धर्म तथा अर्थमात्रा निर्णय नहीं कर सकता, इसलिये सदा विद्यादानमें तत्पर रहना चाहिये। ब्रह्मा आदि सभी देवता विद्यादानमें प्रतिष्ठित रहते हैं। विद्यादान करनेवाला व्यक्ति एक कल्पतक विष्णुलोकमें पूजित होता है और पुनः भूलोकमें जन्म लेकर दाता, भोगी, रूपसौभाग्ययुक्त, दीर्घायु, नीरोग और पुत्र-पौत्रयुक्त धर्मात्मा राजा होता है^२।

(अध्याय १७४)

तुलापुरुषदानकी विधि^३

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत नामके एक बड़े प्रतापी और धर्मात्मा राजा हो गये हैं। उन्होंने तीस हजार वर्षतक धर्मपूर्वक राज्य किया और पृथ्वीको सात द्वीपोंमें बाँटकर उनमें अपने सातों पुत्रोंको प्रतिष्ठित कर दिया। तदनन्तर वे विषयोंसे विरत होकर तप करनेके लिये वनमें चले गये। राजा प्रियव्रतको तपोवनमें आया जानकर बड़े-बड़े महात्मा, तपस्वी और मुनिगण राजाका दर्शन करनेकी इच्छासे उनके पास आये। राजाने भी पाद्य, अर्घ्य और आचमन आदिसे उनका पूजन किया तथा मधुर वाणीसे कुशल-क्षेम पूछकर बैठनेके लिये आसन

दिया। उसी समय सूर्यके समान देवीप्यमान ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनिने वहाँ पदार्पण किया। पुलस्त्यजीको आये देखकर राजासहित सभी मुनि उठ खड़े हुए और उन्होंने अतीव सत्कारपूर्वक आसन देकर पाद्यादिसे पूजन किया। तदनन्तर सभी लोग सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये। फिर शास्त्र-चर्चा होने लगी।

इसी प्रसंगमें मुनियोंने संसारके कल्याणकी कामनासे पुलस्त्यमुनिसे पूछा—‘मुनिसत्तम! पुरुष और स्त्रियोंको किस दान, व्रत, नियम आदिसे सद्वति प्राप्त होती है। आप उनका वर्णन करें। आपके मुखसे मधुर वचन सुननेकी अभिलाषा हमलोगोंसहित राजा प्रियव्रतको भी है।’

१—शास्त्रं शस्त्रकलाशिल्पं यो यदिच्छेदुपार्जितुम्। तस्योपकारकरणे पार्थ कार्यं सदा मनः ॥ (उत्तरपर्व १७४। २०)

२—प्राचीन भारतके विद्यादान और प्रचारमें भगवान् शिव-विष्णुकी भक्ति, सदाचार और परोपकार आदि प्राण थे। यह इस अध्यायसे तथा दानसागर, दानकल्पतरु आदि निबन्ध-ग्रन्थोंसे भी स्पष्ट है। इससे भगवत्प्राप्ति कर प्राणी कृतार्थ हो जाते थे। पर आजके शिक्षालय प्रायः ठीक इसके विपरीत हैं। उनमें धर्म, सदाचारका कोई स्थान नहीं है। धार्मिक शिक्षा विद्यालयोंसे बहिष्कृत हो गयी है और जब शासन ही धर्मनिरपेक्ष है तो कहना ही क्या?

३—यह प्रकरण मत्त्यपुराणके २७४वें अध्यायमें प्रायः इसी प्रकार प्राप्त होता है। इसीके साथ-साथ वहाँ योड़श महादानका भी वर्णन हुआ है।

पुलस्त्यमुनिने कहा—मुनीश्वरो ! मैं सभी दानोंमें उत्तम, सुगुप्त और सर्वपापहारी तुलादानकी विधि बता रहा हूँ। जिसके करनेसे स्त्री अथवा पुरुष ब्रह्महत्या, गोहत्या, पितृहत्या, गुरुपत्नीगमन, कूटसाक्ष्य (झूठी गवाही) आदि अनेक पापोंसे छूटकर विशुद्ध-शरीर हो जाता है। यदि मनुष्यको ब्रह्मलोक-प्राप्तिकी इच्छा है तो वह कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रत तथा तुलापुरुषदान करे। मुनियो ! कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रत वनवासी ब्राह्मणों, भिक्षुओं और विधवा नारियोंके लिये कहे गये हैं, ये व्रत शरीरको कष्ट देनेसे ही सिद्ध होते हैं। राजा, धनवान्, गृहस्थ इस कृच्छ्रसाध्य धर्मको नहीं सम्पादित कर सकते। धन मानो मनुष्योंका बाहर रहनेवाला प्राण ही है। इसलिये धनवान् व्यक्तियोंको इन्हें धर्ममें लगाकर सार्थक बनाना चाहिये^१। संसारमें सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, सभी द्रव्योंमें श्रेष्ठ स्वर्ण है, यह देवताओंके प्रधान अग्निदेवका ही पुत्र है। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि उस स्वर्णसे अपनेको तौल ले फिर उसके दानसे सभी पाप दूर हो जाते हैं और दिव्य शरीरकी प्राप्ति होती है। महाराज ! इस प्रकार पुलस्त्यमुनिने ऋषियों और राजा प्रियव्रतसे तुलादानके माहात्म्यको बतलाया। वही विधि ऋषियोंने मुझसे कही और मैं आपसे कह रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनें।

व्यतीपात, अयनसंक्रान्ति, विषुवयोग, ग्रहण, ग्रहपीडा होनेपर, दुःस्वप्न देखनेपर, कार्तिकी अथवा माघी पूर्णिमा आदि पर्वके दिनोंमें या जब पर्यास धन उपलब्ध हो, उस समय तुलापुरुषदान करना चाहिये। मनुष्यको निरन्तर यही विचार करना चाहिये कि जीवन अनित्य है, सम्पत्ति

अत्यन्त चञ्चल है, मृत्युने केशोंको पकड़ रखा है, शरीरका कब अन्त हो जाय, यह निश्चित नहीं है, अतः सदा धर्माचरण ही करना चाहिये^२। इसलिये जब भी श्रद्धा हो, उसी समय दान आदि करना चाहिये, वही दान देनेका उचित समय है। श्रद्धासे ही फल होता है। तीर्थ, देवालय, गोष्ठ अथवा अपने घरमें दान करना चाहिये। अपने घरके अथवा देवालयके प्राङ्गणमें सोलह हाथ लम्बे-चौड़े पताका आदिसे सुसज्जित एक सुन्दर मण्डपकी रचनाकर उसके बीचमें सात हाथ लम्बी-चौड़ी और एक हाथ ऊँची चौरस वेदी बनाये। फिर उसके मध्यमें विधिपूर्वक दिव्य तुलाको स्थापित करे। दो स्तम्भोंको जो चार हाथ ऊँचे हों, दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें सुदृढ़ कर दे। चन्दन, खदिर, बिल्व, शाल, इंगुदी, तिंदुक, देवदारु और श्रीपर्ण—इन आठ वृक्षोंमेंसे किसी भी वृक्षके लकड़ीका स्तम्भ बनाना चाहिये अथवा किसी मजबूत काष्ठबाले यांत्रिक वृक्षकी लकड़ीका स्तम्भ बनाना चाहिये। स्तम्भके ऊपर उसी काष्ठका चार हाथ लम्बा एक तिरछा काष्ठ रखकर उसमें छानबे अङ्गुल लम्बी लौह-शृङ्खला लगानी चाहिये। उसमें लोहेके दो पलड़े भी बनाने चाहिये। मध्यमें तुलापुरुषकी प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा करे। इस प्रकारकी तुलाको रत्न, वस्त्र, आभूषण, चन्दन तथा पुष्पमाला आदिसे अलंकृत करे।

तीन मेखला और योनिसे युक्त हस्तप्रमाणबाले चार कुण्ड बनाकर ईशानकोणमें एक हाथ लम्बी-चौड़ी वेदी बनाये। उसके ऊपर ग्रह और दिव्यपालोंका पूजन करे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप,

१-यदेतद् द्रविणं नाम प्राणाश्वेते बहिश्वराः ॥ तस्माद् बहिश्वरैः प्राणेरात्मा योज्यः सदा बुधैः । (उत्तरपर्व १७५ । १९-२०)

२-यदा वा जायते वित्तं तदा देयमिदं भवेत् । अनित्यं जीवितं यस्माद्वसुक्षातीव चञ्चलम् ॥

केशेषु च गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत् । (उत्तरपर्व १७५ । २७-२८)

अक्षत, चन्दन, फल और वस्त्रादिसे ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरका पूजन करे। क्षीर-वृक्षके पत्तोंसे तोरण बनाये और मण्डपके चारों द्वारोंपर पुष्टमाला तथा पल्लव आदिसे सुशोभित कलशोंको सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करे। ऋग्वेद जाननेवाले दो ब्राह्मणोंको पूर्व कुण्डपर, यजुर्वेदके ज्ञाता दो ब्राह्मणोंको दक्षिण कुण्डपर, सामवेदके जाननेवाले दो ब्राह्मणोंको पश्चिम कुण्डपर और अथर्ववेदी दो ब्राह्मणोंको उत्तर दिशाके कुण्डपर हवनके लिये नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त एक नवें धर्मोपदेशक ब्राह्मणका भी वरण करे। कुछ ऋषियोंका मत है कि सोलह ऋत्विक् हवनके लिये नियुक्त करने चाहिये। वरणके समय प्रत्येक ऋत्विक्को दो ताम्रपात्र और एक आसन दे। तिल, धी, समिधा, विष्टर, पुष्ट, कुश, स्तुक् तथा स्तुव आदि सभी हवनकी सामग्रियोंको एकत्रित कर लोकपालोंके रंगकी पताका उनकी दिशामें लगानी चाहिये और बीचमें महाध्वज खड़ा करना चाहिये तथा पाँच रंगोंवाला वितान भी बाँधना चाहिये।

इस प्रकार सभी सामग्रियोंको सम्पादित कर सभी शिल्पकार्योंमें निपुण शिल्पकार (बढ़ी) ब्राह्मणोंके साथ बनाये गये उस मण्डपको यजमानको दिखलाये। यज्ञकी रक्षाके लिये यजमान स्नानकर श्वेत वस्त्र पहनकर इन्द्रादि दिक्पालोंका आवाहन करे तथा उन्हें बलि प्रदान करे और प्रार्थना करे। उस समय अनेक प्रकारके शङ्ख-तूर्य आदि वाद्य बजते रहें और मङ्गल-वेदध्वनि होती रहे। आवाहन आदिके मन्त्रोंका भावार्थ इस प्रकार है—

‘इन्द्रदेव! आप देवताओंके स्वामी और वज्रधारण करनेवाले हैं, सभी अमर, सिद्ध और साध्य आपकी स्तुति करते हैं तथा अप्सराओंके समूह आपपर पंखा झलते हैं। आप यहाँ पधारिये और हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। इन्द्रदेवताको

नमस्कार है। ऐसा कहकर इन्द्रका आवाहन करना चाहिये। अग्निदेव! आप सभी देवताओंके हव्यवाहक हैं, मुनिवरगण सब ओरसे आपकी सेवा करते हैं, आप अपने तेजस्वी लोकगणोंके साथ यहाँ आयें और मेरे यज्ञकी रक्षा करें, आपको प्रणाम है। ऐसा कहकर अग्निदेवका आवाहन करना चाहिये। सूर्यपुत्र धर्मराज! आप सभी देवताओंद्वारा पूजित, दिव्य शरीरधारी और शुभ एवं अशुभ तथा आनन्द एवं यज्ञके अधीश्वर हैं, हमारे कल्याणके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। ऐसा कहकर यमका आवाहन करना चाहिये। निर्ऋतिदेव! आप लोकोंके अधीश्वर तथा राक्षससमूहके नायक हैं। पिशाचनाथ! आप वैतालों और पिशाचोंके विशाल समूहके साथ यहाँ आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको प्रणाम है। ऐसा कहकर निर्ऋतिका आवाहन करना चाहिये। वरुणदेव! विद्याधर और इन्द्र आदि देवता आपका गुण-गान करते हैं, आप समस्त जलचरों, समुद्रों, बादलों एवं अप्सराओंके साथ यहाँ आइये तथा हमारी रक्षा कीजिये। आपको नमस्कार है। ऐसा कहकर वरुणका आवाहन करना चाहिये। वायुदेव! आप कालाग्निके सहायक और प्राणोंके अधीश्वर हैं, आप मृगपर आरूढ़ हो सिद्ध-समूहोंके साथ मेरी रक्षा करनेके लिये यज्ञमें पधारिये तथा मेरी पूजा स्वीकार कीजिये। आपको नमस्कार है। ऐसा कहकर वायुका आवाहन करना चाहिये। सोमदेव! आप नक्षत्रगणों, सभी ओषधियों तथा पितरोंके साथ यहाँ आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। भगवन्! आप मेरी पूजा स्वीकार कीजिये, आपको प्रणाम है। ऐसा कहकर सोमका आवाहन करना चाहिये। सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी विश्वेश्वर! विश्वमूर्ति! ईशानदेव! आप त्रिशूल, कपाल, खट्टवाङ् धारण करनेवाले अपने गणोंके साथ हमारे यज्ञमें

सिद्धि प्रदान करनेके लिये उपस्थित होइये और लोकेश ! मेरी पूजा ग्रहण कीजिये । भगवन् ! आपको अभिवादन है । ऐसा कहकर ईशानका आवाहन करना चाहिये । अनन्तदेव ! आप पाताल एवं पृथ्वीको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं तथा नागपतियाँ और किंनर आपका गुणगान करते हैं । आप यक्षों, नागेन्द्रों और देवगणोंके साथ यहाँ आइये तथा हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये । ऐसा कहकर अनन्तका आवाहन करना चाहिये । विश्वाधिपते ! आप समस्त जगत्के विधाता हैं । मुनीन्द्र ! आप पितर, देवता एवं लोकपालोंके साथ यहाँ पधारिये । पितामह ब्रह्मन् ! आप कल्याण करनेके लिये हमारे यज्ञमें प्रविष्ट होइये । भगवन् ! आपको प्रणाम है । ऐसा कहकर ब्रह्माका आवाहन करना चाहिये । त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे सभी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ मेरी रक्षा करें । देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषिगण, मनु, गौएँ, देवमाताएँ—ये सभी हर्षपूर्वक मेरे यज्ञकी रक्षा करें ।'

इस प्रकार देवताओंका आवाहन कर ऋत्विजोंको सुवर्णका आभूषण, कुण्डल, जंजीर, कङ्कण, पवित्र अङ्गूठी, वस्त्र तथा शश्याका दान करना चाहिये । गुरुको ये आभूषण और वस्त्र दूना देना चाहिये । सर्वप्रथम आघार और आज्यभागसे हवन करे । जिन ग्रहों, लोकपालों तथा देवताओंकी प्रतिष्ठा की जाय, सबके तत्तद मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये । तत्पश्चात् माझलिक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वेदज्ञोंद्वारा अभिषिक्त यजमान श्वेत वस्त्र धारणकर अङ्गलिमें पुष्प ले उस तुलाकी तीन बार प्रदक्षिणा कर उसे इस प्रकार अभिमन्त्रित करे—

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता ॥
साक्षिभूता जगद्धात्रि निर्मिता विश्वयोनिना ।
एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च ॥

धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते ।
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता ॥
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते ।
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः ॥
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः ।
नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक ॥
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात् ।

(उत्तरपर्व १७५ । ७१—७६)

'तुले ! तुम सभी देवताओंकी शक्तिस्वरूप हो, तुम्हें नमस्कार है । हे जगद्धात्रि ! तुम सत्यकी आश्रयभूता, साक्षिस्वरूपा और विश्वयोनि ब्रह्माद्वारा निर्मित की गयी हो, जगत्की कल्याणकारिणी ! तुम्हारी एक तुलापर सभी सत्य हैं, दूसरीपर सौ असत्य हैं । धर्मात्मा और पापियोंके बीच तुम्हारी स्थापना हुई है । तुम भूतलपर सभी जीवोंके लिये प्रमाणरूप बतलायी गयी हो । मुझे तोलती हुई तुम इस संसारसे मेरा उद्धार कर दो, तुम्हें नमस्कार है । देवि ! जो ये तत्त्वोंके अधीश्वर पचीसवें पुरुष भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हीमें अधिष्ठित हैं, इसलिये तुम्हें बारम्बार प्रणाम है । तुलापुरुषरूप गोविन्द ! आपको बारम्बार अभिवादन है । हरे ! आप इस संसाररूपी सागरसे हमारा उद्धार करें ।'

इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकालमें अधिवासन कर भक्तिपूर्वक प्रणाम कर तुलापर आरोहण करे । उस समय वह खड्ग, ढाल, कवच एवं सभी आभरणोंसे अलंकृत रहे । वह सुवर्णनिर्मित सूर्यसहित धर्मराजको बँधी हुई मुट्ठीवाले दोनों हाथोंसे पकड़कर विष्णुके मुखकी ओर देखता हुआ स्थित रहे ।

तदनन्तर ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे तुलाकी दूसरी ओर यजमानकी तोलसे कुछ अधिक अत्यन्त निर्मल स्वर्ण रखें । पुष्टिकामी श्रेष्ठ मनुष्य जबतक स्वर्णकी तुला भूमिपर स्पर्श न कर ले,

तबतक स्वर्ण रखे। फिर क्षणमात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे—

नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातने ।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥
त्वया धृतं जगत्सर्वं सहस्थावरजंगमम् ।
सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि ॥

(उत्तरपर्व १७५। ८१-८२)

‘सभी जीवोंकी साक्षिभूता सनातनी देवि! तुम पितामह ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई हो, तुम्हें नमस्कार है। तुले! तुम समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत्को धारण करनेवाली हो, सभी जीवोंको आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि! तुम्हें नमस्कार है।’

तत्पश्चात् तुलासे उत्तरकर स्वर्णका आधा भाग पहले गुरुको देना चाहिये एवं बचे हुए आधे भागको हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक ऋत्विजोंको दे देना चाहिये। पुनः उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणोंको भी दान दे। विशेषतया दीनों एवं अनाथोंको भी ब्राह्मणोंके साथ दान देना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष उस तोले गये स्वर्णको अधिक देरतक अपने घरमें न रखे। क्योंकि यदि वह घरमें रह जाता है तो मनुष्योंको भय देनेवाला,

शोक और व्याधिको बढ़ानेवाला होता है, उसे शीघ्र ही दूसरेको दे देनेसे मनुष्य श्रेयका भागी हो जाता है।

इसी विधिसे चाँदी और कपूरसे भी तुलादान किया जाता है। सौभाग्यकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको कृष्ण पक्षकी तृतीयाको कुंकुम, लवण और गुड़का तुलादान करना चाहिये। इसमें मन्त्र और हवनकी अपेक्षा नहीं रहती। इस विधिसे जो स्त्री अथवा पुरुष तुलादान करते हैं, वे श्रेष्ठ सुन्दर विमानमें बैठकर सूर्यलोकको जाते हैं। वहाँ एक कल्पतक निवासकर वह विष्णुलोक, शिवलोक, विश्वेदेवलोक, इन्द्रलोक, धर्मराजलोक, वरुणलोक, कुबेरलोक आदिमें अनेकों कल्पोंतक निवासकर पुनः मनुष्यलोकमें जन्म लेकर धर्मात्मा, दानी और शत्रुओंका क्षय करनेवाला राजाका पद प्राप्त करता है। जो व्यक्ति इस महादानके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनता है, वह भी त्रिविध पापोंसे मुक्त हो जाता है। ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे कोई उत्तम पूजनीय देवता नहीं है, अश्वमेधके समान कोई यज्ञ नहीं, गङ्गाके समान कोई पवित्र नदी नहीं और तुलादानके समान कोई अन्य दान नहीं है।

(अध्याय १७५)

हिरण्यगर्भ-दानकी विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप किसी ऐसे ब्रत अथवा दानकी विधि बतलायें, जिसके करनेसे आयु, यश और ऐश्वर्यकी वृद्धि हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! मैं आपके स्नेहके वशीभूत होकर संसारका कल्याण करनेकी इच्छासे हिरण्यगर्भ-दानकी विधि बता रहा हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य मेरी समताको प्राप्त कर लेता है। राजन्! सुवर्ण अग्निदेवका ज्येष्ठ पुत्र है, वह सभी धातुओंमें श्रेष्ठ और परम पवित्र है।

उसीका दूसरा नाम हिरण्य है। वही जलके गर्भमें प्रविष्ट होकर पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको सुवर्णका दान देता है, वह मेरे तुल्य हो जाता है।

महाराज! अब उसके दानकी विधि सुनिये। किसी पर्वकाल, अयनसंक्रान्ति, विषुवयोग, ग्रहणकाल, व्यतीपात, कार्तिकी पूर्णिमा, जन्मनक्षत्र, ग्रहपीड़ा, दुःस्वप्नदर्शन आदि कालोंमें प्रयाग, नैमिष, कुरुक्षेत्र, अर्बुद, गङ्गा, यमुना, गङ्गासागर-संगम और पुण्य

नदियोंके तटपर हिरण्यगर्भका दान करना चाहिये अथवा घर, देवालय, बाग, तड़ाग आदि पवित्र स्थानोंमें यह दान करना चाहिये। सर्वप्रथम भूमिशोधनकर बारह हाथ लम्बा-चौड़ा एक मण्डप बनाकर उसे स्तम्भ, तोरण, पताका आदिसे अलंकृत करे। मण्डपके बीचमें पाँच हाथकी वेदी बनाकर उसमें वितान लगाकर उसे फूलमाला आदिसे सजा दे। वेदीपर हिरण्यगर्भ-कलशको स्थापित करना चाहिये। सर्वप्रथम वस्त्र तथा आभूषणसे शिल्पीका पूजनकर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कार्य आरम्भ करे। शिल्पी उत्तम सुवर्णसे हिरण्यमय माङ्गलिक कलशकी रचना करे। उसकी ऊँचाई चौंसठ अङ्गुल कही गयी है और मुख ऊँचाईका तीसरा भाग हो। कलशकी पेंदी मुख-परिमापसे आधा रहे। उसकी गोलाई कर्णिकाके समान हो। यह कलश सुन्दर, ग्रन्थिविहीन होना चाहिये। कलशका ढक्कन मुखके परिमापसे एक अङ्गुल अधिक रहे और उसके समीप दस अस्त्र सुवर्णनाल, सूर्यमूर्ति, स्वर्णमय सूची, क्षुर तथा कमण्डलु, छत्र, पादुका आदि सभी सामग्रियोंके साथ ब्रह्माकी मूर्ति स्थापित करनेके बाद वेदध्वनि एवं शङ्ख आदिकी मङ्गलध्वनि करते हुए ब्राह्मण उस हिरण्यगर्भ-कलशको हाथी अथवा रथसे मण्डपमें ले आये। वहाँ वेदीके ऊपर एक द्रोण तिल रखकर उसपर उसे स्थापित करना चाहिये। उसके बाद हिरण्यगर्भको कुंकुमसे उपलिसकर तथा रेशमी वस्त्रसे ढक्कर पुष्पमालाओंसे अलंकृत करे। तदनन्तर धूप, दीप आदिसे उसकी पूजा करे और यह कहकर नमस्कार करे—

भूलौंकप्रमुखालोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः ॥
ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते भुवनोद्भव ।
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनेश्वर ॥
नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः ।

(उत्तरपर्व १७६ । ३०—३२)

‘भुवनोद्भव ! भूलोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा आदि देवगण आपके गर्भमें स्थित हैं। अतः विश्वाधार ! विश्वेश्वर ! आपको नमस्कार है। जिनके गर्भमें पितामह स्थित हैं, अतः हिरण्यगर्भको प्रणाम है।’

इस प्रकार पूजा करनेके बाद एक रात्रितक उसका अधिवासन करना चाहिये। वेदीके चारों ओर चौरस चार कुण्ड बनाकर उसमें चार वेदवेत्ता ब्राह्मण क्रमसे मौन होकर हवन करें। वे ब्राह्मण उत्तम वस्त्र आदिसे अलंकृत हों तथा उनकी गन्ध, धूप आदिसे पूजा कर दो-दो ताम्रपात्र देने चाहिये। वेदीके ईशानकोणमें ग्रहवेदी बनाकर उसपर नवग्रह, दस दिक्पाल और ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवकी सुवर्ण-प्रतिमा स्थापित कर गन्ध, पुष्प, अक्षत तथा वस्त्र आदिसे उनकी पूजा करे। पताका —तोरण आदिसे मण्डपको अलंकृत करे। मण्डपके द्वारोंपर रत्नयुक्त दो-दो कलश स्थापित कर तुलापुरुषदानकी रीतिसे लोकपालोंका आवाहन कर नैवेद्यादि बलि देनी चाहिये। इस यज्ञमें पलाशकी समिधा हवनके लिये उत्तम होती है। चरु, तिल एवं गायके घृतसे व्याहति और ग्रहों तथा देवताओंके नाम-मन्त्रोंसे बीस हजार आहुतियाँ दे। शुभ मुहूर्तमें यजमान स्नानकर श्वेत वस्त्र धारण कर हिरण्यगर्भका पूजन करनेके बाद इस प्रकार प्रार्थना और प्रदक्षिणा करे—

नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः ।
चराचरस्य जगतो गृहभूताय ते नमः ॥
मात्राहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम ।
त्वद्वर्भसम्भवादद्य दिव्यदेहो भवाम्यहम् ॥

(उत्तरपर्व १७६ । ४२-४३)

‘हिरण्यगर्भको नमस्कार है। विश्वगर्भको प्रणाम है। हे चराचरजगत्के गृहभूत ! आपको नमस्कार

है। हे सुरोत्तम ! पहले मुझे माताने जन्म दिया है। मैं मृत्युधर्मा हूँ, वही मैं आपके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण दिव्य शरीरयुक्त हो जाऊँ।'

तदनन्तर दूध, दही तथा घृतसे परिपूर्ण उस कलशको मण्डपमें प्रवेश कराये। बायें हाथमें सुवर्णनिर्मित धर्मराजकी प्रतिमा और दाहिने हाथमें सूर्यकी सुवर्णप्रतिमा लेकर मुट्ठी बाँधकर दोनों घुटनोंके बीच सिर करके पाँच बार साँस लेकर शिवका ध्यान करते हुए स्थित रहे। उस समय ब्राह्मण हिरण्यगर्भप्रतिमाका गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन और जातकर्म आदि संस्कार करें। अनन्तर आचार्य यजमानको उठाये। संस्कारके समय यजमान किसी व्यक्तिके मुखको न देखे। उसके बाद उठकर प्रदक्षिणा कर वेदध्वनिपूर्वक यजमानको स्नान कराना चाहिये और सुवर्ण, चाँदी, ताम्र अथवा मिट्टीके आठ कलशोंके अभिमन्त्रित जलसे 'देवस्य त्वा' इस मन्त्रद्वारा आठ ब्राह्मण यजमानको एक पीठपर बैठाकर उसका अभिषेक करें और कहें— अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्यामहे वयम्। दिव्येनानेन वपुषा चिरं जीव सुखी भव॥

(उत्तरपर्व १७६।५४)

'आज उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अङ्गोंका हमलोग अभिषेक कर रहे हैं। अब तुम इस दिव्य शरीरसे चिरकालतक जीवित रहो और आनन्दका उपभोग करो।' इसके बाद यजमान संकल्पपूर्वक उस हिरण्यगर्भ-प्रतिमाको ब्राह्मणोंको दान कर दे, अन्य ब्राह्मणोंकी भी पूजा करे। यज्ञकी अन्य सभी सामग्रियाँ गुरुको अर्पणकर पादुका, छत्र, वस्त्र, आसन आदि सामग्री सभासद ब्राह्मणोंको देनी चाहिये। दीन, अन्ध, कृपण आदिको भोजनसे संतुष्ट करना चाहिये। उस दिन अन्न-सत्र करना चाहिये। इस विधिसे जो व्यक्ति हिरण्यगर्भका दान करता है, वह अपने कुलका उद्धार करते हुए स्वयं भी दिव्य विमानपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। वहाँ एक सौ मन्वन्तरर्पयन्त इन्द्रके समान सुख भोगकर भूलोकमें जन्म लेकर पराक्रमी, धार्मिक, सत्यवादी, ब्राह्मण-गुरुओंका भक्त और शत्रुओंको जीतनेवाला सम्पूर्ण जम्बूद्वीपका राजा होता है। जो व्यक्ति इस विधिको सुनता है, वह भी सौ वर्षसे अधिक स्वर्गसुखका भोग करता है।

(अध्याय १७६)

ब्रह्माण्डदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं महर्षि अगस्त्यजीद्वारा बतायी गयी ब्रह्माण्डदानकी विधि बता रहा हूँ। इससे शारीरिक, मानसिक तथा वाचिक तीनों प्रकारके पाप दूर हो जाते हैं और यश, धन, आयु, मङ्गल तथा सदृति प्राप्त होती है।

अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे लेकर एक हजार पलतककी ब्रह्माण्डकी सुवर्ण-प्रतिमा

बनाये*। उसकी लम्बाई-चौड़ाई बारह अङ्गुलसे लेकर सौ अङ्गुलतक होनी चाहिये। उसमें देवता, दैत्य, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, नदी, सरोवर, समुद्र, पर्वत, दिग्गज आदि चित्रित करे। बीचमें मेरु पर्वतके शिखरोंपर पत्रियोंसहित ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भी अङ्गित करे। उसमें आठों दिग्गजों और चौदह भुवनोंको भी चित्रित करे। इस प्रकारके सुवर्णमय ब्रह्माण्डका त्रेषु शिल्पीद्वारा निर्माण करवाये।

* ब्रह्माण्ड-निर्माण एवं दानकी संसंकल्प पूरी विधि दानसागर, दान-मयूर, दानचन्द्रिका, दानकल्पतरुमें है। अधिक जाननेकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंको इसे वहाँ देखना चाहिये। मत्स्यपुराण अध्याय २७६ में भी यह अध्याय इसी प्रकार प्राप्त होता है।

अयन-संक्रान्ति, विषुवयोग, ग्रहण आदिके समयोंमें तथा अन्य पर्वोंमें पुष्टिसे एक मण्डप बनाकर उसमें एक द्रोण (बत्तीस सेर) परिमाणवाले तिलोंके ऊपर ब्रह्माण्डको स्थापित करना चाहिये। कुंकुमचूर्णसे चर्चित कर दो वस्त्रोंसे ढककर गन्ध, धूप आदिसे उस ब्रह्माण्डकी पूजा करनी चाहिये। उसके चारों ओर पूर्ण कलशकी स्थापना कर अठारह प्रकारके धान्य एक-एक द्रोणके परिमाणमें रखे। खड़ाऊँ, जूता, छाता, पात्र, आसन, दर्पण, भोजन आदि सभी सामग्रियोंको भी वहाँ रखे। इस विधिसे घरमें अथवा मण्डपमें ब्रह्माण्डकी प्रतिमा स्थापित कर एक हस्त प्रमाणवाला एक चौरस कुण्ड बनाकर उसमें चार वेदोंको जानेवाले चारणिक ब्राह्मणोंसे जो वस्त्रादि आभूषणोंसे अलंकृत हों, हवन कराना चाहिये। उपाध्याय और राजाके पुरोहित भी हवन करें। ग्रहयज्ञविधिसे हवन करना चाहिये। विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि देवताओंके नाममन्त्रोंसे तिलोंकी आहुति देकर दस हजार आहुति महाव्याहतियोंसे दे और ब्राह्मण रुद्रीका पाठ भी करें। उसके बाद यजमान स्नान कर श्वेत वस्त्र धारण कर सभी उपचारोंसे ब्रह्माण्डका पूजनकर पुष्पाञ्जलि लेकर इस प्रकार प्रार्थना करे—

नमो जगत्प्रतिष्ठाय विश्वधाम्ने नमोऽस्तु ते ॥
 वाङ्मनोऽतीतरूपाय ब्रह्माण्ड शुभकृद्व ।
 ब्रह्माण्डोदरवतीनि यानि सत्त्वानि कानिचित् ॥
 तानि सर्वाणि मे तुष्टि प्रयच्छन्त्वतुलां सदा ।
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपालास्तथा ग्रहाः ॥
 नक्षत्राणि तथा नागा ऋषयो मरुतस्तथा ।
 सर्वे भवन्तु संतुष्टाः समजन्मान्तराणि मे ॥

(उत्तरपर्व १७७। १९—२२)

‘जगत्की प्रतिष्ठा करनेवाले विश्वधामन्! आपको नमस्कार है। वाणी एवं मनसे अतीत रूपवाले

ब्रह्माण्ड! आप मेरे लिये कल्याण करनेवाले हों, ब्रह्माण्डके उदरमें रहनेवाले जितने भी सत्त्व हैं, वे सभी मुझे अतुल तुष्टि प्रदान करें। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लोकपाल, ग्रह, नक्षत्रमण्डल, नागगण, ऋषि तथा मरुदूण सात जन्मोंतक मुझपर संतुष्ट रहें।’

इस प्रकार पुष्पाञ्जलि देकर दक्षिणासहित ब्रह्माण्ड-प्रतिमा ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये।

राजन्! इस दानकी महिमामें एक आख्यान है, उसे आप सुनें। सत्ययुगमें ऐश्वर्यवान्, धनवान्, शक्तिशाली, दस हजार हाथियोंके बराबर बलवाला सुद्युम्न नामका एक राजा हुआ है। वह तीस हजार वर्षोंतक निष्कण्टक राज्य करनेके बाद अपने पुत्रको राज्यभार सौंपकर विरक्त हो वनमें तपस्या करने चला गया। वहाँ उसने घोर तपस्या की। अन्त-समयमें वह दिव्य विमानपर चढ़कर इन्द्रादि लोकोंको पार करता हुआ ब्रह्मलोक चला गया। वहाँ ब्रह्माजीने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और श्रेष्ठ आसन देकर बैठाया। वह वहाँ निवास करने लगा। यद्यपि वहाँ सभी आनन्दकी सामग्रियाँ उपलब्ध थीं; किंतु वह दिव्य भोगोंको भोगनेमें असमर्थ रहता। ब्रह्मलोकमें रहते हुए भी वह भूख-प्याससे दुःखी रहता था। एक बार उसने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे प्रार्थना की—‘भगवन्! यह ब्रह्मलोक सभी दोषोंसे रहित है, फिर भी यहाँ रहते हुए मुझे भूख-प्यास सता रही है, आप कृपाकर बतलाइये कि यह मेरे किस कर्मका कुफल है।’

ब्रह्माजी बोले—राजन्! तुमने भलीभाँति राज्यका भोग किया। प्रजाओंका पालन किया। यद्यपि तुम अध्यात्मवादी थे, पर दानादि सत्कर्म नहीं किये और उन्हें प्रतिबन्धक रूपमें समझा। तुम ज्ञानी हो, तुमने तप किया है, इस कारण तुम्हें यह ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ, किंतु दान आदि सत्कर्म न करनेके कारण

यहाँ रहते हुए भी तुम भूख-प्याससे व्याकुल हो।

राजाने कहा—प्रभो! यदि ऐसी बात है तो मुझपर कृपाकर मेरी भूख-प्यास दूर करनेके लिये कोई उपाय बतलाइये।

ब्रह्माजी बोले—राजन्! अब तुम भूलोकमें जाओ और सम्पूर्ण कामनाओंको सफल बनानेवाले ब्राह्मणोंको ब्रह्माण्डकी प्रतिमा दान करो, उससे तुम्हें तृप्ति हो जायगी। ब्रह्माजीके उपदेशसे राजाने पृथ्वीलोकमें आकर ब्राह्मणोंको ब्रह्माण्ड-दान किया। फलस्वरूप उसने पुनः स्वर्गमें शाश्वती तृप्ति प्राप्त की।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! यह मैंने

ब्रह्माण्डके महादानका फल बतलाया। जिसने ब्रह्माण्डका दान किया उसने मानो सम्पूर्ण चराचर जगत्का दान कर लिया। वह अपने कुलोंका उद्धार कर देता है और छत्तीस मन्वन्तरोंतक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुनः मनुष्यलोकमें आकर धार्मिक कुलमें जन्म लेता है। उसे न दरिद्रता सताती है, न व्याधि होती है और न अपने इष्टजनोंसे वियोग होता है। जो इस दानके माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनता है अथवा सुनाता है, वह भी सद्गति प्राप्त करता है। फिर जो इस ब्रह्माण्ड-दानको करता है, उसके विषयमें क्या कहना। (अध्याय १७७)

कल्पवृक्ष एवं कल्पलतादानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! जब भगवान् शंकरका माता पार्वतीके साथ विवाह हुआ तो उनके अपत्यकी कल्पनाकर देवगण भयभीत हो गये। वे सभी भगवान् शंकरके पास गये और उनसे ऊर्ध्वरीता रहनेकी प्रार्थना की। इसपर भगवान् शंकर कुछ खिन्न-से होकर कहने लगे—‘देवगण! आपलोग भयभीत न हों, मैं स्थाणुके रूपमें स्थित रहूँगा। इसपर माता पार्वतीने कृद्ध होकर देवताओंको शाप दे डाला कि जिस प्रकार आपलोगोंने मुझे पुत्रसे रहित किया है, उसी प्रकार आप सबको भी पुत्रोंकी प्राप्ति नहीं होगी।’ देवताओंको इस प्रकार शाप देकर पार्वतीने भगवान् शंकरसे कहा—‘जगत्पते! अब तो हमें पुत्र उत्पन्न होगा नहीं। अपुत्रकी गति नहीं होती है ऐसा श्रुति कहती है। अतः हे महाभाग! दोनों लोकोंमें जैसे उद्धार हो, वैसा कोई आप उपाय बतलायें।’

भगवान्ने कहा—देवि! पुत्ररहित पुरुष अथवा

नारीको चाहिये कि सुवर्णका एक कल्पवृक्ष बनाकर उसका दान करे। इससे सद्गति प्राप्त होगी अथवा किसी वृक्षमें कल्पवृक्षकी कल्पनाकर उसमें पुत्रत्वकी भावना करनी चाहिये। इससे अपुत्रवान् पुत्रवान् हो जाता है। देवि! इसमें कोई संदेह नहीं है। अतः कल्पवृक्षका दान करना चाहिये। कल्पवृक्ष शुद्ध सुवर्णका होना चाहिये। उसमें बहुत-सी शाखाएँ और पत्र-पुष्प हों। उसे रनोंसे अलंकृत तथा फलोंसे सुसज्जित करना चाहिये। नृपसत्तम! वह कल्पवृक्ष अपनी शक्तिके अनुसार बीस पल सुवर्णसे अधिकका होना चाहिये। इसी प्रकार चाँदीसे भी बनाया जा सकता है। नदीके तटपर, घरपर या देवालयमें पूर्व आदि दिशामें एक सुन्दर मण्डप बनाना चाहिये। मण्डप दस हाथ प्रमाणका होना चाहिये। दस हाथकी वेदी भी निर्मित करनी चाहिये। मण्डपके अग्निकोणमें मेखलायुक्त प्रामाणिक एक अग्निकुण्ड भी बनवाये। वैदिक ब्राह्मणोंका वरण

करे। एक उपदेष्टा ब्राह्मणका भी वरण करे। उस कल्पवृक्षको एक प्रस्थ प्रमाणवाले गुडराशिपर स्थापित करे। उस वृक्षकी पाँच शाखाओंपर ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सूर्यका चित्राङ्कन करे। वृक्षके नीचेकी शाखामें स्त्रीसहित कामदेवके चित्रकी रचना करनी चाहिये। कल्पवृक्षके पूर्वभागमें नमकके ऊपर संतानवृक्षको स्थापित करे और संतानवृक्षपर गायत्रीकी स्थापना करे। कल्पवृक्षके दक्षिण भागमें घृतके ऊपर श्रीदेवीके साथ मन्दार नामक देववृक्षकी स्थापना करे। इसी प्रकार उसी वृक्षके पश्चिम भागमें (जीराके ऊपर) उमाके साथ पारिजात वृक्षकी और उत्तर दिशामें तिलोंके ऊपर सुरभी (गौ)-के साथ हरिचन्दनवृक्षको स्थापित करे। पुनः रेशमी वस्त्रसे वेष्ठित, ईख, पुष्पमाला और फलोंसे संयुक्त आठ पूर्ण कलशोंको चारों ओर स्थापित करे। अग्निप्रणयन करके वृक्षोंका अधिवासन करे। अनेक प्रकारके धान्य तथा भक्ष्य-भोज्य नैवेद्योंको भी स्थापित करे। चारों ओर दीपमाला प्रज्वलित कर दे। अनन्तर कल्पवृक्षकी पूजा कर प्रार्थना करे—

कामदस्त्वं हि देवानां कामवृक्षस्ततः स्मृतः ।

मया सम्पूजितो भक्त्या पूरयस्व मनोरथान् ॥

(उत्तरपर्व १७८ । ३१)

‘कल्पवृक्ष! आप देवताओंकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इसीलिये आपको कामवृक्ष कहा गया है। मैंने भक्तिपूर्वक आपकी पूजा की है, आप मेरे मनोरथोंको पूर्ण करें।’ इस प्रकार पूजन करनेके बाद रात्रिमें महोत्सवपूर्वक जागरण करे। ब्राह्मण हवन करें। सभी स्थापित देवताओंको हवनसे आप्यायित करे। प्रातःकाल उठकर स्नानादि कर श्वेत वस्त्र धारण कर शुभ मुहूर्तमें उस कल्पवृक्षका दक्षिणाके साथ दान कर देना चाहिये। कल्पवृक्षकी तीन बार प्रदक्षिणा कर

प्रणाम करे और इस मन्त्रका उच्चारण करे—
नमस्ते कल्पवृक्षाय विततार्थप्रदाय च।
विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये ॥
यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मस्थाणुदिवाकराः ।
मूर्तमूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन ॥

(उत्तरपर्व १७८ । ३७-३८)

‘कल्पवृक्ष! आप प्रचुरमात्रामें अर्थ प्रदान करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। देव! आप विश्वका भरण-पोषण करनेवाले विश्वमूर्ति हैं, आपको प्रणाम है। सनातन! चूँकि आप विश्वात्मा, ब्रह्मा, शिव, दिवाकर, मूर्त, अमूर्त तथा इस चराचर विश्वके परम कारणरूप हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये।’

इस प्रकार आमन्त्रित कर उस कल्पवृक्षको गुरुको समर्पित कर दे एवं चार संतान आदि देववृक्षोंको ऋत्विजोंको समर्पित करे। इस विधिसे दान करनेवाला सूर्यके तेजके समान कान्तिमान्, अप्सराओंसे परिव्यास, किंकिणीजालसे अलंकृत सुन्दर विमानपर चढ़कर सभी बाधाओंसे रहित निर्विघ्न इन्द्रलोकको जाता है। पुण्यकर्मके समाप्त होनेके बाद वह पुनः पृथ्वीपर आकर श्रोत्रिय-कुलमें उत्पन्न होता है तथा पराक्रमी, विद्वान्, यजकर्ता एवं धार्मिक राजा होता है। अन्तमें वह भगवान् विष्णुके लोकको प्राप्त करता है।

महाराज युधिष्ठिरने कहा— भगवन्! संसारका कल्याण करनेके लिये किसी ऐसे दान, व्रत आदिको बतलायें, जिससे मनुष्य यश और लक्ष्मीसम्पन्न, निष्पाप और दीर्घायु हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले— संसारके हितकी इच्छासे मैं वह उपाय बतला रहा हूँ, जिससे मानव भाग्यशाली होता है। कनक-कल्पलताके दानसे मनुष्य सौभाग्यशाली हो जाता है। कल्पवृक्ष-दानकी विधिसे ही इसका भी दान करना

चाहिये। विधिपूर्वक दिक्षाल-होम, आधार-आज्यभाग-हवन, ग्रहयाग तथा व्याहतियोंसे भी हवन करना चाहिये। हवन आदिके अनन्तर किसी पुण्य पर्वमें स्नानादिसे पवित्र होकर फल, अक्षत, वस्त्र, पुष्प, धूप आदिसे कल्पलताकी अर्चना करनी चाहिये। तदनन्तर प्रदक्षिणा कर इन मन्त्रोंसे उसकी प्रार्थना करनी चाहिये—

नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो

ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालनीभ्यः ।

आशाशताधिक्यफलप्रदाभ्यो

दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः ॥

या यस्य शक्तिः परमा प्रदिष्टा

वेदे पुराणे सुरसत्तमस्य ।

तां पूजयामीह परेण साग्रा

सा मे शुभं यच्छतु तां नतोऽस्मि ॥

(उत्तरपर्व १७९ । १०-११)

‘पापोंका विनाश करनेवाली, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और लोकेश्वरोंका पालन करनेवाली एवं आशासे

अधिक सैकड़ों फल प्रदान करनेवाली दिग्वधूरूपी कल्पलता देवियो! आपको बार-बार नमस्कार है। वेदों तथा पुराणोंमें आप देवताओंकी परम शक्ति कही गयी हैं, अतः शक्तिस्वरूपा कल्पलते! मैंने सामध्वनिसे आपका पूजन किया है, आप मेरा कल्याण करें, आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार प्रार्थनाकर दस दिशारूपी दस कल्पलताएँ ब्राह्मणोंको दान कर दे और क्षमायाचना करे। इस विधिके अनुसार दान करनेवाला इस लोकमें विजयी, धनवान् और पुत्रवान् होता है। मरनेके बाद इन्द्रलोकमें मन्वन्तरपर्यन्त निवास करता है। अनन्तर पृथ्वीपर चक्रवर्ती राजा होता है। जो नारी यह दान देती है, वह शक्तिसमन्वित चक्रवर्ती पुत्रको जन्म देती है। जो इस कल्पलताके* दानको देखता है, अनुमोदन करता है अथवा इसके माहात्म्यको सुनता है वह भी मुक्त हो जाता है।

(अध्याय १७८-१७९)

गजरथ-अश्वरथदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! अपनी शक्तिके द्वारा प्राप्त सम्पत्तिसे राजाओंको तथा अधर्मसे डेर हुए, ग्रहपीड़ासे संतस एवं दुःस्वप्न आदिसे दुःखित पुरुषोंको कौन-सा दान देना चाहिये, जो ऐहिक तथा पारलौकिक कामनाओंको पूर्ण करनेवाला हो, ऐसे किसी विशिष्ट दानका आप वर्णन करें।

भगवन् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! ऐसे कल्याणकारी श्रेष्ठ दानको आप सुनें, जो विशेषरूपसे राजाओंका हितसाधक है। शास्त्रोंमें गोदान आदि अनेक श्रेष्ठ दान बतलाये गये हैं, किंतु उनमें राजाओंके लिये जो प्रधान दान है, उसे मैं

आपको बतला रहा हूँ, जिसे शुक्राचार्यने दैत्यराज बलिको बतलाया था, वह दान गजरथाश्वरथदान है। शुक्राचार्यजीने बलिसे कहा था—‘दैत्यपते! जिस गजरथाश्वरथदानसे सभी पाप, भयंकर आधिव्याधियाँ एवं ग्रहपीड़ाएँ नष्ट हो जाती हैं और श्रेष्ठ पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसे आप सुनें।’

कार्तिककी पूर्णिमा, अयनसंक्रान्ति, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, विषुवयोग और सूर्यकी संक्रान्तिमें अथवा किसी पुण्य दिनमें यह दान करना चाहिये। काष्ठका एक दिव्य रथ बनाकर उसे स्वर्णसे मणिङ्गत करे। वह रथ सुन्दर चक्के, धुरे, नेमि, जूआ आदिसे

* मत्स्यपुराण अ० २८६ में कनककल्पलता-दानकी स्पष्ट विधि निर्दिष्ट है। वहाँ स्वर्णनिर्मित इन्द्राणी, आग्रेयी, नैऋती, वारुणी, वायवी, कौवेरी आदि दस दिशा-देवियों तथा कल्पलताओंके निर्माणकी विधि भी दी गयी है।

समन्वित हो। उसे स्वर्णध्वज तथा सफेद एवं कृष्ण पताकाओं और पुष्पमालाओंसे मण्डित करना चाहिये। ऐसा रथ बनाकर किसी शुभ दिनमें जलमय स्थान अथवा नदीके किनारे, गोशाला या घरके आँगनमें एक श्रेष्ठ वेदीपर पुराण और वेदविद्याके ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण उसे स्थापित करे। रथके मध्यमें ब्रह्माकी स्थापना करे और प्रणवद्वारा उनकी पूजा करे। उत्तरमें विष्णुकी स्थापना कर पुरुषसूक्तसे उनकी पूजा करे। दक्षिणमें भगवान् रुद्रकी स्थापना कर रुद्रसूक्तद्वारा उनका पूजन करे। सूर्यादिग्रहोंकी पुष्प, गन्ध, फल, नैवेद्य, दीप, वस्त्र और मालाओंद्वारा पूजा करे। शङ्ख, भेरी और मृदंगोंके शब्द एवं ब्रह्मघोषके द्वारा महान् उत्सव कराये।

अग्निकोणमें एक हाथ प्रमाणवाला एक कुण्ड बनाकर विभिन्न वैदिक शाखाओंके अध्येता ब्राह्मणोंकी पूजा करे। चार या आठ ब्राह्मणों तथा एक आचार्यका वरण करे। तिल एवं घृतके द्वारा हवन करे। इस प्रकार द्विजोंके साथ यजमान यज्ञविधि सम्पन्न कर शुभ लक्षणोंसे समन्वित दो श्रेष्ठ हाथियोंको रथमें नियोजित करे। वे हाथी घण्टा, हेमपट्ट, सुन्दर तिलक, शङ्ख, चामरसे सुशोभित हों, दिव्य मुक्ता-मालाओंसे परिव्याप्त हों, दिव्य अंकुशसे समन्वित दो महावत भी रहें। इस प्रकार दिव्य रथ बनवाकर सभी श्रेष्ठ वस्त्र, आभूषण एवं माला आदिसे सत्कृत तथा धनुष-बाण, कवच आदि आयुधोंसे सुसज्जितकर ब्राह्मणको रथपर बिठलाये। अनन्तर श्रेत्र वस्त्रधारी यजमान रथकी परिक्रमा कर पुष्पाङ्गलि लेकर सभी पापोंका नाश करनेवाले इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

**कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ।
सुप्रतीकोऽञ्जनः सार्वभौमोऽष्टौ देवयोनयः ॥**
तेषां वंशप्रसूतौ तु बलरूपसमन्वितौ ।
तद्युक्तरथदानेन मम स्यातां वरप्रदौ ॥
रथोऽयं यज्ञपुरुषो ब्राह्मणोऽत्र शिवः स्वयम् ।

ममेभरथदानेन प्रीयेतां शिवकेशवौ ॥

(उत्तरपर्व १८०। २९—३१)

‘कुमुद, ऐरावण (ऐरावत), पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक, अञ्जन तथा सार्वभौम—ये आठ गज देवयोनिमें उत्पन्न हैं। इनके वंशमें उत्पन्न ये दो गज अत्यन्त बलवान् और रूपवान् हैं। इस रथमें इनको नियोजित कर देनेसे और गजयुक्त रथका दान करनेसे ये गज मेरे लिये वर प्रदान करनेवाले हों। यह रथ यज्ञपुरुष साक्षात् विष्णुरूप है और इसपर बैठे ब्राह्मण शिवस्वरूप हैं। इसलिये इन गजोंसे युक्त रथके दान करनेसे भगवान् विष्णु तथा शंकर मुझपर प्रसन्न हों।’

ऐसा कहकर उस रथपर बैठे ब्राह्मणकी रथसहित पुनः प्रदक्षिणा कर वह रथ उन ब्राह्मणको दान कर दे। रथको ब्राह्मणदेवताके द्वारतक पहुँचाकर पुनः अपने घर वापस आ जाय। इस प्रकार दान-कार्यके पूर्ण होनेपर अंधे, दीन, मूक, बधिर, अनाथोंको वस्त्र और भोजन आदिसे संतुष्ट करे, गोदान करे।

राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा रथ बनाकर उसमें जीन, लगाम आदिसे संयुक्त दो शुभ लक्षणोंवाले घोड़ोंको अलंकृत कर जोतना चाहिये। पूर्वरीतिसे हवन आदि कार्य करने चाहिये। उस उत्तम रथपर ब्राह्मणको बिठाकर उसकी भी पूजा करनी चाहिये और रथकी प्रदक्षिणा कर इस मन्त्रसे प्रार्थनापूर्वक उस अश्वरथका दान करना चाहिये—

नमोऽस्तु ते वेदतुरङ्गमाय

त्रयीमयाय त्रिगुणात्मकाय ।

सुदुर्गमार्गे सुखयानपात्रे

नमोऽस्तु ते वाजिधराय नित्यम् ॥

रथोऽयं सविता साक्षाद् वेदाश्वामी तुरङ्गमाः ।

अरुणो ब्राह्मणश्वायं प्रयच्छन्तु सुखं मम ॥

(उत्तरपर्व १८०। ४०—४१)

‘वेदरूपी अश्वोंसे युक्त, वेदत्रयीस्वरूप, त्रिगुणात्मक, कठिन-से-कठिन मार्गोंमें सुखपूर्वक वहन कर ले जानेवाले अश्वरथ! आपको नित्य नमस्कार है। यह रथ साक्षात् भगवान् सूर्यका रूप है और ये घोड़े साक्षात् वेदरूप हैं तथा इसमें बैठे हुए ब्राह्मण अरुणरूप हैं। ये सभी मुझे सुख प्रदान करें।’

तदनन्तर उसके साथ ब्राह्मणके घरतक जाय।

इस विधिसे जो बुद्धिमान् व्यक्ति अश्वरथका दान करता है, वह सभी पापों तथा रोगोंसे रहित होकर सौ मन्वन्तरपर्यन्त दिव्य भोगोंसे समन्वित सूर्यके समान देदीप्यमान विमानपर आरूढ़ होकर श्रीसम्पन्न हो स्वर्गलोकमें निवास करता है। पुनः पुण्यक्षीण होनेपर पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रसमन्वित, चिरजीवी, अतिथिसेवक एवं धार्मिक राजा होता है। (अध्याय १८०)

कालपुरुषदान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—यदुश्रेष्ठ! सभी पापोंके नाश करनेवाले, मङ्गलप्रद पवित्र अन्य दानोंको आप मुझसे कहें, क्योंकि ज्ञान-विज्ञानके एकमात्र आश्रय और संसार-सागरसे उद्धार करनेवाला आपके अतिरिक्त कोई नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! मैंने अनेक प्रकारके दानोंकी आपसे चर्चा की, फिर भी यदि आपको उत्कण्ठा है तो मैं पुनः कह रहा हूँ। आप सबसे पहले दस महादानोंके विषयमें सुनें। उनमेंसे पहला दान है—कालपुरुषदान, दूसरा है सप्तसागरदान, इसी प्रकार महाभूतघटदान, शश्यादान, आत्मप्रतिकृतिदान, सुवर्णश्वदान, सुवर्णश्वरथदान, कृष्णाजिनदान, विश्वचक्रदान तथा हेमगजरथदान—ये दस महादान हैं। नृपश्रेष्ठ! आप दान करनेमें अपनी सद्बुद्धि लगायें और अन्य लोगोंको भी दान-कर्ममें प्रेरित करें। धनीके लिये दानसे अतिरिक्त और कोई भी उपकार नहीं है। देनेवाले व्यक्तिका धन घटता नहीं है, अपितु देनेसे बढ़ता ही रहता है।

राजन्! अब आप कालपुरुषदानके विषयमें सुनें। कालपुरुषकी एक प्रतिमा बनानी चाहिये। चतुर्थी, चतुर्दशी अथवा विष्णिमें यह प्रतिमा काले तिलोंसे एक समतल भूमिपर पुरुषके आकारकी

बनवाये। उसके दाँत चाँदीके, आँखें सोनेकी बनाये, उसके हाथमें भयंकर तलवार हो, जपाकुसुमके समान उसके कानोंमें कुण्डल हों, लाल माला तथा लाल वस्त्र पहिने हो, शङ्खकी भी माला पहने हो। धनुष-बाण लिये हो। जूते पहने हो तथा बगलमें काला कम्बल लिये हो। इस प्रकार कालपुरुषकी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प और नैवेद्य आदिसे उसकी अर्चना करे। ‘त्र्यम्बकं’ (यजु० ३।६०) इस मन्त्रसे स्वगृह्योक्त विधानसे तिल और घृतद्वारा १०८ आहुतियाँ दे। अनन्तर प्रसन्नहृदयसे यजमान इस मन्त्रका उच्चारण करे—
सर्वं कलयसे यस्मात् कालस्त्वं तेन भण्यसे ।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां त्वमसाध्योऽसि सुव्रत ॥
पूजितस्त्वं मया भक्त्या प्रार्थितश्च तथा सुखम् ।
यदुच्यते तव विभो तत् कुरुष्व नमो नमः ॥

(उत्तरपर्व १८१। २१-२२)

‘कालपुरुष! सब कुछ आपसे ही घटित होता है। इसलिये आप काल कहे जाते हैं। सुव्रत! ब्रह्मा, विष्णु, शिवसे भी आप असाध्य हैं। आपकी मैंने भक्तिपूर्वक आनन्दके साथ पूजा की है। विभो! मुझे आपसे सुखकी कामना है। आप उसे कृपापूर्वक पूर्ण करें, आपको बार-बार नमस्कार है।’

‘इस प्रकार पूजाकर वह प्रतिमा ब्राह्मणको समर्पित करे। वस्त्र और अलंकारोंसे ब्राह्मणकी पूजाकर उसे यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान करे। इस विधिसे कालपुरुषका दान करनेवालेको मृत्यु एवं व्याधिका भय नहीं रहता। वह सभी बाधाओंसे

रहित होकर अपार सम्पत्ति और अन्तमें सूर्यलोकका भेदनकर परमपदको प्राप्त करता है। पुण्य-क्षीण होनेपर वह पुनः यहाँ आकर पुत्र-पौत्र तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न धार्मिक राजा होता है।’

(अध्याय १८१)

सप्तसागरदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं सम्पूर्ण पापोंके विनाशक परमोत्तम सप्तसागर-दानकी विधि बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुष युगादि तिथियों तथा ग्रहण आदिके समय स्वर्णनिर्मित सात स्वतन्त्र कुण्डोंका निर्माण करे। ये कुण्ड एक बित्ता चौड़े तथा एक अरति अर्थात् बँधी हुई मुट्ठीवाले हाथ-जितने लम्बे होने चाहिये। इन्हें अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार सात पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये। इन सभी कुण्डोंको कृष्णमृगके चर्मपर रखे गये तिलोंके ऊपर स्थापित करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको पहले कुण्डको लवणसे, दूसरे कुण्डको दुग्धसे, तीसरेको घृतसे, चौथेको गुड़से पाँचवेंको दहीसे, छठेको चीनीसे तथा सातवेंको तीर्थोंके पवित्र जलसे पूर्ण करना चाहिये। फिर लवणकुण्डमें सुवर्णनिर्मित ब्रह्मकी, दुग्धकुण्डके मध्यमें भगवान् विष्णुकी, घृतकुण्डमें भगवान् शिवकी, गुड़कुण्डमें भगवान् भास्करकी, दधिकुण्डमें सुराधिपकी, शर्कराकुण्डमें लक्ष्मीकी और जलकुण्डमें पार्वतीकी स्थापना करनी चाहिये। सभी कुण्डोंको सभी ओरसे रलों तथा अन्नोंद्वारा अलंकृत करना चाहिये। जब पुण्यपर्व आ जाय, यजमान स्नानकर श्वेत वस्त्र धारण कर सुखपूर्वक जो पदार्थ मिल सके उन्हें भी वहाँ स्थापित कर ले। फिर इन

कुण्डों (सागरों)-की तीन प्रदक्षिणा कर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः ॥
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः ।
पूर्णाः सर्वे भवन्तो वै क्षारक्षीरघृतैक्षवैः ॥
दधा शर्करया तद्वत् तीर्थवारिभिरेव च ।
तस्मादधौघविधवंसं कुरुध्वं मम मानदाः ॥
अलक्ष्मीः प्रशमं यातु लक्ष्मीश्वास्तु गृहे मम ।

(उत्तरपर्व १८२। १०—१३)

‘सभी नदियोंके एकमात्र आश्रयस्थान सप्तसागरो! आप सनातन हैं, आपको नमस्कार है। सभी प्रणियोंको जीवनदान देनेवाले समुद्रोंको नमस्कार है। आप लवण, क्षीर, घृत, इक्षुरस, दही, शर्करा तथा तीर्थोंके जलसे परिपूर्ण हैं, आप मान-सम्मान देनेवाले हैं, आप मेरे सम्पूर्ण पापसमूहोंका विनाश करें। मेरे घरसे अलक्ष्मी दूर हो जाय और उसमें लक्ष्मीका निवास हो।’

इस प्रकार कहकर उन सप्तसागरोंको ब्राह्मणोंको दान कर दे। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! इस सप्तसागरके दान करनेवालेके घरसे आठ पीढ़ीतक लक्ष्मी दूर नहीं होती, वह सात मन्वन्तरोंतक देवलोकमें पूजित होता है और फिर अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय १८२)

महाभूतघटदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं महापातकोंको नष्ट करनेवाले अत्युत्तम महाभूतघटदानकी विधि बता रहा हूँ। पुण्य दिनमें आँगनको लीपकर रत्नोंसे समन्वित सुवर्ण-कुम्भका निर्माण करे। कलशको प्रादेशमात्रसे सौ अङ्गुलपर्यन्त अपनी शक्तिके अनुसार पाँच पलसे सौ पलतक बनाना चाहिये। उस घटको दुग्ध और घृतसे पूर्ण करके उसके समीप कल्पवृक्षको स्थापित करे। वहीं पद्मासनपर आसीन ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरको स्थापित करे। लोकपाल और इन्द्रादिको अपने-अपने वाहनोंसे युक्त करके स्थापित करना चाहिये। अक्षसूत्रके साथ ऋग्वेद, कमलके साथ यजुर्वेद, वीणा लिये हुए सामवेद, सुक्त लिये तथा सुन्दर माला पहने अथर्ववेद और पञ्चम वेद पुराणको अक्षसूत्र, कमण्डलु तथा वरदमुद्रायुक्त प्रतिमारूपमें स्थापित करना चाहिये। घटके चारों ओर सप्तधान्य, चरणपादुका, जूता, छाता, चामर, शश्या आदिको भी स्थापित करना चाहिये। पुष्पमाला और अन्य उपचारोंद्वारा स्थापित घटकी पूजा करे। शुभ मुहूर्तमें स्नानकर तीन बार उस घटकी तथा वेदादि प्रतिमाओंकी प्रदक्षिणा कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—

यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम्।
महाभूतमयश्चायं तस्माच्छान्तिं ददातु मे॥
अत्र संनिहिता देवाः स्थापिता विश्वकर्मणा।
ते मे शान्तिं प्रयच्छन्तु भक्तिभावेन पूजिताः॥

(उत्तरपर्व १८३। १०-११)

‘चूँकि महाभूतोंके बिना इस संसारमें अन्य कुछ भी नहीं है, सब महाभूतमय ही है। इसलिये महाभूतमय यह घट मुझे शान्ति प्रदान करे। सभी देवगण विश्वकर्मके द्वारा इसमें स्थापित हैं, भक्तिभावसे पूजित वे सब मुझे शान्ति प्रदान करें।’

इस प्रकार महाभूतघटकी पूजाकर वस्त्र तथा अलंकारादिसे ब्राह्मणकी भी पूजा करे और पुण्यकालमें महाभूतघट ब्राह्मणको प्रदान कर दे। अनन्तर प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणसे क्षमा-याचना करे। इस विधिसे जो व्यक्ति महाभूतमयघटका दान करता है, वह अपने इक्कीस कुलके साथ शिवलोकमें जाता है। पुण्यक्षीण होनेपर वह इस लोकमें आकर धार्मिक राजा होता है और शत्रुसे अजेय, पराक्रमी, क्षत्रियधर्ममें निरत, विद्वान् एवं देवताओं और ब्राह्मणोंका भक्त होता है।

(अध्याय १८३)

शश्यादान एवं मृतशश्यादान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—पाण्डुकुलोद्धव! अब मैं शश्यादानकी विधि बता रहा हूँ, जिससे व्यक्ति इस लोकमें और परलोकमें सुखभागी होता है, यह जीवन अनित्य है, इसलिये शश्यादान करना चाहिये। मृत्युके अनन्तर यह दान कैसे हो पायेगा, इसलिये अपने जीवनमें ही कर लेना चाहिये। भारत! जबतक जीवन रहता है, तभीतक मनुष्य भाई, पिता, बन्धु आदिका स्नेह प्राप्त करता

है, पुनः उसीको मर गया समझकर सबका स्नेह छूट जाता है। इसलिये शश्या, भोजन तथा जल आदिका स्वयं दान कर लेना चाहिये, क्योंकि यह मनमें निश्चित ध्यान रखना चाहिये कि आत्मा ही मेरा बन्धु है अर्थात् स्वयं ही स्वयंका बन्धु है। जिसने दान तथा भोगादिके द्वारा अपनी आत्माको संतुष्ट नहीं कर लिया, उसके लिये स्वयंसे बड़ा और कौन अहितकर होगा? मर जानेपर कौन

उसकी पूजा करेगा? इसलिये मानवको चाहिये कि श्रेष्ठ काष्ठकी एक दृढ़ शय्याका निर्माण करे, उसे हाथी-दाँत और हेमपत्रसे अलंकृतकर सुशोभित करे। गद्वा, चादर तथा तकियेसे संयुक्त कर गन्ध तथा धूपसे अधिवासित करे। ऐसी उस उत्तम शय्यापर लक्ष्मीसमन्वित भगवान् श्रीहरिकी सुवर्णकी प्रतिमाकी स्थापना करे और शय्याके सिरहाने कलश स्थापित करे। विद्वान् व्यक्तिको यह समझना चाहिये कि शय्यापर भगवान् निद्रामें स्थित हैं। शय्याके समीप ही कुंकुमचूर्ण, कर्पूर, अगरु, चन्दन, ताम्बूल, दीपक, जूता, छाता, चामर, आसन, भोजन तथा सप्तधान्यको यथाशक्ति स्थापित करे। अन्य भी उपकारक वस्तुओंको वहाँ स्थापित करे। वितानसे शय्याको सुशोभित कर ले। इस प्रकार उपस्कारोंसे मण्डित शय्याकी सपलीक ब्राह्मणकी विधिपूर्वक पूजाकर प्रदान कर दे और इस मन्त्रको पढ़े—

नमस्ते सर्वदेवेश शय्यादानं कृतं मया।
देहि तस्माच्छान्तिफलं नमस्ते पुरुषोत्तम॥
यथा न कृष्ण शयनं शून्यं सागरजातया।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि॥

(उत्तरपर्व १८४। १३-१४)

‘सर्वदेवेश! मैंने शय्यादान किया है, आपको नमस्कार है। पुरुषोत्तम! आप मुझे शान्ति प्रदान

करें, आपको नमस्कार है। भगवन्! जैसे आपकी शय्या लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, वैसे ही जन्म-जन्मान्तरमें मेरी शय्या भी शून्य न रहे।’ इस प्रकार उस सुन्दर पवित्र शय्याका दान कर विसर्जन करे।

व्यक्तिके मर जानेपर एकादशाहमें भी शय्यादानमें प्रायः यही विधि कही गयी है। बान्धवके मरनेपर धर्मके लिये यदि शय्यादान करता है तो उसे विशेष शान्ति मिलती है। राजेन्द्र! इसमें कुछ विशेष बातें भी मैं आपसे कह रहा हूँ, आप सुनें। मृत व्यक्तिने अपने जीवनकालमें जिन वस्तुओंका उपयोग किया था, जैसे कपड़े पहने थे, जैसा उसका वाहन था, जो वस्तु खाता था, जो वस्तु उसे प्रिय लगती थी, उन सबका भी शय्याके साथ दान करना चाहिये। इसे ‘मृतशय्यादान’ कहा जाता है। मृत व्यक्तिकी सुवर्णकी प्रतिमा भी वहाँ स्थापित करनी चाहिये। अनन्तर पूजा करके वह मृतशय्या प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार इस शय्यादानके प्रभावसे वह मृत जीव स्वर्गलोक, इन्द्रलोक तथा सूर्यलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है। भयंकर मुखवाले यमराजके दूत उसे कष्ट नहीं दे पाते। धूप और शीतसे उसे कभी भी कष्ट नहीं होता। वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है तथा प्रलयपर्यन्त वहाँ सुखपूर्वक निवास करता है। (अध्याय १८४)

आत्मप्रतिकृतिदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं आत्मप्रतिकृतिकी दान-विधि बता रहा हूँ। यह दान मान-सम्मान बढ़ानेवाला है। यह किसी समय किया जा सकता है। पार्थ! अपने स्वरूपकी लोहेकी एक मूर्ति बनाकर अपना जो अभीष्ट वाहन हो उसपर स्थापित करे। अपने मित्रों, बन्धुओं और सभी उपकरणोंसे युक्त होना चाहिये। वह मूर्ति

रत्नों तथा वस्त्रादिसे अलंकृत हो। उसे कुंकुमसे अनुलिप्त कर कर्पूर तथा अगरुसे सुवासित कर दे। अगर स्त्री आत्मप्रतिकृतिदान करे तो उसे अपनेको शय्यामें सोती हुई रूपमें चित्रित करे और अपने अभीष्ट पदार्थोंको पासमें रखे। अपने और अपनी स्त्रीके लिये उपकारी वस्तुओंको भी वहाँ रखे। सभी वस्तुओंको यथास्थान रखकर स्नान कर श्वेत

वस्त्र धारण करे और लोकपाल, ग्रहों, गौरी, विनायककी पूजाकर हाथमें पुष्पाञ्जलि ग्रहण कर ब्राह्मणके सम्मुख इस मन्त्रका उच्चारण करे—

आत्मनः प्रतिमा चेयं सर्वोपकरणैर्युता ॥
सर्वरत्नसमायुक्ता तत्र विप्र निवेदिता ।
आत्माशम्भुः शिवः शौरिः शक्रः सुरगणैर्वृतः ॥
तस्मादात्मप्रदानेन ममात्मा सुप्रसीदतु ।

(उत्तरपर्व १८५। ९—११)

‘ब्राह्मणदेवता! सभी उपकरणों और सभी रत्नोंसे युक्त यह मेरी प्रतिमा है, इसे मैं आपको समर्पित करता हूँ। मेरा आत्मा शम्भु, शिव, विष्णु तथा शक्र इस प्रतिकृतिमें अधिष्ठित है, अतः आत्मप्रतिकृतिके दानसे मेरा आत्मा प्रसन्न

हो। ऐसा उच्चारण कर प्रतिमा ब्राह्मणको समर्पित करे। ब्राह्मण भी ‘कोऽदात्कस्मा०’ (यजु० ७। ४८) इस मन्त्रका पाठ करते हुए प्रतिमा ग्रहण करे। यजमान प्रदक्षिणा कर नमस्कारपूर्वक उसका विसर्जन करे। राजन्! इस विधानके साथ जो आत्मप्रतिकृति-दान देता है, वह देवताओंसे आवृत होकर दिव्य सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। पुण्य क्षीण होनेके बाद वह पुरुष कामनाओंके फलको भोगते हुए राजाके रूपमें रहता है, अभीष्ट बन्धुओंके साथ उसका कभी भी वियोग नहीं होता और वह स्वर्गमें अनन्तकालतक सुख प्राप्त करता है। (अध्याय १८५)

हिरण्याश्वदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं परम श्रेष्ठ सुवर्णमय अश्वके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसके दानसे मनुष्य अनन्त फलको प्राप्त करता है। किसी पुण्यतिथिमें उसे अपनी शक्तिके अनुरूप तीन पलसे लेकर एक सौ पलतकके सोनेका अश्व बनवाना चाहिये। वह लगामके कॉटेसे युक्त हो। अश्वके कंधे उन्नत, जानुप्रदेश दृढ़ और पूँछ सुन्दर हो। उसे रेशमी वस्त्रसे आच्छादित एवं कुंकुमसे लिप्सकर वेदीके ऊपर फैलाये गये काले मृगचर्मपर रखी हुई तिल-राशिपर स्थापित करना चाहिये। श्वेत पुष्पोंसे उसकी पूजाकर चनेका नैवेद्य भोगके रूपमें निवेदित करना चाहिये। तत्पश्चात् शुभ मुहूर्तमें अञ्जलिमें पुष्प लेकर ब्रती इस पुराणोक्त मन्त्रका उच्चारण करे—

नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्प्यट ॥
वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात् ।
त्वमेव सप्तथा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्करम् ॥

यस्माद् धारयसे लोकानातः पाहि सनातन ।

(उत्तरपर्व १८६। ६—८)

‘सभी देवोंके स्वामिन्! आपको नमस्कार है। वेदोंको लानेके लिये इच्छुक देव! आप अश्वरूपसे इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर! चूँकि आप ही छन्दोरूपसे सात भागोंमें विभक्त होकर सभी लोकोंको धारण करते हैं, अतः सनातन! आप मेरी रक्षा कीजिये।’ ऐसा कहकर उसकी प्रदक्षिणा करे तथा वह अश्व ब्राह्मणको प्रदान कर दे। राजन्! इस दानको देनेसे मनुष्य भगवान् सूर्यके अक्षयलोकको प्राप्त करता है। तदुपरान्त वह तैलरहित अन्नका भोजन करे और भोजनके बाद पुराणोंका श्रवण करे। जो मनुष्य पुण्य दिन आनेपर इस हिरण्याश्व-विधिको सम्पन्न करता है, वह पापोंसे मुक्त हो सिद्धोंद्वारा पूजित होता हुआ मुरारिके पुर—वैकुण्ठको प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस सुवर्णाश्वके दानकी विधिको पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर अश्वसमन्वित

राजा होता है और सुवर्णमय विमानद्वारा सूर्यके लोकको जाता है और वहाँ देवाङ्गनाओंद्वारा पूजित होता है। जो अल्पवित्त पुरुष हिरण्याश्रदानकी इस विधिको सुनता या स्मरण करता है अथवा

लोकमें इसका अभिनन्दन करता है, वह भी पापोंके नष्ट हो जानेसे विशुद्ध शरीरवाला हो पुरन्दर एवं महेश्वरसेवित स्थानको जाता है।

(अध्याय १८६)

हिरण्याश्रद्ध-दानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—पाण्डुकुलोद्धव महाराज युधिष्ठिर! अब इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ, पुण्यप्रद एवं महापातकोंके विनाशक हिरण्याश्रद्ध-दानकी विधि बतला रहा हूँ। इस दानमें भी पुण्य पर्वदिन आनेपर अपने घरके आँगनको गोबरसे उपलिस कर वेदीपर कृष्णमृगचर्मको फैलाकर उसके ऊपर रखे हुए तिलोंकी राशिपर स्वर्णमय रथकी स्थापना करे। वह रथ चार घोड़ोंसे युक्त हो। उसमें चार चक्रके होने चाहिये और उसमें बैठनेकी जगह हो। लगामके साथ ब्रह्माको अग्र-भागपर बैठाये। उसे इन्द्रनीलमणिके कलश और ध्वजासे सुशोभित करना चाहिये। उसपर पद्मरागमणिके दलसे युक्त आठों लोकपालोंकी मूर्ति रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, जलसे भरे हुए चार कलश तथा अठारह धान्य हों और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। उसे पुष्प-माला, ईख और फलसे संयुक्त तथा पुरुषसे समन्वित होना चाहिये। जो पुरुष जिस देवताका भक्त हो, वह उसीके नामका उच्चारण कर अधिवासन करे। अनन्तर उस हिरण्यरथकी पूजा करनी चाहिये। घोड़ेपर सवार दोनों अश्विनीकुमारोंको उसके चक्ररक्षकके रूपमें स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार पुण्यकाल आनेपर ब्राह्मणोंद्वारा पूर्ववत् स्नानकर देवताओंकी पूजा करके यजमान श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे तथा अञ्जलिमें पुष्प लेकर (उस रथकी) तीन बार प्रदक्षिणा कर दान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो नमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने देवतुरङ्गमाय।
धाम्नामधीशाय भवाभवाय
रथस्य दानान्मम देहि शान्तिम्॥
वस्वष्टकादित्यमरुद्रणानां
त्वमेव धाता परमं निधानम्।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु
धर्मैकतानत्वमधौघनाशात्॥

(उत्तरपर्व १८७। १०-११)

‘पापसमूहके लिये दावाग्निस्वरूप देव! आप पापोंके विनाशक, विश्वात्मा, वेदरूपी घोड़ोंसे युक्त, तेजोंके अधीश्वर और सूर्यरूप हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। इस हेमरथ-दानसे आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। चूँकि आप ही आठों वसुओं, आदित्यगणों और मरुदण्डोंके भरण-पोषण करनेवाले और परम निधान हैं। अतः आपकी कृपासे पापसमूहके नष्ट हो जानेसे मेरा हृदय धर्मकी एकतानताको प्राप्त हो।’ इस प्रकार जो मनुष्य इस लोकमें भव-भयनाशक इस अश्वरथका दान करता है, उसका शरीर पापसमूहसे मुक्त हो जाता है और वह शिवसायुज्य प्राप्त करता है तथा ब्रह्माके साथ चिरकालतक निवास करता है। जो प्राणी इस लोकमें सुवर्णतुरगरथ नामक महादानकी विधिको पढ़ता या सुनता है, वह कभी नरकमें नहीं जाता।

(अध्याय १८७)

कृष्णाजिन (मृगछाला)-दान-विधि

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! अब आप मुझे कृष्णाजिनके दानकी विधि, समय और दान-ग्रहणके योग्य ब्राह्मणके लक्षणको बतलायें, इसमें मुझे संदेह हो रहा है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! युगादि तिथियों, सूर्य-चन्द्रग्रहण, संक्रान्ति, तिथिक्षय, माघी पूर्णिमा, ग्रहपीड़ा तथा दुःखनेपर कृष्णाजिनका दान करना चाहिये, यह महादान कहलाता है। राजन्! जो अग्निहोत्री, वेदवेदाङ्गपारञ्जन्त तथा पुराणका ज्ञाता हो, ऐसे योग्य ब्राह्मणको यह दान देना चाहिये। जिस विधानसे यह दान देना चाहिये, उसे आप सुनें।

नरश्रेष्ठ! पवित्र स्थानको गोबरसे लीपकर उसपर ऊनी वस्त्र बिछा कर काले तिलोंसे उसपर मृगकी आकृति बनाये। सींगके स्थानपर सोना तथा चाँदीका दाँत बनाये। मोतीकी मालासे पूँछ बनाये। तिलसे सिरका निर्माण कर उसे वस्त्रसे आच्छादित करे और सुवर्णसे अलंकृत कर पुष्प, गन्ध, फल, रत्न तथा नैवेद्यसे उसकी पूजा करनी चाहिये। चार दिशाओंमें चार काँसेके पात्र यथाक्रमसे रखने चाहिये। वे घी, दूध, दही और मधुसे समन्वित हों। अनन्तर

पुण्यकाल आ जानेपर इन मन्त्रोंको पढ़े—
कृष्णः कृष्णमलो देव कृष्णाजिनवरस्तथा ॥
त्वद्वानापास्तपापस्य प्रीयतां मे नमो नमः ।
त्रयस्त्रिशत्सुराणां च आधारे त्वं व्यवस्थितः ॥
कृष्णोऽसि मूर्तिमान् साक्षात् कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते ।

(उत्तरपर्व १८८। १०—१२)

‘श्रेष्ठ कृष्णाजिन देव! आप पापोंके नाश करनेवाले विष्णुरूप हैं, आपके दान करनेसे मेरे समस्त पाप नष्ट हो जायें। आपको बारम्बार नमस्कार है। आप तीनीस देवताओंके आधाररूपमें अवस्थित रहते हैं, आप मूर्तिमान् कृष्ण-विष्णु हैं, आपको नमस्कार है।’

इस प्रकार प्रदक्षिणा कर बार-बार नमस्कार कर वेद-वेदाङ्गपारञ्जन्त ब्राह्मणको अपनी शक्तिके अनुसार अलंकृतकर कृष्णाजिनका दान करे। ब्रह्माजीने बताया है कि कृष्णाजिनकी पूँछ पकड़कर दान करना चाहिये। इस प्रकार इस विधिसे कृष्णाजिनदान करनेसे मानव भूमिदानके समग्र फलको प्राप्त कर लेता है और तीनों अवस्थाओंमें जो पाप अर्जित करता है, वह क्षणभरमें ही नष्ट हो जाता है। (अध्याय १८८)

हेमहस्तिरथदानकी विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब इसके बाद मैं मङ्गलमय सुवर्णनिर्मित हस्तिरथदानका वर्णन कर रहा हूँ, जिससे मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। किसी पुण्यतिथिके आनेपर संक्रान्ति या ग्रहणकालमें बुद्धिमान् यजमानको मणियोंसे सुशोभित देवताओंके रथके आकारका सुवर्णमय रथ, जो विचित्र तोरणों और चार पहियोंसे युक्त हो,

बनवाना चाहिये। उसमें स्वर्णनिर्मित चार श्रेष्ठ हाथी भी रहने चाहिये। उस रथको कृष्णमृगचर्मके ऊपर रखे गये एक द्रोण तिलपर स्थापित करना चाहिये। वह रथ आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य और शिवकी प्रतिमाओंसे युक्त हो। उसके मध्यभागमें लक्ष्मीसहित विष्णुभगवान्की भी मूर्ति होनी चाहिये। उसके ध्वजपर गरुड तथा जुआके

अग्रभागपर विनायकको स्थापित करना चाहिये। वह नाना प्रकारके फलोंसे युक्त हो और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। वह पँचरंगे रेशमी वस्त्र, विकसित पुष्पोंसे सुशोभित हो।

नरोत्तम ! अपनी शक्तिके अनुसार उस रथको पाँच पलसे ऊपर सौ पल सोनेतकका बनवाना चाहिये। इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा माङ्गलिक शब्दोंके उच्चारणके साथ स्नान कराया गया यजमान देवताओं और पितरोंकी अभ्यर्चना करे। अञ्जलिमें फूल लेकर तीन बार रथकी प्रदक्षिणा करे तथा सम्पूर्ण सुखोंको प्रदान करनेवाले इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

नमो नमः शङ्करपदाजार्क-
लोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञै-
स्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात्॥
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारे-
रानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तवन्तम् ।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ
पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढः ॥
यस्मात् त्वमेव भवसागरसम्प्लुताण्ड-
मानन्दभारमृतमध्वरपानपात्रम् ।

तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं
चामीकरेभरथ माधव सम्प्रदानात्॥
(उत्तरपर्व १८९। ९—११)

‘तेजोमय स्यन्दन ! शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर, वासुदेव, वेद, पुराण और यज्ञ तुम्हारी सेवा करते हैं, अतः तुम मेरी रक्षा करो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। रथाधिरूढ स्वामिन् ! जो पद परम गुह्यतम, सनातन, आनन्दका हेतु और गुण एवं रूपसे परे है तथा एकमात्र योगरूप मानसिक दृष्टिवाले मुनिगण जिसका समाधिकालमें दर्शन करते हैं, वह आप ही हैं। माधव ! चौंक आप ही भवसागरमें ढूबनेवालोंके लिये आनन्दके पात्र, सत्यस्वरूप तथा यज्ञोंमें पानपात्र हैं, इसलिये आप इस सुवर्णमय हस्तिरथके दानसे मेरे पापपुञ्जोंको नष्टकर मुझपर कृपा कीजिये।’

जो मनुष्य इस प्रकार प्रणाम करके स्वर्णमय हस्तिरथ-दान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और विद्याधर, देवगण एवं मुनीन्द्रगणोंद्वारा सेवित इन्द्रियातीत भगवान् शिवके लोकको प्राप्त करता है तथा अपने बन्धुओं, पितरों, पुत्रों एवं सम्पूर्ण बान्धवोंको विष्णुभगवान्के शाश्वत लोकमें ले जाता है। (अध्याय १८९)

विश्वचक्रदान-विधि

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब इसके बाद मैं सभी पापोंके नाशक एवं अत्यन्त श्रेष्ठ विश्वचक्रदानकी विधि बतला रहा हूँ। इसे प्रतस सुवर्णके द्वारा निर्मित कराना चाहिये। शक्तिके अनुसार चाँदी तथा ताँबेका भी बनाया जा सकता है। यह विश्वचक्र एक सहस्र पल सुवर्णका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई

सौ पलका कनिष्ठ कहा गया है। अल्प वित्तवाला मनुष्य बीस पलसे ऊपरका बना हुआ विश्वचक्र दान कर सकता है। यह चक्र सोलह अरों तथा आठ नेमियोंसे युक्त घूमता हुआ होना चाहिये। उसके नाभिकमलपर योगारूढ चतुर्भुज भगवान् विष्णुको स्थापित करना चाहिये। उनके बगलमें शङ्क और चक्र हों तथा आठ देवियाँ उन्हें चारों

ओरसे घेरे हुए हों। उसके दूसरे आवरणमें उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किको, तीसरे आवरणमें मनुओं तथा वसुओंसहित गौरीको, चौथे आवरणमें बारहों आदित्यों तथा चारों वेदोंको, पाँचवें आवरणमें पाँचों महाभूतों तथा ग्यारहों रुद्रोंको, छठे आवरणमें आठों लोकपालों तथा दिग्गजोंको, सातवें आवरणमें सभी प्रकारके माङ्गलिक अस्त्रोंको तथा आठवें आवरणमें थोड़े-थोड़े अन्तरपर देवताओंको स्थापित करे। दस हाथका एक मण्डप बनाकर उसे वस्त्र, पताका, तोरण आदिसे अलंकृत करे। मण्डपमें हवनके लिये कुण्डका निर्माण करे। चार हाथकी एक वेदी बनाकर उसके ऊपर कृष्णमृगचर्मपर रखे गये तिलके ऊपर विश्वचक्रको स्थापित करना चाहिये।

फिर अठारह प्रकारके अन्न, लवण आदि सभी रस, जलसे भेरे हुए आठ माङ्गलिक कलश, विविध प्रकारके वस्त्र, पुष्पमाला, फल, रत्न तथा पाँचरंगा वितान —इन सबको भी यथास्थान रखना चाहिये। इसके बाद अधिवासन फिर हवन करे। हवनमें चार चारणिक श्रेष्ठ ब्राह्मण हों। विश्वचक्रमें जिन देवताओंकी प्रतिष्ठा-पूजा की गयी हो, उनके लिये हवन करना चाहिये। इससे सम्पूर्ण उपद्रवोंकी शान्ति होती है। तदनन्तर माङ्गलिक शब्दोंके साथ गृहस्थ यजमान स्नान करके श्वेत वस्त्र धारणकर हवन एवं अधिवासनके उपरान्त अञ्जलिमें पुष्प ग्रहणकर तीन बार प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो विश्वभरायेति विश्वचक्रात्मने नमः।

परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात्॥

तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति सूरयः।
हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्॥
वासुदेवे स्थितं चक्रं तस्य मध्ये तु माधवः।
अन्योन्याधाररूपेण प्रणामामि स्थिताविह॥
विश्वचक्रमिदं यस्मात् सर्वपापहरं हरेः।
आयुधं चाधिवासश्च तस्माच्छान्तिं ददातु मे॥

(उत्तरपर्व १९०। १८—२१)

‘विश्वम्भरको नमस्कार है। विश्वचक्रात्माको प्रणाम है। आप परमानन्दस्वरूप हैं, अतः पापरूप कीचड़से हमारी रक्षा कीजिये। चूँकि इस तत्त्व-स्वरूप, गुणातीत, तेजोमय विश्वचक्रको विद्वान् लोग सदा अपने हृदयमें देखते हैं, अतः मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यह विश्वचक्र वासुदेवमें स्थित है और माधव इस चक्रके मध्यभागमें स्थित हैं, इस प्रकार आप दोनों अन्योन्याधाररूपसे स्थित हों, आपको मैं प्रणाम करता हूँ। चूँकि भगवान् विष्णुका यह विश्वचक्र सम्पूर्ण पातकोंका विनाश करनेवाला, भगवान्‌का आयुध तथा उनका निवासस्वरूप भी है, अतः यह मुझे शान्ति प्रदान करे।’

इस प्रकार आमन्त्रित करके जो मनुष्य मत्सररहित हो इस विश्वचक्रका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें पूजित होता है तथा वैकुण्ठलोकको प्राप्तकर चार भुजाओंसे युक्त और अविनाशी हो जाता है एवं अप्सराओंके समूहद्वारा सेवित होकर तीन सौ कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। जो व्यक्ति इस विश्वचक्रका निर्माणकर इसे प्रतिदिन प्रणाम करता है, उसकी आयु बढ़ती है और नित्य लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरोंसे युक्त तथा समस्त जगत् एवं देवताओंके अधिष्ठानरूप इस चक्रका

दान करता है, वह विष्णु-भवनको प्राप्त होता है तथा उसे सिद्धगण सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं। वह पुरुष निष्पाप होकर शुभदर्शन

केशवकी भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है और बारंबार जन्म-मरणके भयसे भी छूट जाता है। (अध्याय १९०)

भुवनप्रतिष्ठाका माहात्म्य, धर्मात्मा रजिकी कथा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—मधुसूदन! अब आप कोई ऐसा उपाय बतलायें, जिससे इस लोकमें शाश्वती प्रतिष्ठा, महनीय कीर्ति, अक्षय संतति, प्रचुर सम्पत्ति तथा परलोकमें पितरोंको सद्गति प्राप्त हो।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! आपने संसारके उपकारके लिये ही इस बातको पूछा है। अब मैं परम रहस्यमय भुवनप्रतिष्ठाकी विधिको संक्षेपमें बता रहा हूँ। भुवनप्रतिष्ठाके दानसे देवता, गन्धर्व, असुर, नाग, किन्नर, यक्ष, राक्षस, प्रेत, पिशाच, भूत आदि सभीकी प्रतिष्ठा हो जाती है। ब्रतीको चाहिये कि सर्वप्रथम उत्तम मुहूर्त देखकर सात हाथ लम्बे-चौड़े मजबूत शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ श्वेत वस्त्र लेकर उसपर चित्रकर्ममें निपुण चित्रकारसे चौदहों भुवनोंका चित्र बनवाये। कुशल चित्रकारको बुलाकर वस्त्र, आभूषण तथा पुष्प आदिसे उसकी पूजाकर उसे चित्रकर्ममें नियुक्त करना चाहिये। उस समय आचार्यसहित ब्राह्मणोंका भी वस्त्रादिसे पूजन करना चाहिये। ब्राह्मण वेदध्वनिके साथ पुण्याहवाचन करें। शङ्ख-भेरीसे मङ्गल शब्द करते हुए चित्रकर्म आरम्भ कर पुराणोंमें कही हुई विधिके अनुसार भुवनोंको चित्रित कराना चाहिये। वस्त्रके मध्यमें सर्वप्रथम जम्बूद्वीप, उसके मध्यमें मेरुपर्वत और उसके ऊपर देवताओंकी स्थापना करे एवं आठ दिशाओंमें आठ दिक्पालोंकी पुरियाँ तथा देवताओंके साथ सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी बनवाये। वह पृथ्वी सात कुलाचलों, सात समुद्रों, नदी, नद, सरोवर,

सात पातालों, भूर्भुवः आदि सात लोकोंसे समन्वित हो। उसपर ब्रह्मादि देवताओंके लोक, ध्रुवमार्ग, ग्रह और तारागणोंसे युक्त सूर्यदेव, दानव, यक्ष, राक्षस, ऋषि, मुनि, गौ, देवमाता अदिति, सुपर्ण आदि पक्षी, नाग और ऐरावत आदि आठ दिग्गज भी अङ्कित करे। इस प्रकार वस्त्रके ऊपर सम्पूर्ण भुवनकी रचना करवाये। उस कल्पित भुवनमें पृथ्वी, तेज, वायु आदि पञ्चतत्त्वों, अहंकार, मन, बुद्धि तथा सत्त्वादि तीन गुणों, प्रकृति तथा पुरुषको भी सर्वत्र व्याप्त समझकर यथाविधि अङ्कित करवाना चाहिये।

कार्तिक-पूर्णिमा, अयन-संक्रान्ति, विषुवयोग तथा ग्रहणमें इसकी पूजा करनी चाहिये। एक सुन्दर मण्डप बनाकर उसके बीच चित्रपट स्थापित करना चाहिये। एक हाथ लम्बा-चौड़ा चौरस चार कुण्ड बनाकर प्रत्येक कुण्डपर दो-दो वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंका हवनके लिये वरण करना चाहिये। ब्राह्मण वस्त्रादि आभूषणसे अलंकृत होकर हवन करें। हवन चित्रपटमें अङ्कित देवताओंके नाम-मन्त्रोंसे करना चाहिये। यजमान भी वस्त्रादिसे अलंकृत होकर आचार्यके साथ चित्रपटस्थ देवताओंका गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यादिसे पूजनकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करे—

ब्रह्माण्डोदरवर्तीनि भुवनानि चतुर्दश।
तानि संनिहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा।
पूजिताः सुप्रतिष्ठाश्च भवन्तु सततं मम॥
(उत्तरपर्व १९१ ३०-३१)

‘ब्रह्माण्डमें स्थित चौदहों भुवन इस चित्रपटमें अधिष्ठित हों, वे मेरे द्वारा पूजित हों। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आदित्य तथा वसु देवताओं! मेरे द्वारा पूजित होनेपर आप सब इसमें प्रतिष्ठित हो जायें।’

इस प्रकार भुवनमय उस चित्रपटकी प्रदक्षिणा करे और अनेक प्रकारकी भोजन-सामग्री तथा मिष्टान्न आदिका नैवेद्य लगाये। रात्रिको जागरण कर विविध प्रकारके वाद्य-यन्त्रोंको बजाते हुए वेदध्वनि करनी चाहिये। गीत-नृत्यके द्वारा उत्सव मनाना चाहिये।

प्रातःकाल होते ही स्नानकर वस्त्र-आभूषण धारण कर पहलेकी भाँति ही चित्रपटकी पूजाकर एक सौ गोएँ अथवा दो गायें तथा उपानह, छाता एवं घरकी उपयोगी सामग्री भी ऋत्विजोंको दान करे। फिर सुन्दर रथ लाकर उसे पताका, ध्वज, तोरण आदिसे अलंकृत कर उसमें दो हाथी अथवा घोड़े खींचनेके लिये जोते। तदनन्तर रथपर भुवनमय चित्रपटको स्थापितकर ब्राह्मणके साथ ले जाकर देवमन्दिरमें स्थापित कर उसका पूजन करना चाहिये। वहाँ महोत्सव मनाना चाहिये। उत्तम चाँदीका छत्र, घण्टा, ध्वज, चामर आदि चढ़ाकर गुरु और ब्राह्मणोंको यथाशक्ति दक्षिणा देकर दीन, अन्ध, बधिर, कृपण आदिको भोजन कराये। अपने मित्र, बन्धु तथा स्वजनोंको भी भोजन कराना चाहिये।

इस विधिसे जो पुरुष अथवा स्त्री भुवनकी देवालय आदिमें प्रतिष्ठा करता है, वह मानो चराचर त्रैलोक्यकी स्थापना कर लेता है और उससे वह अपने कुलका भी उद्धार कर लेता है। जितने समयतक देवालयमें चित्रपट स्थापित रहता है और पूजित होता है, उतने समयतक त्रैलोक्यमें

उसकी अक्षय कीर्ति फैलती रहती है और जितने समयतक लोकमें कीर्ति रहती है, उतने हजार वर्षतक वह व्यक्ति स्वर्गमें निवास करता है। गन्धर्व और अप्सराएँ उसकी सेवामें निरत रहते हैं। वह बहुत समयतक स्वर्गका सुख भोगकर पुण्यक्षय होनेपर इस भूमिपर जन्म लेकर धर्मात्मा, दीर्घायु, ऐश्वर्यवान्, प्रतापी और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त होकर दस जन्मोंतक राजा होता है।

राजन्! इस विषयमें एक आख्यान प्रसिद्ध है। सुना जाता है कि प्राचीन कालमें रजि नामका जितेन्द्रिय चक्रवर्ती एक राजा हुआ था। उसने समस्त पृथ्वीके राज्यको जीत लिया और दैत्योंको युद्धमें हराकर स्वर्गको एवं उनके आधिपत्यको इन्द्रके हाथमें समर्पित कर दिया। किसी समय उसकी राजसभामें ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि पुलस्त्य अपने शिष्योंके साथ पधारे। राजा रजिने पुलस्त्यजीका बड़ा आदर-सत्कार किया और पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदिसे पूजनकर उन्हें आसन प्रदान किया। कुशल-क्षेमके पश्चात् राजाने पुलस्त्यजीसे पूछा—‘ऋषिवर! मैंने कौन-सा व्रत, दान अथवा तप किया है, जिसके प्रभावसे मुझे धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादिसे समन्वित यह निष्कण्टक राज्य प्राप्त हुआ है।’ पुलस्त्यमुनिने कहा—‘राजन्! इससे सात जन्मपूर्व तुम वाराणसीमें धन-धान्यसम्पन्न धर्मात्मा और सत्यवादी एक वैश्य थे। तुमने अनेक पुराणोंकी कथाएँ सुनीं तथा अनेक प्रकारके दान तो दिये ही भुवनकी प्रतिष्ठा भी की थी। उसी प्रतिष्ठाके प्रभावसे तुम सात जन्मसे राजाका पद प्राप्त कर रहे हो और तुम्हारी कीर्ति संसारमें फैली हुई है। अगले सात जन्ममें भी राजाका पद प्राप्त करोगे और अन्तमें तुम्हें मुक्ति मिल जायगी।

जो तुमने पूछा, वह मैंने बता दिया। जो स्त्री अथवा पुरुष भुवनप्रतिष्ठा करते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं।' इस प्रकार कहकर महातेजस्वी पुलस्त्यजी अपने धामको चले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! इस भुवनप्रतिष्ठासे धर्मकी वृद्धि, अभीष्टकी सिद्धि, पापका क्षय और सभी कार्योंकी सिद्धि हो जाती है। (अध्याय १९१)

नक्षत्रदान (नक्षत्रोंमें दानके पदार्थ)

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मैंने आपकी कृपासे सभी दान-विधियाँ सुनीं। इस समय आप नक्षत्रोंमें देय दानोंका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज! किसी समय देवर्षि नारद द्वारका आये। उनसे मेरी माता देवकीने नक्षत्रदान-विधि पूछी। उस समय नारदजीने जो उन्हें बतलाया, मैं वही कह रहा हूँ। इससे सब पातक दूर हो जाते हैं।

महाभाग! कृतिका नक्षत्रमें घी और खीरसे युक्त भोजन देकर साधुजनों और ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे उत्तम लोककी प्राप्ति होती है। रोहिणी नक्षत्रमें घृतमिश्रित अन्नका ब्राह्मणों तथा साधु-संतोंको भोजन करनेसे श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति होती है। मृगशिरा नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको दूधका दान करनेसे किसी प्रकारका ऋण नहीं रहता और सवत्सा पर्यस्तिनी गौ ब्राह्मणको दान करनेवाला विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है। आद्रा नक्षत्रमें तिलमिश्रित कृशर (खिचड़ी)-का दान करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके संकटोंसे मुक्त हो जाता है। पुनर्वसु नक्षत्रमें घृतपक्व अपूप (मालपूआ) ब्राह्मणको देनेवाला उत्तम कुलमें जन्म लेकर यश, धन और रूप प्राप्त करता है। पुष्य नक्षत्रमें सुवर्णका दान करनेसे दाता पापरहित होकर इस लोक तथा परलोकमें चन्द्रमाकी तरह सुशोभित होता है। आश्लेषा नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको चाँदीका दान करे तो निर्भय और शास्त्रको जानेवाला विद्वान् होता है।

मध्य नक्षत्रमें तिलसे भरे हुए घड़ोंका दान करनेसे पुत्र, पशु तथा धनकी प्राप्ति होती है। पूर्वाफाल्युनी नक्षत्रमें ब्राह्मणको घोड़ीका दान देनेसे पुण्यलोकमें निवास मिलता है। उत्तराफाल्युनी नक्षत्रमें सुवर्ण-कमल देनेसे सभी बाधाएँ दूर हो जाती हैं और सूर्यलोककी प्राप्ति होती है।

हस्त नक्षत्रमें सुवर्णका हाथी बनाकर ब्राह्मणको दान देनेसे दिव्य हस्तीपर आरूढ होकर इन्द्रलोकमें जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है। चित्रा नक्षत्रमें वृषभका दान करनेसे उत्तम पुण्य प्राप्त होता है और अप्सराओंके नन्दनवनमें विहार करनेका अवसर प्राप्त होता है। स्वाती नक्षत्रमें जो पदार्थ स्वयंका प्रिय हों, उनका दान करनेसे बहुत यश मिलता है और अन्तमें सदृति मिलती है। विशाखा नक्षत्रमें धान्य एवं वस्त्रसहित सुदृढ़ बैलगाड़ीका दान करनेसे पितृगणोंको प्रसन्नता होती है, संसारमें कोई कष्ट नहीं होता और दान देनेवाला सभी प्रकारके पापोंसे छूटकर उत्तम गति प्राप्त करता है। अनुराधा नक्षत्रमें यथाशक्ति कम्बल और ओढ़ने तथा पहिनेवाले उत्तरीय वस्त्र आदि ब्राह्मणको दान देनेसे दिव्य सौ वर्षसे भी अधिक समयतक स्वर्गमें देवताओंके समीप निवास करनेका अवसर प्राप्त होता है।

ज्येष्ठा नक्षत्रमें विविध प्रकारके कालशाक (करेमू) तथा मूली आदि शाक ब्राह्मणोंको देनेसे अभीष्ट गति प्राप्त होती है। मूल नक्षत्रमें ब्राह्मणोंको

कन्द, मूल, फल आदि देनेसे पितर संतुष्ट हो जाते हैं और उसे उत्तम गति मिलती है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें कुलीन और वेदवेत्ता ब्राह्मणको दधिपात्र देनेसे पुत्र, पौत्र, धन, धान्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है तथा उत्तम कुलमें जन्म होता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें उदमंथ (जौकी माडी), घी, मधु और फाणित (राब) ब्राह्मणको देनेसे सभी कामनाओंकी प्राप्ति होती है। अभिजित् नक्षत्रमें घी, मधु तथा दुग्ध देनेसे स्वर्गमें निवास होता है।

श्रावण नक्षत्रमें पुस्तक-दान करनेसे विमानमें बैठकर इच्छानुसार सभी लोकोंमें विचरण करनेका अवसर प्राप्त होता है। धनिष्ठा नक्षत्रमें दो गायोंका दान करनेसे अनेक जन्मोंतक सुखकी प्राप्ति होती है। शतभिषा नक्षत्रमें अगरु और चन्दनका जो व्यक्ति दान करता है वह सुन्दर अप्सराओंके लोकमें जाता है। पूर्वभाद्रपद नक्षत्रमें राजमाष (बड़े उड़द)-का दान देनेसे सभी प्रकारके भक्ष्य-भोज्य प्राप्त होते हैं और जन्मान्तरमें सुखकी प्राप्ति होती है। उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें

सुन्दर वस्त्रोंका दान करनेसे पितर संतुष्ट होते हैं और उसे सद्गति प्राप्त होती है।

रेवती नक्षत्रमें कांस्यके दोहन-पात्रसहित ब्राह्मणको गोदान करनेसे सभी मनोरथोंकी सिद्धि होती है और जन्मान्तरमें सद्गति प्राप्त होती है। अश्विनी नक्षत्रमें उत्तम अश्वोंसे युक्त रथ ब्राह्मणको दान देनेसे राजवैभव-सम्पत्ति कुटुम्बमें जन्म होता है और इस दानको करनेवाला व्यक्ति तेजस्वी होता है। भरणी नक्षत्रमें ब्राह्मणको तिलधेनुका दान करनेसे उसे उत्तम गौएँ तथा यश और सद्गतिकी प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—महाराज ! नारदजीने इस नक्षत्रकल्पको माता देवकीसे कहा था। यह नक्षत्र-दानकी विधि मैंने आपको सुनायी। इस दानके करनेसे सभी तरहके पाप दूर हो जाते हैं और सभी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। इस दानमें किसी समय, दिन और कालका कोई विशेष नियम नहीं है, बल्कि इसमें श्रद्धा और विश्वास ही मुख्य है। (अध्याय १९२)

तिथिदान (तिथियोंमें दानके पदार्थ)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सभी पापोंका विनाश करनेवाले और विश्वोंको हरनेवाले तिथिदान (तिथियोंमें दिये जानेवाले दान-पदार्थों) -का विधान बता रहा हूँ। इस दानके करनेसे कायिक, वाचिक और मानसिक पाप उसी क्षण कट जाते हैं। श्रावण, कार्तिक, चैत्र, वैशाख अथवा फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा तिथिसे यह पुण्यवर्धक दान प्रारम्भ करना चाहिये। धन, श्रद्धा, सहयोगी और सत्पात्र—ये सब मिल जायें तो वही उत्तम दानका समय है। तीर्थ, देवालय, गोष्ठ अथवा घरमें ही श्रद्धापूर्वक दान देनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है।

प्रतिपदाके दिन एक सुवर्णमय अष्टदल कमल बनाकर उसपर सुवर्णमय ब्रह्माकी स्थापना करे। इस कमलको सुगन्धित घृतसे पूर्ण औदुम्बरके पात्रमें रखकर पुष्प, धूप आदिसे ब्रह्माकी पूजा करे और ब्राह्मणकी पूजा कर उसे वह प्रतिमा दानमें दे दे। दाता इससे अभीष्ट कामनाओंको प्राप्त करता है और निष्कामभावसे यह दान करनेपर तो ब्रह्मीभूत हो जाता है। द्वितीयाके दिन सुवर्णकी अग्निकी प्रतिमा बनाये, उसे गुड़ तथा घृतसे पूरित ताम्रपात्रमें रखे और उस पात्रको जलपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित करे, फिर व्याहतियोंसे घृत और तिलोंसे एक सौ आहुति

देकर पूर्णाहुति प्रदान करे। वस्त्र-माला, अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्यसे उस मूर्तिका पूजनकर ब्राह्मणको दे दे और 'वहिर्में प्रीयताम्' यह वाक्य उच्चारण करे। इससे जन्मभर किये गये पापोंसे मुक्त होकर वह वहिलोकमें निवास करता है— ऐसा नारदमुनिने कहा है। तृतीयाके दिन सुवर्णकी राधादेवीकी मूर्ति बनाकर उसे ताम्रपात्रमें लवणके ऊपर स्थापित करे और दो रक्त वस्त्रोंसे उसे आच्छादित कर कुंकुमसे अलंकृत कर दे। जीरा, कटुक, गुड़ भी उसके पास रखे। गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदिसे उसका पूजन कर ब्राह्मणको प्रदान कर दे। इससे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है। जहाँ सुवर्णप्रासाद हों, दूधकी नदियाँ बहती हों और गन्धर्व-अप्सराएँ जहाँ निवास करते हों, उन लोकोंमें वह पुरुष बहुत काल सुख भोगकर पुनः मर्त्यलोकमें जन्म लेता है और रूपवान् भाग्यशाली, दाता, भोगी, धनाढ़ी और पुत्र-पौत्रसे युक्त होता है तथा यदि स्त्री भी इस दानको करती है तो वह भी इन्हीं फलोंको प्राप्त करती है।

चतुर्थीके दिन सुवर्णके एक पलसे अधिक प्रमाणके अंकुशयुक्त हाथीकी प्रतिमा बनाकर एक द्रोण तिलोंके ऊपर उसे स्थापित करे और वस्त्र, पुष्प, नैवेद्य आदिसे उसका पूजनकर ब्राह्मणोंको प्रदान करे तथा 'गणेशो मे प्रीयताम्' यह वाक्य कहे। जो पुरुष यह दान करता है उसके किसी भी कार्यमें विघ्न नहीं होता और सात जन्मतक वह महान् हस्तियोंका स्वामी होता है तथा गजेन्द्रपर चढ़कर सब लोकोंको जीत लेता है। पञ्चमीके दिन एक पल सुवर्णका नाग बनाकर घृत-दुग्धसे पूर्ण एक पात्रमें उसे स्थापित कर विधिपूर्वक उसका पूजन करे। पूजनके अनन्तर उसे ब्राह्मणको देकर प्रणामकर क्षमापन करे। यह दान नागोंके

उपद्रवको दूर करता है और दाताको दोनों लोकमें सुख प्राप्त होता है। सर्पके काटनेसे मरे हुए पुरुषके उद्धारके लिये शिवजीने इसे प्रायश्चित्त कहा है। षष्ठीके दिन मयूरपर आरूढ़ तथा हाथमें शक्ति लिये और सुवर्णकी माला पहने कार्तिकेयकी एक सुवर्णकी प्रतिमा बनाये। उसे एक द्रोण चावलके ऊपर स्थापित कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि सभी उपचारोंसे उसका पूजन करे और कुटुम्बी ब्राह्मणको प्रदान करे। इस दानको करनेवाला पुरुष बहुत ऐश्वर्य प्राप्तकर अन्तमें स्वर्गको जाता है और यदि शूद्र इस दानको करे तो जन्मान्तरमें ब्राह्मण होता है। यदि ब्राह्मण ऐसा करता है तो ब्रह्मत्वको प्राप्त करता है। सप्तमीको सुवर्णकी अश्वयुक्त सूर्य-प्रतिमा बनाकर सब उपचारोंसे उसका पूजनकर दक्षिणासहित ब्राह्मणको दे दे। इससे गन्धर्व संतुष्ट होते हैं और वह पुरुष सूर्यलोकको प्राप्त करता है।

अष्टमीके दिन एक सर्वलक्षणसम्पन्न वृषभको दो श्वेत वस्त्र ओढ़ाकर उसके गलेमें घण्टा बाँधकर उसका पूजन करे और 'वृषभध्वजो मे प्रीयताम्' यह वाक्य उच्चारण कर ब्राह्मणको प्रदान करे। उसकी प्रदक्षिणा करे तथा ब्राह्मणके द्वारदेशतक उसके साथ जाय। इससे उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। वृषके स्कन्ध-प्रदेशमें चौदह भुवन प्रतिष्ठित रहते हैं। इसलिये वृषदान करनेसे चौदह भुवनोंके दान करनेका फल प्राप्त होता है। नवमीके दिन सुवर्णका एक सिंह बनाकर नीले वस्त्रसे उसे आच्छादित करे और उसे आठ मोतियोंसे जटित करे। दैत्योंका विनाश करनेवाली देवी भगवतीका ध्यानकर उस प्रतिमाको उत्तम ब्राह्मणको दान कर दे। इसके प्रभावसे सब प्रकारके उत्तम फल प्राप्त होते हैं और भयंकर वनोंमें तथा दुर्गोंमें एवं चोरों तथा सर्पादि हिंसक

जीवोंका उसको भय नहीं होता। कोई भी हिंसक प्राणी उसकी हिंसा नहीं कर पाता और अन्त समयमें देवताओंसे पूजित हो वह देवीलोकको प्राप्त करता है। वहाँ बहुत कालतक सुख भोगकर पुण्यक्षीण होनेपर मर्त्यलोकमें जन्म लेकर धर्मात्मा राजा होता है। दशमीको दस दिशा-देवियोंकी सोनेकी प्रतिमा बनाकर और दस पात्रोंमें नमक, गुड़, दूध, निष्ठाव, तिल, दही, धी, गोमय, चावल तथा उड़द भरकर इनके ऊपर एक-एक देवीकी स्थापना करे। वस्त्र-पुष्प आदिसे उनकी पूजाकर ब्राह्मणको दान कर दे। इस दानसे दानकर्ताके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं और मृत्युके अनन्तर वह स्वर्गमें पूजित होता है। बहुत कालतक स्वर्गका सुख भोगकर पृथ्वीमें उत्तम कुलमें जन्म प्राप्त करता है। एकादशीके दिन सुवर्णकी भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाये। उसे घृतपूर्ण ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित कर सभी उपचारोंसे उसका पूजन करे। पूजनके अनन्तर पञ्चांगिन तापनेवाले तथा पौराणिक ब्राह्मणको इसे देना चाहिये। इससे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

द्वादशीके दिन गौ, वृष, सुवर्ण, सप्तधान्य, गुड़, फल, घृत और अनेक प्रकारके रस तथा फलवाले वृक्ष, फूल तथा सुगन्धित पदार्थ आदिको यथाशक्ति एकत्र कर सबको नवीन वस्त्रसे आच्छादित कर सत्पात्र ब्राह्मणोंको दान करे अथवा एक ही ब्राह्मणको प्रदान करे। इससे दाता बहुत कीर्ति और ऐश्वर्य प्राप्तकर अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। वहाँ बहुत कालतक निवास कर पुण्यक्षय होनेपर पृथ्वीपर जन्म लेकर यज्ञ करनेवाला दानी और प्रतापी राजा होकर शतायु होता है। त्रयोदशीके दिन तेरह सत्पात्र ब्राह्मणोंको

स्नान कराये, उत्तम वस्त्र पहिनाये, गन्ध, पुष्प आदिसे अलंकृत कर उनकी अर्चना करे तथा उत्तम भोजन कराये और दक्षिणामें सुवर्ण देकर 'धर्मो मे प्रीयताम्' ऐसा कहे और श्रद्धापूर्वक धर्मराजके इन तेरह नामों—धर्मराज, काल, चित्रगुप्त, दण्डी, मृत्यु, क्षयरूप, अन्तक, यम, प्रेतनाथ, रौद्र, वैवस्वत, महिषस्थ तथा देवका उच्चारणकर नमस्कार करे और विसर्जन करे। इस विधिसे जो पुरुष यमराजका अर्चन करता है, वह सभी रोगोंसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है और यममार्गमें कष्ट नहीं पाता। पितॄलोकमें बहुत कालतक निवासकर वह मर्त्यलोकमें जन्म लेकर सुखी और पुत्रवान् होता है।

चतुर्दशीके दिन उत्तम सुन्दर सोनेकी महिषकी प्रतिमा बनाकर उसे जलपूर्ण कलशपर स्थापित कर वस्त्रसे ढककर वस्त्र तथा अलंकारोंसे सुशोभित करे। उसके साथ वृषभ भी रखे। इस प्रकार निर्माणकर उसे कुदुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इससे शिवलोककी प्राप्ति होती है, वहाँ बहुत कालतक सुख भोगकर आरोग्य, धन और उत्तम कुलमें जन्म पाता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। पूर्णिमाके दिन वृषोत्सर्ग करना चाहिये। चाँदीकी एक चन्द्रमाकी प्रतिमा बनाकर गन्ध, पुष्प, नैवेद्य आदिसे उसका पूजनकर वस्त्र तथा आभूषणसहित ब्राह्मणको प्रदान करे। यह दान करनेवाला चन्द्रमाके समान कान्तिमान् होता है और अप्सराओंसे पूजित होता है। जो पुरुष इस क्रमसे प्रतिपदा आदि तिथियोंमें ब्राह्मणोंको दान करता है, वह ब्रह्मलोक, विष्णुलोक आदिमें बहुत कालतक निवासकर अन्तमें शिव-सायुज्यको प्राप्त करता है। (अध्याय १९३)

वराहदानका विधान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज ! अब मैं सभी पापोंको हरनेवाले पवित्र और सब दानोंमें उत्तमादि उस वराहदानका विधान बता रहा हूँ, जिसके दानका विधान साक्षात् भगवान् ने अपने मुखसे धरणीदेवीको बताया था। यह दान संक्रान्ति, ग्रहण, द्वादशी, यज्ञोत्सव, विवाह, दुःस्वप्र-दर्शन आदि कालोंमें अथवा जब श्रद्धा हो तब करना चाहिये। कुरुक्षेत्र आदि तीर्थों, गङ्गा आदि नदियोंके किनारे, पवित्र पुरियों, अरण्यों, बनों, गोष्ठ, देवालय अथवा अपने घरपर ही कुटुम्बी ब्राह्मणको विधिपूर्वक दान देना चाहिये। वह ब्राह्मण वेद-वेदाङ्ग जाननेवाला सुशील और सम्पूर्णाङ्ग होना चाहिये।

पवित्र भूमिपर प्रणव-मन्त्रसे कुशा बिछाकर उसपर यथाशक्ति दो अथवा चार द्रोण तिलोंसे भगवान् वराहकी मूर्ति बनाये। उसका मुख सुवर्णका और चाँदीका जबड़ा बनाकर पद्मरागसे उसे अलंकृत कर दे। दो भुजाओंमें चक्र और गदा धारण कराये, सुवर्णका बना शङ्ख तथा

वनमाला अगल-बगलमें रख दे। उसके दोनों पैरोंको पुष्पोंसे अथवा चाँदीसे निर्मित करे। उसके दाँतके अग्रभागपर लगी हुई एक सुवर्णमयी पृथक्षी अङ्कित करे। समस्त धान्य-पदार्थों और रसोंको स्थापित करे। उसके शरीरको अलंकृत कर वस्त्रसे आच्छादित कर दे। कुशोंसे रोएँ बना दे। तदनन्तर गन्ध, पुष्प आदिसे उस वराहभगवान् की प्रतिमाकी अर्चना करे। फिर ग्रहयज्ञ और तिलोंसे होम करे। अनन्तर भगवान् वराहकी स्तुतिकर नमस्कार करे तथा प्रदक्षिणा कर वस्त्र, आभूषण और दक्षिणासहित वह प्रतिमा ब्राह्मणको दे दे। राजन् ! इस दानसे सभी यज्ञों और सभी दानोंका फल प्राप्त हो जाता है। वराहभगवान् ने जिस प्रकार भूमिका उद्धार किया, उसी भाँति इस दानको करनेवाला पुरुष अपने कुलका उद्धार करता है और विष्णुलोकमें पूजित होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, शैव, वैष्णव, योगी आदि सभी यह दान कर सकते हैं।

(अध्याय १९४)

दशविधि पर्वतदानोंमें धान्यशैलदानकी विधि और महिमा

महाराज युधिष्ठिरने कहा—भगवन् ! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको सुनना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! प्राचीन कालमें इस विषयको भगवान् रुद्रने देवर्षि नारदसे और मत्स्यभगवान् ने स्वायम्भुव मनुसे कहा था। उस मेरु (पर्वत)-दानके दस भेदोंको मैं बतला रहा हूँ, जिनका दान करनेसे मनुष्य देवपूजित लोकोंको प्राप्त करता है। उसे इस लोकमें जिस फलकी

प्राप्ति होती है, वह वेदों और पुराणोंके अध्ययनसे, यज्ञानुष्ठानसे और देव-मन्दिर आदिके निर्माणसे भी नहीं प्राप्त होता। इसलिये अब मैं पर्वतोंके क्रमसे उनके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। उनके नाम इस प्रकार हैं—पहला धान्यशैल, दूसरा लवणाचल, तीसरा गुडाचल, चौथा हेमपर्वत, पाँचवाँ तिलशैल, छठा कार्पासपर्वत, सातवाँ घृतशैल, आठवाँ रत्नशैल, नवाँ रजतशैल और दसवाँ शर्कराचल। इनका विधान यथार्थरूपसे क्रमशः बतला रहा हूँ। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायनके समय, पुण्यमय,

विषुवयोगमें, व्यतीपातयोगमें, ग्रहणके समय, सूर्य अथवा चन्द्रमाके अदृश्य हो जानेपर, शुक्लपक्षकी तृतीया, द्वादशी या पूर्णिमा तिथिके दिन, विवाह, उत्सव और यज्ञके अवसरोंपर तथा पुण्यप्रद शुभ नक्षत्रके योगमें विद्वान् दाताको शास्त्रादेशानुसार विधिपूर्वक धान्यशैल आदि पर्वतदानोंको करना चाहिये। इसके लिये तीर्थोंमें, देवमन्दिरमें, गोशालामें अथवा किसी नदीके संगमपर भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ एक चौकोर मण्डपका निर्माण कराये, उसमें उत्तर और पूर्व दिशामें दो दरवाजे हों तथा उसकी भूमि पूर्वोत्तर दिशामें ढालू हो। उस मण्डपकी गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर कुश बिछाकर उसके बीचमें विष्कम्भपर्वतसहित* देय पदार्थकी पर्वताकार राशि लगा दे। इस विषयमें एक हजार द्रोण अन्नका पर्वत उत्तम, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और तीन सौ द्रोणका कनिष्ठ माना जाता है।

महान् धान्यराशिसे बने हुए मेरुपर्वतको, मध्यमें तीन स्वर्णमय वृक्षोंसे युक्त कर, पूर्व दिशामें मोती और हीरेसे, दक्षिण दिशामें गोमेद और पुष्पराग (पुखराज)-से, पश्चिम दिशामें गारुत्मत (पत्रा) और नीलम मणिसे, उत्तर दिशामें वैदूर्य और पद्मराग मणिसे तथा चारों ओर चन्दनके टुकड़ों और मूँगेसे सुशोभित कर दे। उसे लताओंसे परिवेष्टित तथा सीपीके शिला-खण्डोंसे सुसज्जित कर दिया जाय। पुनः यजमान गर्वरहित होकर अनेकों द्विजसमूहोंके साथ उस पर्वतके मूर्धास्थानपर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शंकर और सूर्यकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गत्रा और बाँससे ढकी हुई कन्दराएँ तथा धी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें काले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें

केसरिया वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोंसे बादलोंकी पंक्तियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पैंचरंगा चँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल (सुमेरुगिरि)-की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसके चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ (मर्यादा)-पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें मन्दराचलका आकार बनाये, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र (देवदारु) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित करे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दुग्धनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित करे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये।

दक्षिण दिशामें गेहूँकी राशिसे गन्धमादनकी रचना करनी चाहिये। उसे स्वर्णपत्रसे सुशोभित कर दे। उसपर यज्ञपतिकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर उसे वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर उसे धीके सरोवर और चाँदीके वनसे सुशोभित कर देना चाहिये। पश्चिम दिशामें अनेकों सुगन्धित पुष्पों, स्वर्णमय पीपल-वृक्ष और सुवर्णनिर्मित हंससे युक्त तिलाचलकी स्थापना करनी चाहिये। उसी प्रकार इसे भी वस्त्रसे परिवेष्टित तथा चाँदीके पुष्पवनसे सुशोभित कर दे। इसके अग्रभागमें दहीसे सितोद सरोवरकी भी रचना करे। इस प्रकार उस विपुल शैलकी स्थापना करके उत्तर

* सुमेरुगिरिके चारों ओर स्थित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श नामक पर्वतोंको 'विष्कम्भ—सहायक पर्वत' कहा जाता है।

दिशामें उड़दसे सुपार्श नामक पर्वतकी स्थापना करे। इसे भी सुन्दर वस्त्र और पुष्पोंसे सुसज्जित करे, इसके शिखरपर स्वर्णमय वट-वृक्ष रख दे तथा सुवर्णनिर्मित गौसे सुशोभित कर दे। उसी प्रकार मधुसे बने हुए भद्रसर नामक सरोवर और चमकीली चाँदीसे निर्मित वनसे संयुक्त कर देना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्व दिशामें एक हाथ लम्बा-चौड़ा और गहरा कुण्ड बनाकर तिल, धी, समिधा और कुशोंद्वारा चार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे हवन कराये। वे सभी ब्राह्मण वेदों और पुराणोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, अनिन्द्य, चरित्रवान् और सुरूप हों। रातमें मधुर शब्दोंमें गायन और तुरही आदि वाद्योंका वादन कराते हुए जागरण करना चाहिये। इन पर्वतोंका आवाहन इस प्रकार करे—

त्वं सर्वदेवगणधामनिधे च विष-

मस्मदगृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु।

क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुज्ञमां नः:

सम्पूजितः परमभक्तिमतः प्रदेहि॥

त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः।

मूर्तमूर्तिपरं बीजमतः पाहि सनातन॥

यस्मात् त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्।

केशवाकंवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥

यस्मादशून्यमरैर्गन्धवैश्च शिवेन च।

तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥

(उत्तरपर्व १९५। २८—३१)

‘अमरपर्वत! आप समस्त देवगणोंके निवासस्थान और रत्नोंकी निधि हैं। आप हमारे घरोंमें स्थित विष्णु-बाधाओंको शीघ्र ही नष्ट कर दें, हमारे कल्याणका विधान करें और हमें श्रेष्ठ शान्ति तथा परम भक्ति प्रदान करें। सनातन! आप ही ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शंकर और सूर्य हैं तथा मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार)—से परे संसारके बीज (कारणरूप) हैं, अतः

हमारी रक्षा करें। चौंकि आप लोकपालों, विश्वमूर्ति, केशव, सूर्य और वसुओंके निवासस्थान हैं, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करें। चौंकि आप देवताओं, गन्धर्वों और शिवजीसे अशून्य अर्थात् संयुक्त रहते हैं, इसलिये इस निखिल दुःखोंसे भरे हुए संसार-सागरसे मेरा उद्धार करें।’

इस विधिसे उस मेरुगिरिकी अर्चना करनेके पश्चात् मन्दराचलकी पूजा करनी चाहिये और इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—‘मन्दराचल! चौंकि आप चैत्ररथ वन और भद्राश्व वर्षसे सुशोभित हैं, इसलिये शीघ्र ही मेरे लिये तुष्टिकारक बनें।’ ‘गन्धमादन! चौंकि आप जम्बूद्वीपके शिरोमणि हैं, इसलिये गन्धर्वों और अप्सराओंके द्वारा मेरे यशका गान हो।’ ‘विपुल! चौंकि आप केतुमाल वर्ष और वैभ्राज वनसे सुशोभित हैं तथा आपका पाषाण स्वर्णमय है, इसलिये आप मुझे शक्ति प्रदान करें।’ ‘सुपार्श! चौंकि आप उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र वनसे नित्य शोभित हैं, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करें।’ इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले)-को दान कर दे। इसी प्रकार चारों विष्णुभपर्वतोंको चारों ऋत्विजोंको क्रमशः दान कर देना चाहिये। इसके बाद चौंतीस, दस, सात अथवा आठ गौका दान करनेका विधान है। यदि यजमान निर्धन हो तो वह एक ही दुधारू कपिला गौ गुरुको दान करे। सभी पर्वतदानोंकी यही विधि है। उनके पूजनमें ग्रहों, लोकपालों और ब्रह्मा आदि देवताओंके वे ही मन्त्र हैं और वे ही सामग्रियाँ भी मानी गयी हैं। सभी पर्वत-पूजनोंमें उन-उनके मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। यजमानको सदा व्रतमें उपवास करना चाहिये। यदि असमर्थ

हो तो रातमें एक बार भोजन किया जा सकता है। भारत! अब आप सभी पर्वतदानोंकी विधि, मन्त्र और उनके फल सुनें। दान देते समय धान्यशैलसे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।
अन्नाद् भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्धते ॥
अन्नमेव यतो लक्ष्मीन्नमेव जनार्दनः ।
धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम ॥

(उत्तरपर्व १९५। ४३-४४)

‘पर्वतश्रेष्ठ! चौंकि अन्नको ही ब्रह्म कहा जाता है और उसीमें प्राणियोंके प्राण प्रतिष्ठित हैं। अन्नसे

ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, अन्नसे ही संसार संचालित हो रहा है, इसलिये अन्न ही लक्ष्मी है, अन्न ही भगवान जनार्दन हैं, अतः धान्यशैलके रूपमें आप मेरी रक्षा करें।’

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे धान्यमय पर्वतका दान करता है, वह सौ मन्वन्तरसे भी अधिक कालतक देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा व्यास सुन्दर विमानसे स्वर्गलोकको जाता है एवं उनके द्वारा पूजित होता है। पुनः पुण्य-क्षय होनेपर वह इस लोकमें निःसंदेह राजाधिराज होता है। (अध्याय १९५)

लवणाचलदान-विधि तथा गुडपर्वतकी महिमाके प्रसंगमें सुलभाका आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं श्रेष्ठ लवणाचलके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य शिवलोकको प्राप्त करता है। सोलह द्रोण नमकसे लवणाचल बनाना चाहिये, क्योंकि यही उत्तम है। उसके आधे आठ द्रोणसे मध्यम और चार द्रोणसे बना हुआ लवणाचल अधम माना गया है। निर्धन मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार आधा या एक द्रोणका बनवाना चाहिये। इसके अतिरिक्त (पर्वत-परिमाणके) चौथाई द्रोणसे पृथक्-पृथक् (चार) विष्कम्भ (सहायक)-पर्वतोंका निर्माण कराना चाहिये। ब्रह्मा आदि देवताओंके पूजनका विधान सदा पूर्ववत् होना चाहिये। उसी प्रकार सभी स्वर्णमय वृक्ष एवं लोकपालोंके भी स्थापनका विधान है। पहलेकी तरह इसमें भी कामदेव आदि देवों और सरोवरोंका निर्माण कराना चाहिये तथा रातमें जागरण भी करना चाहिये। अब दान-मन्त्रोंको सुनिये—

सौभाग्यरससम्भूतो यतोऽयं लवणो रसः ।
दानात्मकत्वेन च मां पाहि पापान्नगोत्तम ॥

तस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना ।
प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदो भव ॥
विष्णुदेहसमुद्भूतं यस्मादारोग्यवर्धनम् ॥
तस्मात् पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात् ॥

(उत्तरपर्व १९६। ६—८)

‘पर्वतश्रेष्ठ! चौंकि यह नमकरूप रस सौभाग्य-सरोवरसे प्रादुर्भूत हुआ है, इसलिये इसके दानसे तुम मेरी रक्षा करो। चौंकि सभी प्रकारके अन्न एवं रस नमकके बिना उत्कृष्ट नहीं होते अर्थात् स्वादिष्ट नहीं लगते तथा तुम शिव और पार्वतीको सदा परम प्रिय हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। चौंकि तुम भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हो और आरोग्यकी वृद्धि करनेवाले हो, इसलिये तुम पर्वतरूपसे मेरा संसार-सागरसे उद्धार करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे लवणपर्वतका दान करता है, वह एक कल्पतक पार्वतीलोकमें निवास करता है और अन्तमें परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण पुनः बोले—महाराज! अब मैं उत्तम गुडपर्वतके दानकी विधि बतला रहा हूँ,

जिससे धनी मनुष्य देवपूजित हो स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है। दस भार गुडसे बना हुआ गुडपर्वत उत्तम, पाँच भारसे बना हुआ मध्यम और तीन भारसे बना हुआ कनिष्ठ कहा जाता है। स्वल्प वित्तवाला मनुष्य इसके आधे परिमाणसे भी काम चला सकता है। इसमें भी देवताओंका आमन्त्रण, पूजन, स्वर्णमय वृक्ष, देव-पूजन, विष्कम्भपर्वत, सरोवर, बन, देवता, हवन, जागरण और लोकपालोंकी स्थापना आदि धान्यपर्वतकी ही भाँति करनी चाहिये। उस समय यह मन्त्र उच्चारण करे—

यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोऽयं जनार्दनः।
सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम्॥
प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा।
तथा रसानां प्रवरः सदा चेक्षुरसो मतः॥
मम तस्मात् परां लक्ष्मीं प्रवच्छ गुडपर्वत।
सुरासुराणां सर्वेषां नागयक्षक्षयन्त्रिणाम्॥
निवासश्चापि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा।

(उत्तरपर्व १९७। ५-८)

‘जिस प्रकार देवगणोंमें ये विश्वात्मा जनार्दन, वेदोंमें सामवेद, योगियोंमें महादेव, समस्त मन्त्रोंमें अँकार और नारियोंमें पार्वती श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार रसोंमें इक्षुरस सदा श्रेष्ठ माना गया है। इसलिये गुडपर्वत! तुम मुझे उत्कृष्ट लक्ष्मी प्रदान करो। गुडपर्वत! चूँकि तुम देवताओं, असुरों, नागों, यक्षों, ऋषियों तथा पार्वतीके भी निवासस्थान हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।’ जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार गुडपर्वतका दान करता है, वह गन्धर्वोंद्वारा पूजित होकर गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा सौ कल्प व्यतीत होनेपर दीर्घायु एवं नीरोगतासे सम्पन्न होकर भूतलपर जन्म ग्रहण करता है और शत्रुओंके लिये अजेय

होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। राजन्! इस गुडपर्वतदानकी महिमामें एक आख्यान है, उसे आप सुनें।

सुलभा नामकी एक महाभाग्यशालिनी ब्रतपरायणा रानी थी। वह राजा मरुत्तकी प्यारी पत्नी थी और रूप-यौवनसे सम्पन्न थी। राजा मरुत्तके सात सौ रानियाँ थीं। ये सभी रानियाँ सुलभाकी आज्ञामें रहती थीं और राजा मरुत्त भी सुलभाके परामर्शको मानते थे। रानी भी राजासे अत्यन्त स्नेह करती थी। एक बारकी बात है कि दुर्वासामुनि राजाके यहाँ आये। राजा मरुत्तने अर्घ्य-पाद्यादिसे मुनिका सत्कार किया। दुर्वासाजीसे सुलभाने पूछा—‘भगवन्! किस पुण्यकर्मके प्रभावसे राजा मुझे अत्यन्त प्यार करते हैं। मेरा ही मुख देखते रहते हैं और मेरे वशमें हैं, मेरी सौतें भी मेरा प्रिय करनेमें तत्पर रहती हैं? ब्रह्मन्! यह सब आप बतलायें, इस विषयमें मुझे महान् कौतूहल है।’

दुर्वासाजी बोले—सुभगे! तुम अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तको सावधान होकर सुनो। मैं तुम्हारे पूर्वजन्मोंकी बातोंको अच्छी तरह जानता हूँ। पूर्वजन्ममें तुम गिरिक्रिजपुर (राजगृह—विहार)-में निवास करनेवाले एक वैश्यकी स्त्री थी। तुम धार्मिक, सत्यशील और पतिव्रता थी। वहाँ तुमने अपने पतिके साथ ब्राह्मणोंसे गुडपर्वत-दानके माहात्म्य और विधिको सुना था। तब तुमने गुडपर्वतका विधिवत् दान किया। वरानने! उसीके प्रभावसे तुम यह सुखभोग प्राप्त कर रही हो।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाराज! उस सुलभाने अन्तमें सद्गति प्राप्त की। इस गुडपर्वतका दान स्त्रियोंके लिये विशेषरूपसे बताया गया है।

(अध्याय १९६-१९७)

सुवर्ण एवं तिलशैलदान-विधि, तिलोंकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं पापहारी एवं श्रेष्ठ सुवर्णाचिलकी दान-विधि बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। एक हजार पलका सुवर्णाचिल उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका अधम (साधारण) माना गया है। अल्प वित्तवाला भी अपनी शक्तिके अनुसार गर्वरहित होकर एक पलसे कुछ अधिक सोनेका पर्वत बनवा सकता है। नृपश्रेष्ठ! शेष सारे कार्योंका विधान धान्यपर्वतकी भाँति ही करना चाहिये। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंकी भी स्थापना कर इन मन्त्रोंसे प्रार्थना करे—

नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः ॥
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय ।
यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्मात् तेजो जगत्पतेः ॥
हेमपर्वतरूपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम ।

(उत्तरपर्व १९८। ४-६)

‘शिलोच्चय! तुम ब्रह्मके बीजरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे गर्भमें ब्रह्मा स्थित रहते हैं, अतः तुम्हें प्रणाम है। तुम अनन्त फलके दाता हो, इसलिये मेरी रक्षा करो। जगत्पति पर्वतोत्तम! तुम अग्निकी संतान और जगदीश्वर शिवके तेजःस्वरूप हो, अतः सुवर्णाचिलके रूपसे मेरा पालन करो।’

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे सुवर्णाचिलका दान करता है, वह परम शिवलोकमें जाता है और वहाँ सौ वर्षोंतक निवास करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है।

राजन्! इसके बाद मैं तिलशैलदान-विधि बतला रहा हूँ, जिससे मनुष्य उत्तम विष्णुलोकको प्राप्त होता है। तिल अत्यन्त पवित्र हैं, पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाले हैं। तिलकी उत्पत्ति विष्णुके

शरीरसे हुई है, इसलिये इन्हें उत्तम बतलाया गया है। मधु-कैटभ नामके दो राक्षस दितिके पुत्र थे। भगवान् विष्णुके साथ मधु दैत्यका अनवरत युद्ध चलता रहा। फिर भी दानव मरा नहीं। इसपर भगवान् विष्णु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उनके शरीरसे स्वेदकी बूँदें पृथिवीपर गिरीं और इधर-उधर बिखर गयीं। उसीसे तिल, उड़द एवं कुश उत्पन्न हुए। भगवान् विष्णुने बलवानोंमें बली उस मधुको मार डाला। उसी मधुके मेद (चर्बी)-से सम्पूर्ण पृथिवी रँग गयी। इसलिये पर्वतोंको धारण करनेवाली पृथिवीका नाम मेदिनी पड़ा^१। जब मधु दैत्य मारा गया तो सभी देवता प्रसन्न हो भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए कहने लगे—‘देव! आपने ही संसारको धारण किया है। संसारकी सृष्टि आपने ही की है। मधुसूदन! यह सारा संसार अन्तमें आपमें ही लीन होता है। संसारका कल्याण करनेके लिये ये तिल आपके ही अङ्गसे उद्भूत हैं। देवेश! आप हम सबकी रक्षा करें।’

देवताओंकी यह स्तुति सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—देवगणो! ये तिल तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं। शुक्लपक्षमें देवताओंको और कृष्णपक्षमें पितरोंको तिलोदक देना चाहिये। सात या आठ बार तिलोदककी अङ्गलि देनेसे देवता और पितर संतुष्ट हो जाते हैं और देनेवालेका मङ्गल करते हैं। कुते, कौए और पतितोंसे दूषित वस्तु तिलोंके अध्युक्षण करनेसे पवित्र हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं^२। इस प्रकार जो तिलपर्वतका दान ब्राह्मणको करता है, उसका दिया हुआ दान अक्षय होता है।

राजेन्द्र! दस द्रोण तिलका बना हुआ तिलशैल

१-देवीभागवत, हरिवंश आदि पुराणोंमें मधुके मेदसे उत्पन्न होनेके कारण पृथिवीका नाम मेदिनी पड़ा। यहाँ भी यही भाव है।

२-क्षकाकोपहतं यच्च पतितादिभिरेव च। तिलैरभ्युक्षितं सर्वं पवित्रं स्यान्न संशयः ॥ (उत्तरपर्व १९९। १५)

उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका कनिष्ठ बतलाया गया है। इसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंकी स्थापना तथा अन्यान्य सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! तिलाचलकी प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिये—

यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्धवाः।
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छं नो भवन्त्वह॥
हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिमन्त्रणम्।
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते॥

(उत्तरपर्व १९९। १९-२०)

‘चूँकि मधुदैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे तिल, कुश और उड़दकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये तुम इस लोकमें हम सबका कल्याण

करो। शैलेन्द्र तिलाचल! चूँकि देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्य—दोनोंमें तिलोंसे ही अभिमन्त्रण किया जाता है, इसलिये तुम मेरा भवसागरसे उद्धार करो, तुम्हें नमस्कार है।’

इस प्रकार आमन्त्रित कर जो मनुष्य श्रेष्ठ तिलाचलका दान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। उसे इस लोकमें दीर्घायुकी प्राप्ति होती है, वह पुत्र एवं पौत्रोंको प्राप्त कर उनके साथ आनन्द मनाता है तथा अन्तमें देवताओं, गन्धर्वों और पितरोंद्वारा पूजित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। इस दानके माहात्म्यको सुननेसे कपिलादानका पुण्य प्राप्त होता है।

(अध्याय १९८-१९९)

कपास एवं घृतपर्वतोंके दानकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं कपासपर्वतके दानकी विधि बता रहा हूँ। यह सभी दानोंमें श्रेष्ठ और समस्त देवताओंको परम प्रिय है। अपने कुटुम्बका उद्धार करनेके लिये उपयुक्त देश-काल और धनको प्राप्तकर श्रद्धापूर्वक इस महादानको यत्नपूर्वक करना चाहिये। बीस भार रुईसे बना हुआ कपासपर्वत उत्तम, दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार कपासके बने हुए पर्वतका दान कर सकता है। नृपश्रेष्ठ! धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इस दानको करना चाहिये। उस समय यह मन्त्र पढ़े—

त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा।

कार्पासाचल नस्तस्मादधौघध्वंसनो भव॥

(उत्तरपर्व २००। ७)

‘कार्पासाचल! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो।’ इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर सौभाग्यशाली राजा होता है।

राजन्! इसके बाद मैं दिव्य तेजसे सम्पन्न अमृतमय और महान्-से-महान् पापोंके विनाशक श्रेष्ठ घृताचलदानका वर्णन कर रहा हूँ। पचास घड़ीसे बना हुआ घृताचल उत्तम, पचीससे मध्यम और उसके आधेसे अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प वित्तवाला भी यदि करना चाहे तो वह यथाशक्ति घृताचलकी रचना करके दान कर सकता है। उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनी चाहिये। उन सभी घड़ोंके ऊपर अगहनी चावलसे परिपूर्ण पात्र रखा जाय और

उन्हें विधिपूर्वक एकके ऊपर एक रखकर ऊँचा कर देना चाहिये। उन्हें श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर उनके निकट गत्ता और फल आदि रख दे। इसमें शेष सारा विधान धान्यपर्वतकी ही भाँति बतलाया गया है। देवताओंकी स्थापना, उनका अर्चन और हवन भी उसी प्रकार करना चाहिये। रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल यजमान शान्त मनसे वह घृताचल गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंको भी ऋत्विजोंको दान कर दे, उस समय इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

संयोगादघृतमुत्पन्नं यस्माद्मृततेजसोः ।
तस्माद्घृताचलश्चास्मात् प्रीयतां मम शंकरः ॥

यस्मात् तेजोमयं ब्रह्मा घृते नित्यं व्यवस्थितम् ।

घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नः पाहि भूधर ॥

(उत्तरपर्व २०१ । ८-९)

‘चूँकि अमृत और अग्निके संयोगसे घृत उत्पन्न हुआ है, इसलिये घृताचलरूप शंकर इस व्रतसे प्रसन्न हों। चूँकि ब्रह्म तेजोमय है और घीमें विद्यमान है, ऐसा जानकर घृतपर्वतरूप मूधर! हमारी रक्षा करो।’ जो मनुष्य इस विधिसे इस श्रेष्ठ घृताचलका दान करता है, वह महापापी होनेपर भी शिवलोकको प्राप्त होता है।

(अध्याय २००-२०१)

रत्नाचल और रौप्याचलदानका माहात्म्य

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! अब मैं श्रेष्ठ रत्नाचलदान-विधिका वर्णन कर रहा हूँ। इससे दाता सप्तरिष्यलोक प्राप्त करता है। एक हजार मुक्ताफल (मोतियों)-द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम (साधारण) माना गया है। अल्पवित्त व्यक्ति सौ मुक्ताफलोंसे रत्नाचलका दान करे। कल्पित पर्वतके चतुर्थांशसे उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पुष्पराग (पुखराज) और इन्द्रनील (नीलम) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मत मणिसहित पद्मराग (माणिक्य) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये। इस दानमें भी धान्यपर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं, वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे। प्रातःकाल

मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—

यथा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः ।

त्वं च रत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥

यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेति जनार्दनः ।

पूजारत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि सर्वदा ॥

(उत्तरपर्व २०२ । ८-९)

‘अचल! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो, अतः महाचल! हमारी रक्षा करो। पर्वत! चूँकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो।’

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त करता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है। पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सदगुणोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर

होता है। साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया गया हुआ पर्वत।

नरोत्तम! इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रजतशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसके दानसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चन्द्रलोकको प्राप्त करता है। दस हजार पल चाँदीसे बना हुआ रजताचल उत्तम, पाँच हजार पलसे बना हुआ मध्यम और ढाई हजार पलसे बना हुआ अधम कहा गया है। यदि दाता ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे कुछ अधिक चाँदीद्वारा पर्वतका निर्माण कराना चाहिये। उसी प्रकार प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी रचना करे। पहलेकी तरह चाँदीके द्वारा मन्दर आदि पर्वतोंका निर्माण कर उनके नितम्बभागको सोनेसे सुशोभित कर दे। उनपर लोकपालोंकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यकी मूर्तियोंसे भी संयुक्त कर दे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् दाता इन सबकी विधिपूर्वक

अर्चना करे। सारांश यह है कि अन्य पर्वतोंमें जो उपकरण चाँदीके होते हैं, वे सभी इसमें सुवर्णके होने चाहिये। शेष हवन, जागरण आदि सारे कार्य धान्यपर्वतकी भाँति ही करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा गुरु और ऋत्विजोंका पूजन कर रजताचल गुरुको और विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय मत्सररहित हो हाथमें कुश लेकर इस मन्त्रका पाठ करे—

पितृणां वल्लभं यस्माद्धरीन्द्राणां शंकरस्य च।
रजत पाहि तस्मान्नो घोरात् संसारसागरात्॥

(उत्तरपर्व २०३।८)

‘रजताचल! तुम पितरोंको तथा श्रीहरि, सूर्य, इन्द्र और शिवको परम प्रिय हो, इसलिये शोकरूपी संसारसागरसे मेरी रक्षा करो।’ जो मानव इस प्रकार निवेदन कर श्रेष्ठ रजताचलका दान करता है, वह दस हजार गो-दानका फल प्राप्त करता है। वह विद्वान् चन्द्रलोकमें गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके समूहोंसे पूजित होकर प्रलयकालतक निवास करता है। (अध्याय २०२-२०३)

शर्कराचल और लवणाचल-दानकी महिमा

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—महाराज! अब मैं परमोत्तम शर्कराचल-दानका वर्णन कर रहा हूँ। जिससे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं। आठ भारका शर्कराचल उत्तम, चार भारका मध्यम और दो भारका अधम कहा गया है। जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारका भी शर्कराचल बनवा सकता है। प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये। पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके

साथ मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करे। इन तीनों वृक्षोंको प्रायः सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये। सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्षको निविष्ट करना चाहिये। शर्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये। कदम्ब-वृक्षके नीचे मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति, जम्बू-वृक्षके नीचे गन्धमादनके शिखरपर भगवान् विष्णुकी मूर्ति, विपुलाचलपर सोनेकी हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये।

तत्पश्चात् आवाहन, यज्ञ आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी तरह करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए बीचका प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—

सौभाग्यामृतसारोऽयं परमः शर्करायुतः ॥
यस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा ।
अमृतं पिबतां ये तु निष्टेतुर्भुवि शीकराः ॥
देवानां तत्समुत्थोऽसि पाहि नः शर्कराचल ।
मनोभवधनुर्मध्यादुद्घूता शर्करा यतः ॥
तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात् ।

(उत्तरपर्व २०४। १०—१३)

‘शैलेन्द्र! यह शक्करद्वारा निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्दकारक होओ। शर्कराचल! देवताओंके अमृतपान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, अतः तुम हमारी रक्षा करो। महाशैल! चूँकि शर्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शर्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ।’

जो मनुष्य इस विधिके अनुसार शर्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त हो जाता है। वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारागणोंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ होकर सुशोभित होता है। पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अयुत जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। सभी पर्वतदानोंमें मत्सरहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करानेका विधान है। गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल स्वयं भी क्षार (नमक)-रहित भोजन करना चाहिये। पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये।

राजन्! अब आप लवणाचल-दानकी महिमामें एक आख्यान सुनें—पहले ब्रह्मकल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुआ था। उसके तेजके सामने सूर्य और चन्द्रमा आदि भी कान्तिहीन हो जाते थे। वह इन्द्रका मित्र था। उसने हजारों दैत्योंका वध किया था। वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला मनुष्य होनेपर भी किसीसे परास्त नहीं हुआ, अपितु उसके द्वारा सैकड़ों शत्रु पराजित हो चुके थे। उसकी पत्नीका नाम भानुमती था। वह त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीके समान अपने दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। वह दस हजार नारियोंके बीचमें लक्ष्मीकी तरह सुशोभित होती थी। राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। एक बार सभामण्डपमें पधारे अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे उस राजाने विस्मय-विमुग्ध हो ऐसा प्रश्न किया—

‘भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है?’

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिवजीकी भक्त थी। उसने चतुर्दशी तिथिके दिन विधिपूर्वक अपने गुरुको स्वर्णमय वृक्ष आदि उपकरणोंसहित लवणाचलका दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्रजातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी उसने नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और

लीलावतीके पर्वतदानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरुशुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्विपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देवमूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है।

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर गत्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायकरूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता, सौभाग्यसम्पन्नता और लक्ष्मीकी प्राप्ति

हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधानपूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने 'ऐसा ही करूँगा।' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् पुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वतदानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। नृपश्रेष्ठ! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसंगका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, वह विष्णुलोक तथा शिवलोकको प्राप्त करता है तो इसमें क्या आश्र्य? (अध्याय २०४)

सदाचारधर्मका निरूपण

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! मैंने आपसे प्रतिपदा आदि तिथियोंके दानको क्रमशः विस्तारसे सुना, सभी रहस्यों तथा मन्त्रोंके साथ व्रत एवं दान आदिके प्रारम्भ और उद्यापन-विधियोंको सुना। यज्ञ-यागादि दानधर्मों, स्नानविधि, उत्सवों तथा इष्टापूर्तकर्मोंके विषयमें भी सुना। फिर भी मधुसूदन! मेरा मन सशंकित हो रहा है, क्योंकि व्रतोंके प्रसंगमें आपने विविध देवताओंका वर्णन किया है। देवकीपुत्र! आपने देवताओंका नानात्व प्रदर्शन किया तथा तिथिके क्रमसे अलग-अलग मन्त्र आदिको भी बतलाया है। परंतु ध्यान-योगपरायण व्यासादि मुनियोंने केवल अव्यय, सर्वगत, निर्विकार एक परमात्माका ही वर्णन

किया है, इसमें क्या रहस्य है? प्रभो! आपने अनेक विषय बतलाये, पर वर्णाश्रिमके आचार और धर्मोंका निरूपण नहीं किया। ये सभी महर्षिगण आपकी वाणी सुननेके लिये उत्सुक हैं। इस विषयको आप बतलायें।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—राजन्! व्रतों और दानोंका तो मैंने सारांशरूपसे वर्णन किया है। विशेष वर्णन तो भगवती सरस्वती ही कर सकती हैं। सभी वर्णाश्रिमोंका सामान्य धर्म यही है कि सभी प्राणी विघ्नरहित हों और सभी कल्याणके भागी बनें। यहाँपर जो मैंने देवताओंके उद्देश्यसे व्रतोंका आपसे वर्णन किया है, उसमें भी मूलतः एक परमात्मदेवका ही वर्णन हुआ है। जो ब्रह्मा हैं

वही हरि, वही महेश्वर, वही सूर्य, वही अग्नि, वही कार्तिकेय और वही विनायक हैं, गौरी, लक्ष्मी और सावित्री ये भी एक ही शक्तिके भिन्न-भिन्न रूप हैं, मूलतः एक ही तत्त्व है। किसी देवता या देवीको उद्देश्यकर जो मनुष्य व्रत करता है, उसे वहाँपर देवी-देवताका भेद नहीं जानना चाहिये, क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् शिव-शक्तिमय है। जैसे अग्नि, वायु एवं जलके भेदसे वसुधाके अनेक भेद प्रतीत होते हैं, किंतु पारमार्थिक दृष्टिसे विचार करनेपर भेदका भान नहीं होता है।

पार्थ! वेदधर्मके अनुसार जो कोई भी जिस किसी भी देवताका आश्रयण कर जिस किसी भी दान अथवा व्रतको करता है, उन सबके मूलमें वस्तुतः एक ही परमात्माकी उपासना होती है। मैंने जो व्रत-दानकी विधियाँ कही हैं, वे सदाचारीको ही फलप्रद होती हैं, आचारहीनको नहीं। आचारहीन व्यक्तिको छः अङ्गोंके साथ अधीत वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। जैसे पक्षी पंख निकलनेके बाद अपने घोंसलेको छोड़ देता है, वैसे ही ये वेद आचारहीनको मृत्युके समय परित्याग कर देते हैं^१। जैसे कपालमें रखा जल, कुत्तेके चर्मपात्र (मशक)- में रखा दूध स्थानदोषसे अशुद्ध हो जाता है, इसी प्रकार आचारहीन व्यक्ति भी अशुद्ध ही है। इसलिये वृत्त (आचार)-की यत्पूर्वक रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि धन तो आता-जाता रहता है। जो धनसे हीन है, वह दीन नहीं, किंतु जो

आचारसे गिरा हुआ है वह गिरा ही रहता है, वह मरे हुएके समान है। राजन्! इस प्रकार आचार ही धर्म और कुलका मूल है। आचारसे च्युत व्यक्ति न कुलीन होता है और न धार्मिक होता है। दुरात्मा व्यक्तिके बहुत बड़े कुलसे क्या लाभ? क्या सुगन्धित पुष्टमें कीड़े नहीं रहते? इसी प्रकार उत्तम कुलमें भी दुराचारी उत्पन्न हो जाते हैं। हीन जातिमें उत्पन्न व्यक्ति भी यदि शौचाचारसम्पन्न है और सभी धर्मोंको जानता है तो वह सज्जनोंमें कुलीन और श्रेष्ठ है। कुलको कुल नहीं कहा जाता, बल्कि सदाचार ही कुल है। राजन्! जो व्यक्ति सदाचार-सम्पन्न है, वह इस लोक और परलोक दोनोंमें आनन्द प्राप्त करता है^२।

राजन्! आचारसे धर्म उत्पन्न है और संत ही सदाचारके मूल हैं। उनका आचार ही सदाचार है। इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे सदाचारका पालन करना चाहिये। सदाचारके पालनसे दोष-पाप नष्ट हो जाते हैं। संसार जिसे न ठीकसे देखता है और न जिसका कभी परिचय पाता है, वह यदि सदाचारी और धर्मात्मा (पुण्यश्लोक राम, नल, युधिष्ठिर आदिकी तरह) है तो तीनों कालमें उसे श्रेष्ठ मानकर सभी आदरकी दृष्टिसे स्मरण करते रहते हैं और सभी उसका प्रिय करते हैं। जो नास्तिक, ईश्वरीय आस्थासे रहित तथा गुरुओं एवं शास्त्रोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करते हैं, अधर्मज्ञ एवं दुराचारी हैं, वे मानो मृतक-तुल्य हैं, पर यदि

१-आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः। छन्दांस्येन मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

(उत्तरपर्व २०५। १७)

यह श्लोक वसिष्ठ, गौतम आदि धर्मसूत्रों और प्रायः अनेक पुराणों एवं धर्मशास्त्रोंमें भी इसी प्रकार प्राप्त होता है।

२-कपालस्थं यथा तोयं श्वदूतौ वा यथा पयः। दुष्टं स्यात् स्थानदोषेण वृत्तहीने तथाशुभम्॥

वृत्तं यत्वेन संरक्षेद् वित्तमेति प्रयाति च। अहीनो वित्ततो हीनो वृत्ततस्तु हतो इतः॥

एवमाचारधर्मस्य मूलं राजन् कुलस्य च। आचाराद्धि च्युतो जन्मुर्न कुलीनो न धार्मिकः॥

किं कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मनाम्। कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगन्धिषु॥

हीनजातिप्रसूतोऽपि शौचाचारसम्बन्धितः। सर्वधर्मार्थकुशलः स कुलीनः सतां वरः॥

न कुलं कुलमित्याहुराचारः कुलमुच्यते। आचारकुशलो राजनिः चामुत्र नन्दते॥ (उत्तरपर्व २०५। १८—२३)

कोई व्यक्ति सम्पूर्ण लक्षणोंसे हीन होते हुए भी सदाचार-सम्पन्न, श्रद्धालु और अनिन्दक है तो वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है।

मानवको चाहिये कि ब्राह्म-वेलामें जग जाय और धर्म तथा अर्थके विषयमें विचार करे। कभी भी ब्राह्मण, अग्नि, गौ तथा सूर्यके सम्मुख मल-मूत्रका उत्सर्जन नहीं करना चाहिये। दिनमें उत्तराभिमुख और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका विसर्जन करना चाहिये। प्रातःकाल नित्य-क्रियासे निवृत्त हो आचमनके अनन्तर समाहित होकर प्रातः-संध्या करनी चाहिये। इसी प्रकार वाणीपर नियन्त्रण कर मौन होकर सायं-संध्या करे। भगवान् सूर्यको उगते हुए तथा अस्त होते हुए नहीं देखना चाहिये। ऋषियोंने दीर्घकालीन तपस्या आदिसे दीर्घायुको प्राप्त किया। धार्मिक राजाको चाहिये कि जो द्विज प्रातः तथा सायं-संध्या नहीं करता, उसे शूद्र-कर्ममें नियोजित कर दे। मूत्र-पुरीषमें यदि वेग हो जाय या कोई बाधा उपस्थित हो जाय तो उस समय विधि एवं नियमकी अपेक्षा न करे। पृथ्वीको तृणोंसे तथा सिरको वस्त्रसे आच्छादितकर मल त्याग करना चाहिये। ग्राम, आश्रम, तीर्थ, क्षेत्र, मार्ग, जुते खेत, गोष्ठ और गौओंके मार्ग आदि स्थानोंमें मूत्रादिका परित्याग नहीं करना चाहिये। जलके अंदरकी, आश्रम आदिकी, वल्मीकीकी, चूहोंके बिलकी तथा शौचसे बची—इन पाँच प्रकारकी मिट्टियोंका शौच आदिमें प्रयोग न करे।

देवताओं आदिकी पूजा, गुरुओंका अभिवादन तथा भोजन आदि क्रियाएँ आचमन करनेके अनन्तर करनी चाहिये। फेनरहित, सुगन्धित निर्मल जलसे पूर्व या उत्तराभिमुख हो आचमन करना चाहिये। विद्वानोंको धर्म-अर्थ तथा कामके कार्योंको करना चाहिये। धर्म-अर्थ तथा काम इस त्रिवर्गके सम्पादनसे गृहस्थको ऐहिक और पारलौकिक सिद्धि प्राप्त होती है। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने न्यायोपार्जित

द्रव्यके एक भागसे परलोक-सम्बन्धी पुण्यकर्मोंका सम्पादन करना चाहिये। एक भागका संचय करे और आधे अर्थात् दो भागका भोजन, व्यवहार तथा नित्य-नैमित्तिक कार्योंमें व्यय करे। अतः न्यायपूर्वक धनके उपार्जनके लिये प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि धनके माध्यमसे ही धर्म-काम आदि पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। पूर्वाह्नकालमें ही केशप्रसाधन, आदर्शदर्शन, दन्तधावन तथा देवताओंका पूजन आदि कर लेना चाहिये। मल-मूत्रादि क्रियाएँ घरसे दूर करनी चाहिये। तथा घरका जूठन आदि भी दूर फेंकना चाहिये। मिट्टीके ढेलेको तोड़नेवाला, तिनकोंको टुकड़े-टुकड़े करनेवाला, नख काटकर खानेवाला, नित्य उच्चिष्ट भोजन करनेवाला तथा वस्तुओंमें मिलावट करनेवाला इस संसारमें अधिक दिनोंतक नहीं जीता। दूसरेकी स्त्रीको नग्न नहीं देखना चाहिये, अपने पुरीष (मल)-को भी न देखे। रजस्वला स्त्रीको न देखे, न उसका स्पर्श करे और न उससे वार्तालाप करे। जलमें मूत्र-पुरीषका उत्सर्ग तथा मैथुन नहीं करना चाहिये। केश, राख, कपाल, मल-मूत्र, भूसी, अंगार, अस्थिपंजर तथा रस्सी आदिपर न बैठे। विद्वानोंको चाहिये कि ब्राह्मणोंको प्रणाम करें तथा उन्हें बैठनेके लिये आसन प्रदान करें, जाते समय कुछ दूरतक उन्हें पहुँचाने जायँ। टूटे-फूटे आसनपर न बैठे और फूटे हुए काँसेके पात्रोंका उपयोग न करे। बालोंको खोलकर भोजन न करे। नग्न होकर स्नान और शयन न करे। जूठे स्थानपर न बैठे। जूठे हाथसे सिरका स्पर्श न करे, क्योंकि सभी प्राण सिरमें स्थित रहते हैं। सिरके बालोंको न खींचे और न सिरपर प्रहार करे। पुत्र और शिष्यको कोड़े-से नहीं मारना चाहिये। अपने सिरको दोनों हाथोंसे एक साथ नहीं खुजलाना चाहिये। बिना कारण सिरसे स्नान नहीं करना चाहिये। ग्रहणके बिना रात्रि-स्नान नहीं करना चाहिये। भोजनके अनन्तर तथा अथाह जलमें डुबकी लगाकर स्नान नहीं

करना चाहिये। स्नान करनेके बाद तेल नहीं लगाना चाहिये। तिलपिण्ड नहीं खाना चाहिये, क्योंकि इससे आयु क्षीण होती है।

अपने गुरुजनों तथा श्रेष्ठजनोंसे बुरी बात न बोले। यदि वे कुछ दिखायी दें तो उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। दूसरेकी निन्दाजनक बात नहीं सुननी चाहिये और न स्वयं करनी चाहिये। प्रशस्त ओषधियोंका ही सेवन करना चाहिये। रत्नोंको धारण करना चाहिये। अपने केशोंको स्निग्ध और निर्मल रखना चाहिये। सुन्दर शिष्ट वेष धारण करना चाहिये। सफेद, प्रिय लगनेवाले फूलोंको धारण करना चाहिये। दूसरेके किञ्चिन्मात्र धनको न लेना चाहिये और न कभी अप्रिय बोलना चाहिये। सत्य और प्रिय वाणी बोलनी चाहिये। दूसरेके दोषोंको नहीं कहना चाहिये। किसीसे वैर बाँधना नहीं चाहिये। दुष्ट यानमें न चढ़े। नदीके किनारेकी छाया आदिका आश्रय नहीं लेना चाहिये। विद्वेषी, पतित, उन्मत्त, बहुतोंसे वैर करनेवाले, वर्णसंकर, वन्ध्या, वन्ध्याके पति, नीच, असत्य भाषण करनेवाले, अत्यन्त खर्चीले स्वभाववाले, दूसरेकी व्यर्थ निन्दा करनेवाले तथा शठसे विद्वान् व्यक्तिको मैत्री नहीं करनी चाहिये। मार्गमें एकाकी गमन न करे। अतिशय वेगसम्पन्न जलमें स्नान न करे। जलते हुए घरमें प्रवेश न करे। वृक्षके ऊपरतक न चढ़े। शवके प्रति हुंकार न करे। दाँतोंको परस्पर रगड़ना नहीं चाहिये। नासिका फुलाना नहीं चाहिये। मुखको अधिक खोलकर नहीं बोलना चाहिये। ऊँचे स्वरमें हँसना नहीं चाहिये और शब्द करते हुए अपान वायुका परित्याग नहीं करना चाहिये। नखसे नख नहीं बजाना चाहिये, न छेदन करना चाहिये और न पृथ्वीपर लिखना ही चाहिये। दाढ़ी-मूँछके बालोंका भक्षण नहीं करना चाहिये, पैरसे पैरका आक्रमण

नहीं करना चाहिये। गुरुके सम्मुख उच्च आसनपर नहीं बैठना चाहिये। सदा सदाचारतत्पर रहना चाहिये। कामाचारी नहीं होना चाहिये। दोनों लोकोंमें शुभ चाहनेवाला व्यक्ति कामाचारपूर्वक जीवनयापन न करनेसे स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। रात्रिमें चतुष्पद (चौराहा), श्मशान, ग्रामके समीपवर्ती पीपल आदिके वृक्ष, उपवन तथा दुष्ट स्त्रीके सांनिध्यका परित्याग करे। ग्रीष्म और वर्षा-ऋतुमें छत्र धारण किये रहे। रात्रि और वनमें मौन रहे। केश, अस्थि, कण्टकयुक्त अपवित्र बलिस्थान, भस्म, भूसी तथा स्नानसे भीगी हुई पृथ्वीका दूरसे ही परित्याग करे।

ब्राह्मण, राजा, स्त्री, ज्ञानवान्, गर्भिणी स्त्री, बोझसे दवा हुआ व्यक्ति, श्रेष्ठ व्यक्ति, मूक, अन्धा, बधिर, मतवाला तथा उन्मत्त व्यक्तिको दूरसे ही मार्ग दे देना चाहिये। अन्योंके द्वारा धारण किये गये जूते, वस्त्र तथा माला नहीं धारण करना चाहिये। दूसरेकी स्त्रीके उपसेवनसे बढ़कर लोकमें अनायुष्यका अन्य कोई भी कार्य नहीं है*। स्त्रियोंसे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये और स्त्रियोंकी रक्षा करना कर्तव्य समझना चाहिये। ईर्ष्या करनेसे आयुका ह्रास होता है, अतः ईर्ष्याका सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। मूर्ख, उन्मत्त, व्यसनी, विरूप, अहंकारी, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग अथवा विद्यासे हीन व्यक्तिका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। रात्रिमें दही और सत्तूका भक्षण नहीं करना चाहिये। महाराज ! आधी रातमें भोजन नहीं करना चाहिये। घुटनोंको ऊपर कर अधिक देरतक नहीं बैठना चाहिये। दूसरेके रहस्यकी बातको जाननेकी उत्सुकता तथा अभिलाषा नहीं रखनी चाहिये। पैरके ऊपर पैर रखकर नहीं बैठना चाहिये। अतिशय रक्त, चितकबरा तथा कृष्ण वस्त्रको अधिक समयतक नहीं धारण करना चाहिये और वस्त्र या अलंकारका विपर्यय भी नहीं करना

* न हीदृशमनायुष्म लोके किञ्चन विद्यते। यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥ (उत्तरपर्व २०५। ७३)

चाहिये। दीर्घायुकी इच्छा है तो स्त्रीको दुर्बल नहीं समझना चाहिये। दूसरेको पीड़ा नहीं देनी चाहिये और परोक्षवादी नहीं होना चाहिये। असहनशील एवं अनग्र भी न हो। अग्निसे दग्ध अथवा परशुसे काटा गया वन अद्भुत हो सकता है, किंतु उद्देलित और अप्रिय वाणी बोलनेपर फिर प्रेमका संचार नहीं हो सकता। मनुष्यको चाहिये कि नास्तिक न बने, वेदों और देवताओंकी निन्दा न करे, किसीके साथ वैर न करे और न कायर ही बने। ब्राह्मणको कुत्सित वाक्य न कहे। नक्षत्रोंको नहीं दिखाना चाहिये। प्राज्ञ व्यक्तिको न्यायके अनुसार कार्य करनेवाले बलवान् शत्रुजयी राजाके यहाँ सुखपूर्वक निवास करना चाहिये। जहाँपर स्त्रियाँ मात्सर्यरहित हों, वहाँपर रहना सुखप्रद होता है। जिस राष्ट्रमें किसान कृषि-कार्यमें लगे हों, अतिशय बोलनेवाले न हों और जहाँ सभी ओषधियाँ प्राप्त हों, विद्वान् व्यक्तिको वहीं रहना चाहिये। जहाँपर लोग दूसरेको पराभूत करनेवाले और वैरकी गाँठ रखनेवाले हों, जनशून्य अथवा अधिक लोग बसते हों तथा जहाँ उत्सव आदि न होते हों—इन स्थानोंपर निवास न करे। राजन्! जहाँ ऋणदाता, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जलपूर्ण नदी—ये चारों न हों वहाँ निवास नहीं करना चाहिये। मलिन दर्पण नहीं देखना चाहिये। महाराज ! दीर्घ राज्यकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको स्वर्णकारके घरका अन्न नहीं खाना चाहिये, उसपर विश्वास नहीं करना चाहिये और न उसे मित्र ही बनाना चाहिये। फूटा-टूटा बर्तन, टूटी खाट, कुत्ता तथा मुर्गा—ये चार और कौटिदार वृक्ष इन्हें अपने दरवाजेपर न रखे। फूटा पात्र घरमें होनेसे कलह होता है, टूटी खाट रहनेसे भी अच्छा नहीं होता, श्वान और कुकुटवाले घरमें पितर भोजन नहीं करते और कंटकयुक्त वृक्षोंके नीचे पिशाचोंका निवास रहता है। गृहस्थ व्यक्तिको चाहिये कि सुवासिनी, गर्भवती, वृद्धा स्त्री, बालकों

तथा आतुर व्यक्तिको भोजन पहले कराये। घरके स्वामीको अन्तमें भोजन करना चाहिये। असंस्कृत अन्नका भोजन नहीं करना चाहिये। जो गौका वाहन आदिके रूपमें प्रयोग कर उससे धनार्जन करता है और फिर उस धनका उपयोग करता है, घरके बाहर उपस्थित व्यक्तिको बिना दिये हुए खाता है, वह मानो पापका ही भक्षण करता है। बलिवैश्वदेव कर्म करनेके बाद ही विधिपूर्वक भोजन करना चाहिये। एक वस्त्र पहनकर भोजन न करे। पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन करना चाहिये। असंस्कृत तथा कुत्सित अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये। शिष्ट व्यक्ति तथा भूखेको भोजन करानेके बाद पवित्र पात्रोंमें क्रोधरहित (शान्त, प्रसन्नचित्त) होकर भोजन करना चाहिये। तख्तेपर रखे पात्रमें, अनुचित स्थानमें, असमयमें, अतिशय संकीर्ण स्थानमें भोजन नहीं करना चाहिये। भोजनसे पूर्व अग्राशन देकर तन्मय होकर भोजन करना चाहिये। पहले मधुर पदार्थोंको, अनन्तर लवण पदार्थ और इसके बाद कटु एवं तीक्ष्ण पदार्थोंका भोजन करे। पहले कोमल पदार्थों, बीचमें गरिष्ठ व्यञ्जनों तथा अन्तमें द्रवयुक्त व्यञ्जनोंका भोजन करनेसे मनुष्य रोगमुक्त रहते हैं। दिनमें भूजेमें, रात्रिमें दही-सत्तूमें तथा कोविदार (कचनार)-में अलक्ष्मी—दरिद्राका सदा ही निवास रहता है। वाणीका संयम कर मौन होकर अन्नकी निन्दा किये बिना प्रशस्त अन्न खाना चाहिये। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख हो भोजन करनेके बाद भलीभाँति आचमनकर पुनः हाथका प्रक्षालन करके सावधानीसे आचमन करे और इसके बाद अपने अभीष्ट देवताका स्मरण करना चाहिये। अनन्तर इन श्लोकोंका पाठ करते हुए अपने हाथसे उदरको धीरे-धीरे सहलाये—

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरं चास्तु ममाद्याव्याहतं सुखम्॥

अगस्तिरग्निर्वडवानलक्ष्मि भुक्तं प्रपात्रं जरयत्वशेषम् ।
सुखं च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छत्वरोगं खलु वासुदेवः ॥

(उत्तरपर्व २०५ । ११५-११६)

‘प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—इन पञ्चप्राणोंको पुष्टि प्रदान करनेवाला मेरे द्वारा खाया गया अन्न मेरे लिये सुखप्रद हो । अगस्त्य, अग्नि, वडवानल मेरे द्वारा भुक्त हुए अन्न और पेय पदार्थोंको भलीभौंति पचायें तथा मुझे सुखकी प्राप्ति हो और वासुदेव मुझे रोगहीन बनायें ।’

इसके बाद आलस्यरहित होकर अनायास होनेवाले कर्मोंको करे । भारत ! संध्याके समय यदि कोई पथिक आ जाय तो उसका पाद्य, आसन आदिके द्वारा स्वागत करे । अनन्तर अन्न-प्रदान एवं शयनके द्वारा उसकी सेवा करे । दिनमें आये अतिथिके विमुख हो जानेपर जो पाप लगता है, उसका आठ गुना पाप सायंकालमें आये अतिथिके लौट जानेपर होता है । पूर्व और दक्षिणमें सिर कर शयन करना प्रशस्त माना गया है और इसके विपरीत सोनेसे रोग उत्पन्न होता है । ऋतुकालमें ही स्त्री-सहवास प्रशस्त माना गया है । चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या एवं पर्वके समयमें तैलाभ्यङ्ग तथा स्त्री-सम्पर्क न करे । क्षौर-कर्म, स्त्री-सहवास तथा श्मशानगमनके अनन्तर सवस्त्र स्नान करना चाहिये । गुरु, पतिव्रता, यज्ञकर्ता एवं तपस्वीकी मनोविनोदमें भी निन्दा नहीं करनी चाहिये । विद्वान् व्यक्तिको एक ही साथ अग्नि और जलको धारण नहीं करना चाहिये । गुरु और देवताकी ओर पैर नहीं फैलाना चाहिये । जलको अञ्जलिसे नहीं पीना चाहिये और अधिक वायु तथा धूपका भी सेवन नहीं करना चाहिये । दास-नौकर आदिको क्रुद्ध होकर अपशब्द न कहे । सभी बन्धुओंके प्रति मात्सर्यरहित होकर रहना चाहिये । डरे हुए व्यक्तिको आश्वासन देना चाहिये, साधुवत् रहना चाहिये । ये बातें व्यक्तिको स्वर्गरूपी

फल प्रदान करती हैं । पृथ्वीपर देखते हुए चलना चाहिये । बचे हुए जीवनमें जो अपनी आत्माको वशीभूत कर जीवन-यापन करता है, उसके धर्म, अर्थ तथा कामकी थोड़ी भी हानि नहीं होती । आक्रोश, विवाद और पिशुनता छोड़ देनी चाहिये ।

सोनेके समय दूसरा वस्त्र, पूजाके समयमें दूसरा और सभामें दूसरा वस्त्र पहनना चाहिये अर्थात् अलग-अलग वस्त्र धारण करना चाहिये । पतितोंके साथ बातचीत न करे अन्यथा वह भी पतित हो जाता है । वृद्ध, ज्ञाति-बन्धु तथा मित्रके दरिद्र हो जानेपर उसको अपने साथ रखना चाहिये । इनके रहनेसे घरकी वृद्धि होती है । कबूतर, शुक तथा मैनाको घरमें रखना अच्छा होता है । ये तथा तिलपान करनेवाले पापरहित होते हैं । चन्दन, वीणा, दर्पण, धी, शहद, जल तथा अग्नि इन्हें घरमें निरन्तर रखना चाहिये । राजाको चाहिये कि धनुर्वेदादि शास्त्रोंके ज्ञानमें तथा नीतिशास्त्रके ज्ञानार्जनमें सदा तत्पर रहे एवं उसे शब्दशास्त्र (व्याकरण), यज्ञशास्त्र (कर्मकाण्ड), गान्धर्वशास्त्र (संगीत), कलाशास्त्र और इतिहास-पुराण आदिका भी ज्ञान रखना चाहिये ।

राजन् ! मैंने ये सब सदाचारके लक्षण बतलाये । अन्य जाननेयोग्य बातोंको वृद्धोंसे जानना चाहिये । सदाचार ही सभी ऐश्वर्योंका जनक है । इसके पालनसे आयुकी वृद्धि होती है । यह सभी दोषोंको दूर कर देता है । सभी आगमोंमें सदाचारको ही प्रथम स्थान प्राप्त है । सदाचारसे ज्ञानकी वृद्धि होती है । आचार परम धर्म है । आचारसे ऐश्वर्य, यश, आयु, स्वर्ग और परम मङ्गल प्राप्त होता है । महाराज ! सभी वर्णोंके कल्याणकी दृष्टिसे इन सबका मैंने वर्णन किया है । अतः धर्म, अर्थ, कामरूपी फलको देनेवाले सदाचारका सावधानीके साथ सदा पालन करना चाहिये । (अध्याय २०५)

रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत

महाराज युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! जिस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य प्रत्येक जन्ममें दीर्घायु, नीरोगता, कुलीनता और अभ्युदयसे युक्त हो, राजाके कुलमें जन्म पाता है, उस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—राजन्! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं अक्षय स्वर्ग-प्रासिकारक परम गोपनीय रोहिणीचन्द्रशयन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। इसमें चन्द्रमाके नामोंसे भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य प्रातः पञ्चग्रव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष ‘आप्यायस्वं’ (यजु० १२। ११२, ११४) इत्यादि मन्त्रको एक सौ आठ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक ‘सोमाय नमः’, ‘वरदाय नमः’, ‘विष्णवे नमः’—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियों—विधर्मियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् अपने घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनके अङ्गोंकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपत्ती रोहिणीदेवीका भी पूजन करे।

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सबेरे उठकर स्नानके पश्चात् ‘पापविनाशाय नमः’ का उच्चारण करके ब्राह्मणको धृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे। फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अन्नके अट्टाईस ग्रास, दूध और धीके साथ भोजन करे। तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास-पुराण आदिका श्रवण करे। राजन्! चन्द्रस्वरूप भगवान् विष्णुको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जातीपुष्प, कमल,

शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुब्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्प, करवीर-पुष्प तथा चम्पा—ये फूल चढ़ाने चाहिये। उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे। जिस महीनेमें व्रत प्रारम्भ किया जाय, उस समय जो भी पुष्प सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय व्रतीको चाहिये कि वह दर्पण तथा शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शश्यादान करे। रोहिणी और चन्द्रमा—दोनोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। आठ मोतियोंसे युक्त तथा दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसेके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे तथा पूर्वाह्नके समय अगहनी चावल, ईख और फलके साथ उसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक दान कर दे। फिर जिसका मुख (थूथुन) सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, ऐसी वस्त्र और दोहिनीके साथ दूध देनेवाली श्वेत रंगकी गौ तथा सुन्दर शङ्ख प्रस्तुत करे। फिर उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतिको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलंकृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतिके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—‘श्रीकृष्ण! जिस प्रकार रोहिणीदेवी चन्द्रस्वरूप आपकी शश्याको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हैं, उसी तरह मेरा भी इन विभूतियोंसे कभी बिछोह न हो। चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त हों तथा आपमें मेरी सदा अनन्य भक्ति बनी रहे।’ इस प्रकार विनय कर शश्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।

राजन्! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये यही व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप, आरोग्य और आयु प्रदान करनेवाला है तथा यह पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो पुरुष इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इकीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। जो स्त्री इस रोहिणीचन्द्रशयन नामक

व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी उसी पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। साथ ही वह आवागमनसे मुक्त हो जाती है। चन्द्रमाके नाम-कीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है। (अध्याय २०६)

श्रीकृष्ण-युधिष्ठिर-संवादका उपसंहार और भगवान्‌का द्वारकागमन

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—राजन्! व्रत, दान और धर्मके विषयमें मैंने आपको बतलाया। चूँकि इस सम्पूर्ण संसारका मूल धर्म ही है, इसलिये आप भी धर्मपरायण हो जायँ। पार्थ! जानते हुए भी मैंने काम और अर्थका प्रकाश नहीं किया, क्योंकि इसमें तो सभी लोग स्वतः प्रवृत्त होते रहते हैं, अतः इसके वर्णनकी क्या आवश्यकता। पाण्डुनन्दन! इस भविष्योत्तरमें मैंने सदाचारसम्पन्न पुरुषोंके व्रत एवं दानसमूहोंका वर्णन किया। मैंने जो इतिहास और पुराणोंमें देखा और जो वेद-वेदाङ्गसे सम्बद्ध हैं, उन सभी विषयोंको यहाँ प्रदर्शित किया। राजन्! लोक-वेदविरुद्ध विषयोंमें आस्था नहीं करनी चाहिये, क्योंकि वह प्रलापमात्र ही है। आपसे विशेष स्नेह होनेके कारण मैंने यह सब वर्णन किया। पार्थ! दाभिक और शठके सम्मुख इन विषयोंको प्रकट नहीं करना चाहिये। नास्तिक, अश्रद्धालु और कुतर्कियोंसे इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। सदाचारी, जितेन्द्रिय, सत्य और पवित्रतामें रत व्यक्तियोंके सामने इसके व्याख्यानसे सुगति प्राप्त होती है। पार्थ! आप स्वयं साक्षात् धर्मस्वरूप और धर्म एवं अर्थके तत्त्वके मर्मज्ञ तथा भूत-

भविष्यके ज्ञाता हैं। आपने इसे जाननेकी इच्छा प्रकट की, अतः मैंने आपके सम्मुख धर्मके रहस्यको प्रकाशित किया। मनुष्योंको इन विषयोंपर श्रद्धा-विश्वास रखना चाहिये। अब मैं द्वारकाके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ, पुनः आपके महोत्सव और यज्ञके अवसरपर उपस्थित रहूँगा। सब कुछ कालके अधीन है, अतः किसी तरहका संताप नहीं करना चाहिये। इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्नचित्त होकर पाण्डवोंद्वारा अर्चित—सम्मानित हुए, फिर सभी मित्रों और बन्धुजनोंकी सम्मति प्राप्तकर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणोंको प्रणामकर द्वारकाकी ओर प्रस्थान किया।

सुमन्तुमुनि बोले—महाराज शतानीक! याज्ञवल्क्यमुनिने भगवान् वसिष्ठसे जिस विषयको पूछा था और उन्होंने जो उत्तर दिया तथा भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरको जो कहा गया, उस विषयको मुनिश्रेष्ठ व्यासने पूर्वमें ही रच रखा था, उसी विषयका मैंने आपसे प्रतिपादन किया। पराशरके पुत्र तथा सत्यवतीके हृदयको आनन्द देनेवाले उन व्यासदेवकी जय हो। जिनके मुखकमलसे निःसृत हुई वाणीरूपी पवित्र मधुधाराका संसार पान करता है*। (अध्याय २०७)

* जयति पराशरसन्तुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः। यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मधुपुष्पं जगत् पिबति ॥ (उत्तरपर्व २०७। १५)

भविष्योत्तरपर्वकी संक्षिप्त अनुक्रमणिका

इस पर्वके प्रारम्भमें महाराज युधिष्ठिरके पास महर्षि वेदव्यासके साथ अनेक ऋषियोंके आगमन, ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, नारदको वैष्णवीमायाका दर्शन, संसारके दोषोंका वर्णन, पापोंके भेद, शुभ और अशुभ लक्षणोंका वर्णन है। शक्टव्रत, तिलकव्रत, अशोक और करवीर, कोकिला, बृहत्तप, भद्रोपवास, यमद्वितीया, अशून्यशयन, कामाख्यातृतीया, मेघपाली, पञ्चगिनिसाधन, त्रिरात्रगोष्यद, हरकाली, ललिता-तृतीया, योगाख्यातृतीया, उमामहेश्वरव्रत, रम्भा-तृतीया, सौभाग्यतृतीया, आद्रानन्दकरीतृतीया तथा चैत्र, भाद्र और माघके तृतीयाव्रतोंका वर्णन हुआ है। फिर आनन्तर्यतृतीया, विनायक-शान्ति, सारस्वतव्रत, नागपञ्चमी, श्रीपञ्चमी, शोकप्रणाशिनीषष्ठी, फलषष्ठी, मन्दारषष्ठी, ललिताषष्ठी, कार्तिकेयषष्ठी, महत्तपससमी, विभूषाससमी, आदित्यमण्डपविधि, त्रयोदशवर्ज्यससमी, कृकवाकुप्लवङ्गससमी, उभयससमी, कल्याणससमी, शर्कराससमी, कमलाससमी, शुभाससमी, स्नपनससमी, व्रतससमी और अचलाससमी, बुधाष्टमी, जन्माष्टमी, दूर्वाष्टमी, कृष्णाष्टमी, अनघाष्टमी, अर्काष्टमी व्रतोंका वर्णन है। तदनन्तर श्रीवृक्षनवमी, ध्वजनवमी, उल्कानवमी, दशावतार, आशादशमी, रोहिणीचन्द्र, इन्द्रहरि-राम्भ-ब्रह्मा-सूर्य-अवियोगव्रत, गोवत्सद्वादशी, नीराजनद्वादशी, भीष्मपञ्चक, मल्लद्वादशी, भीमद्वादशी, श्रवणद्वादशी, सम्प्रासिद्वादशी, गोविन्दद्वादशी, अखण्डद्वादशी, तिलद्वादशी,

सुकृतद्वादशी, धरणीव्रत, विशोकद्वादशी, विभूतिद्वादशी, पुष्टद्वादशी, श्रवणद्वादशी, अनङ्गद्वादशी, अङ्गपादव्रत, निम्बार्क-करवीर-माहात्म्य, यमदर्शनत्रयोदशी, अनङ्गत्रयोदशी, पालीव्रत, रम्भाव्रत, आग्रेयी चतुर्दशी, अनन्तचतुर्दशी, श्रावणी, नक्तचतुर्दशी, शिवचतुर्दशी, फलत्यागचतुर्दशीव्रत तथा वैशाख, कार्तिक और माघकी पूर्णिमाके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् कार्तिकमें कृत्तिकाके योगमें कृत्तिकाव्रत, फाल्गुन पूर्णिमामें पूर्णमनोरथव्रत, अशोकपूर्णिमाव्रत, अनन्तव्रत, साम्भरायणीव्रत, नक्षत्रपुरुषव्रत, शिवनक्षत्रपुरुषव्रत, कामदानव्रत, वृत्ताकविधि, आदित्यदिननक्तव्रत, संक्रान्तिके उद्यापनका विधान, भद्राव्रत, अगस्त्यार्घ्यव्रत, नवचन्द्रार्घ्य, शुक्र-बृहस्पति-अर्घ्य-प्रदानव्रत, पञ्चशीतिव्रत, माघस्नान, नित्यस्नान, रुद्रस्नानकी विधि, चन्द्र और सूर्य-ग्रहणमें स्नान, भोजन-विधि, वापी, कूप तथा तडागका उत्सर्ग, वृक्ष-पूजा, देवपूजा, दीपदान, वृषोत्सर्गविधि, फाल्गुनी-उत्सव, मदनोत्सव, भूतमातोत्सव, श्रावणीमें रक्षाबन्धनकी विधि, चन्द्रोत्सव, दीपमालिका, होम, लक्षहोम, कोटिहोमकी विधि, महाशान्ति तथा विनायक-शान्ति, नक्षत्रहोम, गोदान-विधि, गुडधेनु, घृतधेनु, तिलधेनु, जलधेनु, लवणधेनु और नवनीतधेनु एवं सुवर्णधेनुदानके विधानोंका निरूपण हुआ है। ये सभी देवकार्य हैं, कल्याणकामी पुरुषोंको इन धर्मकार्योंको यथाशक्ति अवश्य करना चाहिये। (अध्याय २०८)

॥ भविष्यपुराणान्तर्गत उत्तरपर्व सम्पूर्ण ॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण सम्पूर्ण ॥

पंजीकृत मस्ता — जी० आर० — १२



पो० गीताप्रेस — २७३००६

गोरखपुर, फोन (०५५२) २३३४९२१



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS

- > HINDUISM SCRIPTURES
- > HINDU COMICS
- > AYURVEDA
- > MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of
hinduism
server!

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुराण, उपनिषद् आदि

28 श्रीमद्भागवत-सुधासागर	1111 सं० ब्रह्मपुराण
1490 श्रीमद्भागवत-सुधासागर (विशिष्ट संस्करण)	1113 नरसिंहपुराणम्—सटीक
25 श्रीशुक्लसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें	1189 सं० गरुडपुराण
1535 श्रीमद्भागवत-महापुराण—	1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)
1536 सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण)	1361 सं० श्रीवराहपुराण
26 श्रीमद्भागवत-महापुराण—	584 सं० भविष्यपुराण
27 सटीक, दो खण्डोंमें सेट	1131 कूर्मपुराण—सटीक
29 श्रीमद्भागवत-पुराण—मूल टाइप	631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण
124 श्रीमद्भागवत-रहापुराण—मूल टाइप	1432 श्रीवामन पुराण—सटीक
1092 भागवत—नग्रह	557 मत्स्यमहापुराण—सटीक
571 श्रीकृष्ण—चिन्तन	1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठांक
30 श्रीप्रेम-सुधासागर	517 गर्गसंहिता
31 भागवत एकादश स्कन्ध	47 पातंजलयोग-प्रदीप
728 महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्ड, सचित्र [छ. खण्डोंमें] सेट (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	135 पातंजलयोगदर्शन
38 महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	582 छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य
1589 „ केवल हिन्दी	577 बृहदारण्यकोपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य
637 जैमिनीयाश्वमेध पर्व	1421 ईशादि नौ उपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य
39 संक्षिप्त महाभारत—केवल	66 ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या
511 भाषा, सचित्र, सजिल्ड सेट (दो खण्डोंमें)	67 ईशावास्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
44 संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्ड	68 केनोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
1468 सं० शिवपुराण (विशिष्ट संस्करण)	578 कठोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
789 सं० शिवपुराण—मोटा टाइप	69 माण्डूक्योपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
1133 सं० देवीभागवत	513 मुण्डकोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
48 श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र	70 प्रश्नोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
1364 श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	71 तैत्तिरीयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
1183 सं० नारदपुराण	72 ऐतरेयोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
279 सं० स्कन्दपुराणांक	73 श्वेताश्वतरोपनिषद्—सानुवाद, शांकरभाष्य
539 सं० मार्कण्डेयपुराण	65 वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्ड
	639 श्रीनारायणीयम्—सानुवाद

गीताप्रेस, गोरखपुर — २७३००५
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०, २३३१२५१